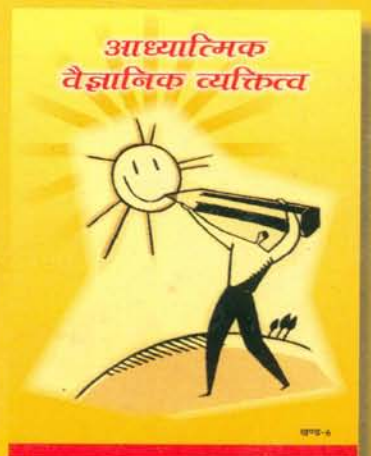
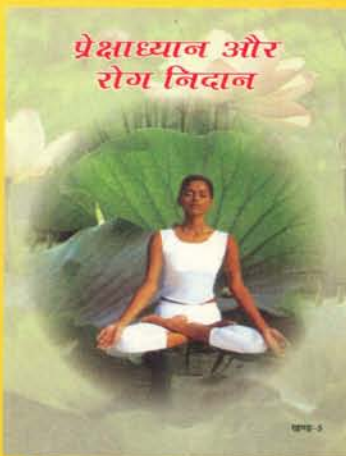
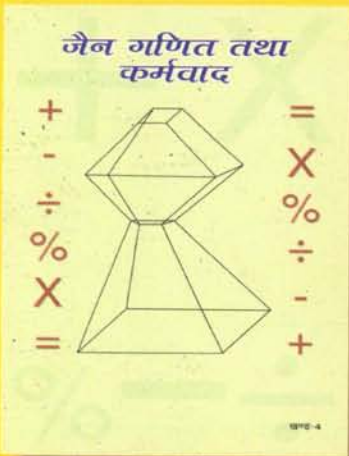
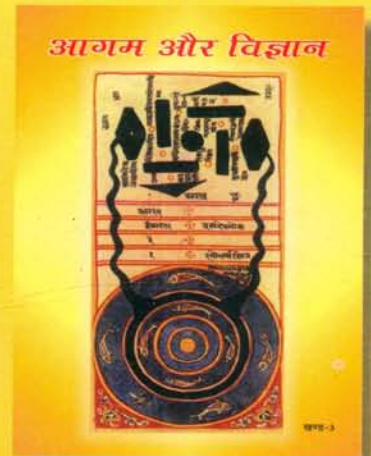
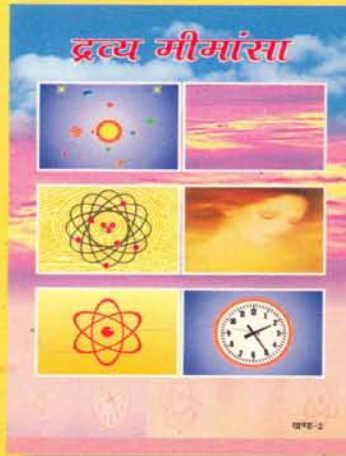


जैन विद्या और विज्ञान

संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य



प्रोफेसर डॉ. महावीर राज गेलड़ा

आचार्य महाप्रज्ञ जैन
विद्या के विश्वकोश
सदृश (Encyclopaedic)
ज्ञान के धनी है। वे
भारतीय चिंतन परम्परा
के गंभीर ज्ञाता हैं और
आधुनिक मनोविज्ञान
तथा विज्ञान के चिंतन
से भी परिचित हैं।
आगम और दर्शन के
विषयों का प्रतिपादन,
बोधगम्य करने की दृष्टि
से विज्ञान का उपयोग
किया है।

वे अनुभव करते हैं
कि वैज्ञानिक चिंतन और
आविष्कार के बाद
विकास की अवधारणा
इतनी जटिल हो गई है
कि पीछे लौटना भी
संभव नहीं है और पीछे
लौटे बिना सभ्यता पर
छाए हुए संकट के
बादलों का बिखरना भी
संभव नहीं। अतः
तकनीकी विकास पर
विवेकपूर्ण अंकुश लगाना
जरूरी है।

जैन विद्या और विज्ञान

संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य

प्रोफेसर डॉ. महावीर राज गेलड़ा

सम्पादक :

साध्वी राजीमती . समणी मंगलप्रज्ञा



जैन विश्व भारती संस्थान

(डीम्ड विश्वविद्यालय)

लाडनू-341306 (राज.)

- **प्रकाशक :**
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं
'महादेवलाल सरावगी अनेकांत शोध पीठ'
के अनुसंधान प्रकल्प का प्रथम पुष्प

- **सम्पादक :**
शासन गौरव साध्वी राजीमती
समणी मंगलप्रज्ञा

- **लेखक :**
प्रोफेसर डॉ. महावीर राज गेलड़ा

- ©
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं - 341 306 (राजस्थान)

- **ISBN :**
81-901458-4-3

- **प्रथम संस्करण :**
सन् 2005

- **मूल्य :**
तीन सौ रुपये
विदेशों के लिए \$ 10



- **मुद्रक :**
शीतल ऑफसेट प्रिन्टर्स, जयपुर



समर्पण

मेरे जैन विद्या के अध्ययन के प्रेरक
गणाधिपति श्री तुलसी
और जैन विद्या और विज्ञान के
तुलनात्मक लेखन के प्रेरणा स्रोत
आचार्यश्री महाप्रज्ञ को

—महावीर राज गेलड़ा



अनुक्रम

आशीर्वचन	(xiii)
आमुख	(xv)
सम्पादकीय	(xix-xxiv)
प्ररोचना	1
जैन विद्या और विज्ञान का सामान्य परिचय	15
जैन विद्या और विज्ञान	17
जैन धर्म	18
(i) अनगार धर्म	19
(ii) अगार धर्म	20
जैन दर्शन	21
जैन विज्ञान	22
(i) प्रकृति का दर्शन	23
(ii) विज्ञान का दर्शन	24
(iii) विज्ञान का समाजशास्त्र	25

खण्ड-1

नया चिन्तन

महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त	29
– सह प्रतिपक्ष सिद्धान्त की अवधारणाएं	29
– लोकतंत्र में पक्ष-प्रतिपक्ष	30
– पुरुषार्थ और नियति	30
– व्यक्तिगत चेतना और सामूहिक चेतना	31
– मैटर एंटी मैटर	31

— ऋषभायण में विरोधाभाषी अलंकारों का प्रयोग	31
— शरीर शास्त्र के उदाहरण	33
— विरोधी युगलों का वर्णन	34
— भौतिक विज्ञान	38
महाप्रज्ञ का आत्म-तुला का सिद्धान्त	
— आत्म तत्त्व की स्वतंत्रता	39
— अध्यात्म और व्यवहार	40
— उपनिषद की कथा	41
— मैत्री क्यों ?	42
— मनः चिकित्सा	42
— एण्डोरफिन रसायन	43
— वैर—विरोध न करें	44
— मैत्री का अनुप्रयोग	44
— रोचक कथानक	45
— हित चिंतन भी करें	45
— विश्व मैत्री का अभिप्राय, संयम की चेतना	47
— पर्यावरण—विज्ञान का नया आयाम	48
— समता ही पर्यावरण का विज्ञान	49
महाप्रज्ञ की सैद्धान्तिक स्थापनाएं	50
1. जैन दर्शन का स्वतंत्र अस्तित्व	50
2. लोक अलोक की प्ररूपणा	51
3. जीव और पुद्गल का संबंध भौतिक या अभौतिक	52
4. कर्म परिवर्तन का सिद्धांत	54
5. स्वभाव परिवर्तन में पुनर्भरण क्रियाविधि	55
6. संज्ञाएं (ओघ, लोक)	57
7. व्यावहारिक परमाणु	60
8. तेषं कालेण, तेषं समरणं	61
9. विद्युत : सचित या अचित?	62
10. अस्वाध्याय	74
11. कल्प-वृक्ष	75
12. आगमों का रचना काल	76

खण्ड-2

द्रव्य मीमांसा और दर्शन

परिणामी नित्यत्ववाद	82
— न सर्वथा नित्य न सर्वथा अनित्य, परिभाषा	82
— किंशरीरत्व, विज्ञान का द्रव्याक्षरत्ववाद	82
— द्रव्य और शक्ति का रूपान्तरण।	83
लोकवाद	85
— वैज्ञानिक आइंस्टीन और हाकिंग के मन्तव्य	85
— ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक अध्ययन	86
— सापेक्षवाद और क्वांटम यांत्रिकी	87
— आकाश-काल की युति	88
(i) लोक-अलोक का विभाजक तत्व	88
(ii) अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय	89
(iii) गति तत्त्व	90
(iv) विज्ञान जगत में 'ईथर' तत्त्व की अमान्यता	90
(v) सीमित विश्व	91
(vi) सीमित विश्व की सीमाएं	91
(vii) बिग-बैंग	93
आकाश और दिशाएं	96
— ताप दिशा	96
— प्राचीन मान्यता	96
— दिशाओं की वक्राकार आकृति	96
— शब्द की पौद्गलिकता	98
— दर्शन और विज्ञान	98
— आगमिक स्वरूप	98
— समस्याएं	99
काल	102
— विज्ञान का मत	102
— सापेक्षता	103
— केवल ज्ञान का अभिप्राय	104

— सर्वज्ञता	104
— समय, समयके दो अर्थ	105
— आकाश-काल-धर्म-अधर्म	106
— दिशाओं की ज्यामिति	107
— काल की वैज्ञानिक अवधारणाएं	109
पुद्गल	110
(i) अचित महास्कन्ध, विलक्षणता-अपवाद	110
(ii) पुद्गल के प्रकार, शब्द	112
(iii) परमाणुवाद, परमाणु समुदय, परमाणु के स्पर्श	113
(iv) परमाणु का स्वरूप	115
(v) परमाणु के गुण, इन्द्रिय ज्ञान और सीमाएं	116
(vi) प्रकाश, शब्द और रंग, आयुर्वेद का दृष्टिकोण, शरीर का 'करण' बनना	119
(vii) पुद्गल की काल-स्थिति	121
(viii) परमाणु की अतीन्द्रियता	121
आत्म तत्त्व	123
(i) मस्तिष्क और आत्मा	123
(ii) इन्द्रिय और आत्मा	125
(iii) आहार और जीव	126
(iv) वनस्पति का चैतन्य	127
(v) विकासवाद	129
(vi) आनुवांशिकता	130
(vii) क्लोनिंग	131
अनेकान्त का वैज्ञानिक पक्ष	
— अनेकांत, वस्तु अनन्त धर्मात्मक शैक्षणिक विधा	123
— सापेक्षता, अनेकांत का दूसरा नाम सापेक्षवाद आइंस्टीन का उदाहरण	135
— सिद्धसेन दिवाकर का योगदान	135
— सैद्धान्तिक पक्ष	136
— दार्शनिक पक्ष	138
— वैज्ञानिक पक्ष	140
— सापेक्षता का सिद्धान्त, अनिश्चितता का सिद्धान्त, अवक्तव्य	142

खण्ड-3

आगम और विज्ञान

- गति विज्ञान	149
- परमाणु की गति	155
- भावितात्मा द्वारा नाना रूपों का निर्माण	160
- भावितात्मा द्वारा आकाश गमन	165
- कृष्ण राजि, तमस्काय तथा ब्लैक होल	169
- नींद का प्रकरण	179
- आलू क्या अनन्त जीवी हैं?	181
- मानसिक सम्प्रेषण का सिद्धान्त	183
- चौदह पूर्वों का परावर्तन	185
- अनाहारक अवस्था	187
- आत्म प्रदेशों की सघनता	192

खण्ड-4

जैन गणित तथा कर्मवाद

जैन गणित	197
- जैन गणित	197
- जघन्य और उत्कृष्ट	198
- सूक्ष्मतम अंश	198
- परमाणु	199
- आठ की संख्या का महत्व	200
- वैज्ञानिक धारणा	201
- सूक्ष्मतम काल	202
- आकाश-परमाणु, आकाश-काल	203
गणित के दस प्रकार	
1. परिक्रम	208
2. व्यवहार	209
3. रज्जु	210
4. राशि	210

5. कलासवर्ण	211
6. यावत् तावत्	211
7. वर्ग	211
8. घन	211
9. वर्ग-वर्ग	212
10. क्रकच व्यवहार	212
संख्यात, असंख्यात, अनन्त	213
— शीर्षप्रहेलिका	213
— वर्गित करने का उपक्रम	214
— श्वेताम्बर परम्परा	215
— दिगम्बर परम्परा	215
— नोकृति	215
— अवक्तव्य	216
— कृति	216
— गणना संख्या	218
— अनन्त तथा असंख्यात्	223
कर्मवाद	226
— कर्म और पुरुषार्थ	226
— परिवर्तनशीलता	227
— दार्शनिक विवेचन	227
— परिभाषा	228
— मनोविज्ञान	228
— सीमाएं	229
— जैनेटिक इंजीनियरिंग	229
— कर्म संक्रमण का सिद्धान्त	230
— पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों में परिवर्तन	230
— जीन्स और वातावरण	231
— गुणसूत्र	233
— मोहनीय कर्म	233
— आवेग नियंत्रण	234
— परिवर्तनशीलता	235

— संक्रमण का संसार	236
— आकर्षण-विकर्षण	237
— नया चिंतन	237
— सूक्ष्म तंत्र	238
— श्रुत घटना	239
कर्मवाद की गणितीय मीमांसा	240

खण्ड—5

प्रेक्षा ध्यान और रोग निदान

प्रेक्षा	246
1. प्रेक्षा की मूल अवधारणा	246
2. प्रेक्षा के तीन आयाम	247
3. ध्वनि चिकित्सा	248
4. रंग चिकित्सा	248
मनोविज्ञान	253
1. मनोवृत्तियों का परिष्कार	253
2. आदत कैसे बदलें	254
3. चित्त और मन	254
4. भाव (इमोशन)	256
5. भय	256
6. क्रोध और हिंसा आदिम मस्तिष्क की देन	257
7. संकल्प-शक्ति भावात्मक प्रयोग	258
8. नए मस्तिष्क का निर्माण	260
9. नए मस्तिष्क की संरचना	261
शरीर के शक्ति केन्द्र	268
(i) सामान्य विवरण	268
(ii) ग्रन्थियां	275
(iii) नाड़ी तंत्र	284

शरीर रोगों में प्रेक्षा के प्रयोग	290
— हृदय रोग	290
— उच्च रक्तचाप	293
— दमा	294
— उदर रोग	296
— मानसिक अवसाद (डिप्रेशन)	299

खण्ड-6

आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व

आचार्य महाप्रज्ञ और डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
के वक्तव्य और वार्ता का संकलन

1. वक्तव्य

- | | |
|--|-----|
| (i) 15 फरवरी, 2003 को मुम्बई में 'शिक्षा में नैतिक मूल्य' विषयक सेमिनार के उद्घाटन का अवसर | 311 |
| (ii) 15 अक्टूबर, 2003 को सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र का अवसर | 309 |

2. वार्ताएं

- | | |
|--|-----|
| (i) 13 अगस्त, 2002 को अहमदाबाद में हुई वार्ता के अंश | 323 |
| (ii) 14 फरवरी, 2003 को मुम्बई में हुए वार्ता के अंश | 320 |

□□□

आशीर्वचन

अहम्

सत्य का अर्थ है अस्तित्व। वह सत् विद्यमान है। यह सत्तात्मक सत्य है। अतीन्द्रिय चेतना संपन्न साधकों ने उसकी खोज की है इसलिए वे सत्य-गवेषी कहलाते हैं। सत्य की खोज का एक अर्थ है नियम की खोज। जो सार्वभौम नियम है, वह सत्य है। वैज्ञानिक नियम की खोज में लगा हुआ है इसलिए वह भी सत्य-गवेषी है।

भगवान महावीर का निर्देश है —

‘अप्पणा सच्चमेसेज्जा — स्वयं सत्य खोजो।’

स्वयं सत्य के खोजने का दृष्टिकोण वैज्ञानिक दृष्टिकोण है इसलिए अतीन्द्रिय ज्ञानी की खोज और वैज्ञानिक की खोज के बीच लक्ष्मण-रेखा नहीं खींची जा सकती।

मैंने धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों की वैज्ञानिक सिद्धांतों से तुलना की है उसे सापेक्ष दृष्टि से संवादिता भी कहा जा सकता है या तुलना भी कहा जा सकता है।

डॉ. महावीर राज गेलड़ा ने उस तुलना अथवा संवादिता को ध्यान में रखकर ‘जैन विद्या और विज्ञान; संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य’ ग्रन्थ तैयार किया है। डॉ. गेलड़ा जैन आगमों के गहन अध्येता हैं और विज्ञान के सद्यस्क अनुसंधानों की जानकारी रखने के लिए विज्ञान के ग्रन्थों का अध्ययन करते रहते हैं। उन्होंने अनेक पुरस्कार प्राप्त किए हैं। “जैन विद्या मनीषी” का पुरस्कार उनकी जैन विद्या के प्रति गहनतम रुचि का द्योतक है। गणाधिपति श्री तुलसी ने डॉ. गेलड़ा को ‘तेरापंथ प्रवक्ता’ के गरिमामय सम्बोधन से सम्बोधित किया।

‘जैन विद्या और विज्ञान’ पर लिखा गया यह ग्रन्थ दर्शन के विद्यार्थी के लिए जितना उपयोगी है उतना ही विज्ञान के विद्यार्थी के लिए उपयोगी है। डॉ. गेलड़ा का यह प्रयत्न सत्य-संधित्सु के लिए नया आयाम खोलने वाला होगा।

आमुख

दर्शन और विज्ञान दोनों सत्य की खोज के लिए चलते हैं परंतु दोनों में एक मौलिक अंतर है — दर्शन एक आधार को लेकर चलता है किंतु विज्ञान के पीछे कोई एक निश्चित आधार नहीं होता है। संभव है चलते-चलते दोनों एक दिन एक जगह पहुंच जाएं और न भी पहुंचे। यात्रा दोनों की लम्बी है।

आज का युवा मानस धर्म और दर्शन पर उतना विश्वास नहीं करता जितना वह विज्ञान पर करता है। यद्यपि दर्शन भी किसी व्यक्ति से जुड़ा नहीं होता, वह सत्य से जुड़ा होता है परंतु कभी-कभी वह दर्शन किसी श्रद्धेय पुरुष के साथ जुड़ कर अपनी प्रामाणिकता पर एक प्रश्न चिन्ह लगा लेता है।

बुद्ध ने अपने शिष्यों से एक दिन कहा — किसी बात को तुम इसलिए सत्य मत मानना कि वह परम्परा से चली आ रही है, अतः वह सत्य है। इसलिए भी मेरी बात मत मानना कि मैं शास्ता हूँ, बल्कि तुम्हारा हृदय और मस्तिष्क विवेकपूर्वक उसे स्वीकार करे तो मानना। यही बात भगवान महावीर ने कही — स्वयं सत्य की खोज करो।

दर्शन का लक्ष्य है — मानव को दुख मुक्त कराना और यही लक्ष्य विज्ञान का है। आज तक की सारी प्रगति का आधार भौतिक संसाधनों के द्वारा मानव जाति का विकास करना रहा है। भले आज विकसित देशों ने सुख शांति के नाम पर विध्वंस का कार्य किया हो।

आचार्य महाप्रज्ञ अध्यात्म और विज्ञान के समन्वयकारक महापुरुष हैं। उन्होंने विज्ञान की कसौटी पर धर्म का परीक्षण कर उसे जीया है। उनकी दृष्टि में विज्ञान हमारा विरोधी नहीं बल्कि उपकारी है। अब तक दर्शन और विज्ञान के बीच जो दूरी चल रही थी उसे आधुनिक विज्ञान की खोजों ने कम करके निकटता बढ़ाई है। उनका कहना है, सत्य को सापेक्ष दृष्टि एवं अनेकांत शैली के द्वारा ही व्याख्ययित किया जा सकता है। यद्यपि पूरा जैन-दर्शन स्वयं में सम्पूर्ण वैज्ञानिक है। इसलिए उसे किसी वैज्ञानिक उपकरण के द्वारा प्रमाणित करने की अपेक्षा नहीं है फिर भी कुछ सच्चाईयां समय के गर्भ में दब गईं, जिन्हें केवल तर्क की कसौटी पर कसकर आज सत्य

प्रमाणित नहीं किया जा सकता। विज्ञान ने अपने शोधकार्य से उन सच्चाईयों को पुनः प्रतिष्ठापित कर दर्शन की सत्यता के लिए महान कार्य किया है। उन्हें विज्ञान की भाषा अर्थात् युग की भाषा में प्रस्तुत किया है। आज जो विज्ञान सममत है वही सर्वग्राह्य बन सकता है।

विज्ञान स्थूल-मूर्त से सूक्ष्म-मूर्त की ओर चल रहा है जबकि अध्यात्म क्रमशः मूर्त से अमूर्त की ओर। कुल मिलाकर दोनों की यात्रा सूक्ष्मोन्मुख है। अतीन्द्रिय सत्य (आत्म प्रत्यक्ष) जो दर्शन जगत का एक महत्वपूर्ण विषय था, वह हजारों वर्षों तक अज्ञेय बन कर ठहर गया था, उसे विज्ञान ने ज्ञेय बना दिया। आभामण्डल, ध्यान से रसायनों का परिवर्तन, ग्रन्थीय स्राव और कर्म प्रभाव आदि को मापने के अनेक वैज्ञानिक उपकरण हमारी धर्मयात्रा में सहयोगी रहे हैं। उन्होंने धर्म और दर्शन की मान्यताओं के संदर्भ में फैली अनेक निराशाओं, भ्रान्तियों एवं समस्याओं को समाहित किया है।

धर्म और विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन की यह परम्परा इन कुछ वर्षों में बहुत बलवती बनी है। प्रश्न होता है कि जहां कोई संदेह नहीं, क्या उस तत्त्व को विज्ञान के तराजू पर तोलना जरूरी है? समाधान की भाषा में कहा जा सकता है कि वर्तमान पीढ़ी धर्म की मान्यता को प्रयोगशाला में प्रमाणित हो जाने के बाद ही स्वीकार कर पाने की मानसिकता के साथ जी रही है। आज पूरे विश्व में धर्म, दर्शन, स्वास्थ्य, गणित, भूगोल, खगोल जैसे अनेक विषयों में विज्ञान नित्य नई खोजें कर रहा है। फिर हम तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता को कैसे नकार सकते हैं? जिन्होंने नकारा है वो भी अब इन सत्यों को स्वीकार कर रहे हैं। आज सभी धर्मों और दर्शनों की प्रासंगिकता विज्ञान ने बढ़ाई है।

जैन दर्शन के ऐसे अनेक विषय हैं, जिन्हें जन भाषा में स्पष्टता से प्रस्तुत करना उनकी अन्तरात्मा तक पहुंचना दुरूह कार्य हो रहा था, उस कार्य को विज्ञान की आधुनिक नवीनतम खोजों ने आसान बना दिया है। एक समय था जब युवा समाज को मात्र श्रद्धा से प्रणत किया जा सकता था पर आज संदर्भ बदल गए हैं। श्रद्धा की गहराई बढ़ गई है।

आचार्य महाप्रज्ञ आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक व्यक्तित्व के धनी हैं। यद्यपि उन्होंने विद्यालय की किसी प्रयोगशाला में कभी विज्ञान नहीं पढ़ा तथापि जैन दर्शन के गहनतम विषयों की सटीक वैज्ञानिक व्याख्याएं दे रहे हैं। इसी कारण उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ विद्वानों द्वारा ग्राह्य एवं बहुमान्य हो रहे हैं। वे भारतीय एवं विदेशी दर्शनों के महान ज्ञाता और भाष्यकार हैं। इसके साथ ही वे अध्यात्म एवं विज्ञान के सापेक्ष व्याख्याकार भी हैं। वे कहते हैं -

बाहरी विज्ञान एवं भीतरी विज्ञान अर्थात् भौतिक एवं अभौतिक विज्ञान दोनों का जब योग होता है तब एक नये व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परंतु आज का भारत विदेशों से अर्थ का ही ऋण नहीं ले रहा है बल्कि वह चिन्तन-दर्शन का भी ऋण ले रहा है। मैं चाहता हूँ कि भारत को इस परोक्षानुभूति की प्रताड़ना से बचाया जाये। मैं शास्त्रों, आगमों से लाभान्वित हूँ परंतु उनका भार ढोने में मेरी निष्ठा नहीं है।

भारत के राष्ट्रपति डॉ. श्री अब्दुल कलाम ने कहा है — आचार्य महाप्रज्ञ वैज्ञानिक दृष्टि से आग्रह-मुक्त हैं। स्वामी विवेकानंद ने अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की अपेक्षा अनुभव की। वही बात विनोबाभावे ने कही कि विज्ञान की रेलगाड़ी में अध्यात्म का इंजन चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञ ने इससे दो कदम आगे की यात्रा की है। उन्होंने अध्यात्म, शिक्षा एवं साधना, इन सबकी वैज्ञानिक उपयोगिताएं प्रमाणित की हैं। प्रेक्षा ध्यान जिसकी व्याख्या में आपने विज्ञान का अधिकाधिक प्रयोग कर ध्यान और बीमारियां, ध्यान और आदत परिष्कार, ध्यान और मन के रहस्यों का उदघाटन आदि के संदर्भ में अनेक जानकारियां प्रस्तुत कर अपने साहित्य एवं प्रवचनों के द्वारा जनमानस को प्रभावित किया है। उनका कहना है सूक्ष्म में प्रवेश करने पर ही बहुमूल्य सम्पदाएं उपलब्ध होती हैं। अणु (एटम) के चमत्कारों से पूरा विश्व परिचित है परंतु अचेतन की तुलना में चेतन अनन्तगुणा शक्ति सम्पन्न है, यह सच्चाई है, क्योंकि मैं को जानकार ही सबको जाना जा सकता है। इसलिए प्रज्ञा शब्द आचार्य महाप्रज्ञ के साथ जुड़कर अपनी सार्थकता प्रकट कर रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जैन विद्या और विज्ञान ; संदर्भ: आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य' जिसमें डॉ. महावीर राज गेलड़ा ने जैन दर्शन के कुछ विषयों का वैज्ञानिक दृष्टि से सांगोपांग विवेचन किया है जिनका महाप्रज्ञ साहित्य में उल्लेख है। यद्यपि दर्शन और विज्ञान दोनों ही गहनतम विषय हैं, उन्हें सहज, सरल वैज्ञानिक भाषा में विवेचित करना लेखक की विशेषता ही कही जा सकती है। पुस्तक के सभी खण्डों में इस प्रतिज्ञा का निर्वाह किया गया है कि जो विषय विज्ञान के सिद्धान्तों, उपकरणों और प्रयोगों से अस्पष्ट हैं, उन्हें इसमें वर्णित नहीं किया जाये। यह इसलिए संभव हो सका है कि डॉ. गेलड़ा को जैन दर्शन और विज्ञान दोनों की गहरी और सूक्ष्म गणितीय जानकारियां हैं और इसके साथ-साथ उनमें विद्वता और विनम्रता का शुभ संयोग भी है। वे धर्म, दर्शन और विज्ञान के प्रवक्ता, लेखक, चिन्तक और विचारक भी हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य पर कलम उठाना, काम करना गुरु के विशेष आशीर्वाद का ही प्रतिफलन है। धर्म और विज्ञान पर अनेक शोधपत्रों का प्रकाशन भी हुआ है। पूरे जैन समाज में प्रख्यात होने के कारण समय-समय पर अनेक जैनाचार्यों के द्वारा विशेष कार्यक्रमों में प्रवक्ता के रूप में भी आमंत्रित किए गए हैं।

डॉ. गेलड़ा ने रसायन शास्त्र में एम.एस.सी. किया, फिर जोधपुर विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की। निदेशक, महाविद्यालय शिक्षा, राजस्थान के पद से सेवानिवृत्त होकर जैन विश्व भारती, मान्य विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति के पद पर नियुक्त हुए। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर विकास के शिखर को छूते हुए अब वे महाप्रज्ञ साहित्य की सेवा में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं।

— साध्वी राजीमती

सम्पादकीय

सत्य संधान की दिशा में प्रस्थित जिज्ञासु सत्य-साक्षात्कार का लक्ष्य लेकर गतिशील होता है। सत्-सत्य स्वतः विद्यमान है। अस्तित्व का आविष्कार नहीं किया जा सकता, उसका अन्वेषण किया जा सकता है। सत्य क्या है? कैसा है? क्यों है? इन प्रश्नों से सत्य-साक्षात्कार की यात्रा प्रारम्भ होती है। इनके समाधान के साथ ही यात्रा का उद्देश्य कृतकृत्य हो जाता है। ज्ञाता स्वयं मंजिल बन जाता है। मार्ग का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। जब तक जिज्ञासु पराकाष्ठा तक नहीं पहुंचता उसकी यात्रा अनवरत चलती रहती है। दर्शन और विज्ञान सत्य अन्वेषण की इसी यात्रा पर गतिशील हैं। जीव एवं जगत के सूक्ष्म रहस्यों का अनावरण उनकी यात्रा का ध्येय है। दर्शन की यात्रा का केन्द्र बिन्दु चेतन द्रव्य है वहीं विज्ञान भौतिक जगत को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ रहा है। ये दोनों धाराएं परस्पर विरोधी नहीं किंतु एक-दूसरे की सम्पूरक हैं। दर्शन जगत ने चेतन तत्त्व के अन्वेषण के साथ ही सृष्टिविद्या के अनेक तथ्यों का प्रकटीकरण किया है जिनकी आधुनिक विज्ञान के साथ संवादिता है। विज्ञान भी यदि चेतन द्रव्य के अन्वेषण की ओर उन्मुख होता है तो उसकी यह यात्रा और अधिक तेजस्वी हो सकती है।

भगवान महावीर ने चेतन और अचेतन दोनों के ज्ञान को अध्यात्म-अनुभव में आवश्यक माना है। दशवैकालिक सूत्र में यह तथ्य अभिव्यक्त हुआ है -

जो जीवे वि न याणाई, अजीवे वि न याणई।

जीवाजीवे अयाणंतो, कहां सो नाहिइ संजमं ? (दसवें 4/12)

जीव और अजीव की सम्यक् अवगति के बिना संयम की आराधना नहीं हो सकती - अध्यात्म साधना का यह सूत्र जैन विद्या की वैज्ञानिकता को अभिव्यक्त कर रहा है। भगवान महावीर अध्यात्म के प्रवक्ता थे। उन्होंने चैतन्य के विकास की ऊंचाईयों का स्वयं आरोहण किया था तथा उस दिशा में प्रस्थान करने वालों का मार्गदर्शन भी किया। प्रश्न उभरता है कि चेतना के विकास की दिशा में प्रस्थान करने वालों के लिए अजीव की अवगति की

क्या आवश्यकता है ? उसे तो मात्र आत्मा के बारे में जानना चाहिए। अन्य जानकारियों से उसका क्या प्रयोजन? किंतु भगवान महावीर का चिंतन अनेकांतवादी है। वे अस्तित्व के एक छोर को ग्रहण नहीं करते किंतु सम्पूर्ण सत्य को अपने दृष्टिपथ में रखते हैं। उनके दर्शन में जैसा आत्मा का अस्तित्व मान्य है वैसा ही अचेतन का अस्तित्व है। अस्तित्व के स्तर पर उनको परस्पर न्यूनाधिक नहीं किया जा सकता।

जैन दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है — “जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा — जीवच्चेव अजीवच्चेव” (ठाणं 2/1)। लोक में जो कुछ है, वह सब द्विपदावतार है। इस संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञजी का वक्तव्य मननीय है — “जैन दर्शन द्वैतवादी है। उसके अनुसार चेतन और अचेतन दो मूल तत्त्व हैं। शेष सब इन्हीं के अवान्तर प्रकार हैं। जैन दर्शन अनेकांतवादी है। इसलिए वह केवल द्वैतवादी नहीं है। वह अद्वैतवादी भी है। उसकी दृष्टि में केवल द्वैत और केवल अद्वैतवाद की संगति नहीं है। इन दोनों की सापेक्ष संगति है। कोई भी जीव चैतन्य की मर्यादा से मुक्त नहीं है अतः चैतन्य की दृष्टि से जीव एक है। अचैतन्य की दृष्टि से अजीव भी एक है। जीव या अजीव कोई भी द्रव्य अस्तित्व की मर्यादा से मुक्त नहीं है, अतः अस्तित्व की दृष्टि से द्रव्य एक है। इस संग्रहनय से अद्वैत सत्य है। चेतन में अचैतन्य का और अचेतन में चैतन्य का अत्यन्ताभाव है। इस दृष्टि से द्वैत सत्य है।” जैन दर्शन की इस व्यापक स्वीकृति ने ही जैन विद्या एवं विज्ञान के पारस्परिक समन्वय के द्वार उद्घाटित किए हैं।

जैन दर्शन का चिंतन अध्यात्म या धर्म तत्त्वों तक ही सीमित नहीं है। उसमें जीवन के विभिन्न पक्षों का समायोजन भी हुआ है। जैन विद्या की विशाल ज्ञान राशि अध्यात्म, धर्म, आचार, तत्त्वचिंतन, ज्ञानमीमांसा, द्रव्यमीमांसा, गति-स्थिति के नियम, पुद्गल-परमाणु एवं ऊर्जा के नियम, तमस्काय, जीवों की सह-अवस्थिति, दिशा, काल, योग विद्या, आवेग-संवेग, स्वास्थ्य आदि विभिन्न विषयों को अपने आकार में समेटे हुए हैं। इन विषयों की संवादितः आधुनिक विज्ञान के विषय भौतिकी (Physics), जैविकी (Biology), सृष्टिविद्या (Cosmogony), विश्वविज्ञान (Cosmology), मनोविज्ञान (Psychology), परमाणु विज्ञान (Atomic Science), स्वास्थ्य विज्ञान (Health Science), सामाजिक विज्ञान (Social Science) आदि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के साथ है। जिनका तुलनात्मक अनुचिंतन दर्शन और विज्ञान दोनों को ही एक अभिनव दिशा प्रदान करने में सक्षम है।

बीसवीं शताब्दी से पूर्व दार्शनिक विषयों की समीक्षा विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं के संदर्भ में ही की जाती थी। विज्ञान का पक्ष उस समय उपलब्ध या प्रबल नहीं था किंतु जबसे विज्ञान ने विभिन्न दिशाओं में अपनी उपस्थिति प्रमाणित की है तबसे चिंतन एवं लेखन के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। प्राचीन विद्या की संवादिता आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित कर प्राचीन विद्या के गाम्भीर्य को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम विभिन्न लेखक कर रहे हैं। जैन विद्या के प्राचीन संदर्भों को आधुनिक विज्ञान के विषयों के साथ तुलना अथवा संवादिता स्थापित करने के प्रयत्नों में अग्रणी लेखकों की पंक्ति में आचार्य महाप्रज्ञ का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने जैन विद्या को एक नया आयाम प्रदान किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान सम्बन्धी अपनी अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए कहा है — “सत्य में कोई द्वैत नहीं होता। किसी भी माध्यम से सत्य की खोज करने वाला जब गहरे में उतरता है और सत्य का स्पर्श करता है तब मान्यताएं पीछे रह जाती हैं और सत्य उभरकर सामने आ जाता है। बहुत लोगों का एक स्वर है कि विज्ञान ने धर्म को हानि पहुंचाई है, जनता को धर्म से दूर किया है। बहुत सारे धर्मगुरु भी इसी भाषा में बोलते हैं, किंतु यह स्वर वास्तविकता से दूर प्रतीत होता है। मेरी निश्चित धारणा है कि विज्ञान ने धर्म की बहुत सत्यस्पर्शी व्याख्या की है और वह कर रहा है। जो सूक्ष्म रहस्य धार्मिक व्याख्या ग्रन्थों में अब्याख्यात है, जिनकी व्याख्या के स्रोत आज उपलब्ध नहीं हैं, उनकी व्याख्या वैज्ञानिक शोधों के संदर्भ में बहुत प्रामाणिकता के साथ की जा सकती है। दर्शन और विज्ञान की सम्बन्धित शाखाओं का तुलनात्मक अध्ययन बहुत अपेक्षित है। ऐसा होने पर दर्शन के अनेक नए आयाम उद्घाटित हो सकते हैं।” आचार्य महाप्रज्ञ की इस सर्वतोप्राही ग्रहणशील मनीषा ने आधुनिक युग के अनेक चिंतकों, लेखकों, साहित्यकारों, समाज सुधारकों, वैज्ञानिकों आदि को अपनी ओर आकृष्ट किया है। उनके यथार्थप्राही वैचारिक एवं क्रियान्विति के समन्वय ने युग को एक नया बोध/संबोध प्रदान किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ के लेखन के इस आयाम से आकृष्ट होकर ही प्रो. महावीर राज गेलड़ा ने प्रस्तुत ग्रन्थ “जैन विद्या और विज्ञान : संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य” का प्रणयन किया है। ग्रन्थ-लेखन की आधारभूमि को प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि “----- जैन दर्शन और विज्ञान तथा मनोविज्ञान पर आचार्य महाप्रज्ञ का लेखन अधिकारपूर्ण हुआ है तथा यह

साहित्य इतने परिमाण में है कि पाठकों के अध्ययन के लिए एक पुस्तक का आकार ले सकता है। मेरी भावना बनी कि एक कार्ययोजना के द्वारा उपर्युक्त साहित्य का संकलन, विश्लेषण कर विस्तार दूं।”

प्रो. महावीर राज गेलड़ा मुख्य रूप से विज्ञान के अध्येता रहे हैं, इसी पृष्ठभूमि के आधार पर उन्होंने दर्शन के गहन तत्त्वों को समझने का प्रयत्न किया है। उनकी अपनी विशिष्ट वक्तृत्व शैली है जिसके माध्यम से वे श्रोता तक अपनी बात बहुत ही तर्कसंगत एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से पहुंचाने में सक्षम हैं। जिससे श्रोता का विषय के प्रति सहज आकर्षण तो बढ़ता ही है तथा वह उस विषय के प्रति और अधिक जिज्ञासु हो जाता है।

प्रो. महावीर राज गेलड़ा ने प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य के आलोक में किया है। प्ररोचना में उन्होंने “विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय” शीर्षक में आचार्य महाप्रज्ञ के द्वारा प्रयुक्त विज्ञान के विषयों का उल्लेख करके प्रस्तुत ग्रन्थ के विवेच्य विषय का संकेत बहुत ही स्पष्ट रूप से पाठक के सामने प्रस्तुत कर दिया है। प्रो. गेलड़ा ने आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों का मात्र संकलन ही नहीं किया है। उनकी समपुष्टि में उन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन को भी प्रस्तुत किया है। उसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जो उनकी वैज्ञानिक समझ की गंभीरता को प्रस्तुत करते हैं -

- द्रव्यमान (mass) और शक्ति (energy) के परस्पर रूपान्तर के सम्बन्ध में आइंस्टीन द्वारा प्रदत्त समीकरण $E = mc^2$ का उल्लेख विज्ञान के विद्यार्थी को दर्शन के अध्ययन की ओर आकृष्ट करता है।
- कर्म प्रकम्पन के महाप्रज्ञ के सिद्धान्त में अपनी सहमति प्रस्तुत करते हुए विद्वान लेखक लिखते हैं कि “कर्म को प्रकम्पित करने के लिए श्वास और संकल्प को जो प्रधानता दी है उसका संभवतः यह कारण है कि कर्म का भौतिक स्वरूप चतुःस्पर्शी पुद्गलों से बना है और चतुःस्पर्शी पुद्गलों का प्रकम्पन चतुःस्पर्शी पुद्गल ही कर सकते हैं। यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि सूक्ष्म, सूक्ष्म को प्रभावित करता है।”
- आचार्य महाप्रज्ञ प्रदत्त सर्वज्ञता की अवधारणा को सम्पुष्ट करते हुए प्रो. गेलड़ा ने गणित की दृष्टि से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य को अभिव्यक्त किया है। वे लिखते हैं - “गणितीय दृष्टि से अनंत

और शून्य का अति गहरा सम्बन्ध है। कोई इकाई जब अनन्त होने लगती है तो उससे जुड़ी दूसरी इकाई स्वतः शून्य हो जाती है। केवलज्ञानी का ज्ञान अनन्त होता है, इस अनन्त के कारण समय की इकाई शून्य हो जाती है अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान का अंतर नहीं रहता।" इसी प्रकार दिशा, काल, विश्वविज्ञान आदि विषयों की समपुष्टि में विज्ञान के प्रामाणिक तथ्यों की प्रस्तुति दर्शन के संदर्भ में करके निश्चित रूप से ही विद्वान लेखक ने श्लाघनीय कार्य किया है।

प्रबुद्ध लेखक ने अनेक स्थलों पर अपने मौलिक विचारों की भी प्रस्तुति दी हैं। यद्यपि उन विचारों के साथ अन्य चिंतकों की सहमति-असहमति हो सकती है, किंतु डॉ. गेलड़ा ने उन विषयों को प्रस्तुत कर चिंतन के क्षेत्र को विस्तार दिया है। इस संदर्भ में 'स्यादवाद' पर किया गया उनका विमर्श मननीय है। वे लिखते हैं — "कण और लहर के वैज्ञानिक उदाहरण की जब हम स्यादवाद की दृष्टि से मीमांसा करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि गति करते समय दो स्थितियां बनती हैं —

- कण का अस्तिभाव होता है तो तरंग का नास्तिभाव विद्यमान रहता है।
- तरंग का अस्तिभाव रहता है तब कण का नास्तिभाव विद्यमान रहता है। यह अस्ति-नास्ति भाव स्वगत है, परगत नहीं। ----- स्यादवाद का तीसरा अंग 'अवक्तव्य' है। इस पर भी वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में चिंतन आवश्यक है। ----- विज्ञान जगत में अवक्तव्य का अर्थ अनप्रेडिक्टेबल के रूप में लिया गया है। सूक्ष्म पदार्थ के व्यवहार को समझने में जब यह निश्चित नहीं हो सकता है कि पदार्थ कण रूप व्यवहार कर रहा है या लहर रूप व्यवहार कर रहा है तो इसे उस समय के लिए अवक्तव्य कहा गया है। ----- इससे प्रतीत होता है कि अवक्तव्यता पदार्थ के कारण नहीं है किंतु ज्ञाता के सीमित ज्ञान के कारण है।"

आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में "डॉ. महावीर राज गेलड़ा आगमों के गहन अध्येता है और विज्ञान के सद्यस्क अनुसंधानों की जानकारी रखने के लिए विज्ञान के ग्रंथों का अध्ययन करते रहते हैं।" डॉ. गेलड़ा की यह विशेषता प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेकशः मुखर हुई है। वे एक वैज्ञानिक हैं तो साथ में जैन विद्या मनीषी भी हैं। तेरापंथ दर्शन के प्रति गहन रुचि एवं उसकी प्रांजल

अभिव्यक्ति के कारण ही गणाधिपति श्री तुलसी ने उनको 'तेरापंथ प्रवक्ता' के गरिमाय संबोधन से सम्बोधित किया है। डॉ. गेलड़ा द्वारा प्रणीत "जैन विद्या और विज्ञान; संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य" नामक ग्रन्थ दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करेगा, ऐसा विश्वास है। डॉ. गेलड़ा का यह प्रयत्न कार्य का प्रारम्भ है इति नहीं है। उनको इस दिशा में और अधिक कार्य करना है।

जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) के शोध विभाग "महादेवलाल सरावगी अनेकांत शोधपीठ" के तत्त्वावधान में समायोजित यह शोध कार्य शोधपीठ के उद्देश्यों की सम्पूर्ति में उठा एक विशिष्ट कदम है, ऐसा मेरा मानना है।

आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में जैन दर्शन के संदर्भ में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्यशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान आदि विभिन्न विषयों का विशद विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ वैज्ञानिक अवधारणाओं को केन्द्र में रखकर प्रणीत हुआ है। इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान महाप्रज्ञ साहित्य में उपलब्ध तद्-तद् विषयों को अपने लेखन का विषय बनाकर जैन विद्या के शैक्षणिक विस्तार में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। अनेकान्त शोधपीठ का यह संकल्प भी है कि इस प्रकार अनेक विषयों की कार्ययोजना बनाकर जैन विद्या के अमूल्य चिंतन को प्रकाश में लाया जाए। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी संकल्प की सम्पूर्ति में उठा प्रथम एवं एक विशिष्ट कदम है।

समणी मंगलप्रज्ञा

निदेशक - महादेव लाल सरावगी अनेकांत शोधपीठ
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनू (राज.)

इजलिन, (न्यूजर्सी) अमेरिका

7/7/2004

प्ररोचना

अग्रणी लेखक	3
विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय	4
विधायक दृष्टिकोण	5
अनुभव सिद्ध तथ्य	5
सत्य में द्वैत नहीं	5
सूक्ष्म पर्यायों की खोज	6
गहरी प्रतिबद्धता	6
प्रेक्षा	7
मेरी भावना	8
मेरे अध्ययन की सीमाएँ	9
प्रकाशित साहित्य	9
प्रतिनिधि साहित्य का चयन	11
आभार	12

प्ररोचना

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जैन दर्शन के लेखन में एक स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है। लेखन शैली में अन्य भारतीय दर्शन—वेदान्त, सांख्य, बौद्ध आदि दर्शनों से जो विस्तार में तुलना होती थी, उसकी जगह विज्ञान के परिणामों से तुलना होने लगी है। जैन दार्शनिक पूर्व के लेखन में, वेदान्त के अद्वैतवाद या सांख्य के द्वैतवाद से तुलना करते थे अथवा वेदान्त के नित्य की धारणा तथा बौद्धों के अनित्य की धारणा के साथ जैनों के परिणामी नित्यत्ववाद की स्थापना करते थे, अब यह आवश्यकता प्रायः समाप्त हो चुकी है। जब से वैज्ञानिक आइंस्टीन के सापेक्षवाद की भाषा और अर्थ तथा उसके सिद्धान्त का प्रचार हुआ है तब से जैन दर्शन को मानो उसका सशक्त मित्र मिल गया है। ऐसा स्पष्ट होने लगा है कि आइंस्टीन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त और जैन दर्शन का अनेकान्त का सिद्धान्त दोनों के बीच सामंजस्य है। सापेक्षवाद के अतिरिक्त भी आधुनिक विज्ञान के परमाणु संबंधी निष्कर्ष, मनोविज्ञान, कॉस्मोलॉजी की खोजों ने जैन विद्या के अनेक तथ्यों को प्रकट करने में सुविधा प्रदान की है तथा उन्हें पुष्ट भी किया है।

अग्रणी लेखक

इस दृष्टि से जैन विद्या की लेखन शैली में विज्ञान का आंशिक उपयोग होने लगा है। इस परिवर्तित लेखन शैली को अपनाने का श्रेय **आचार्य महाप्रज्ञ** को है और वर्तमान में इस नई परम्परा के वे अग्रणी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस परिवर्तित शैली को अपनाने में उनकी केवल उदारवादी दृष्टि ही नहीं है अपितु सत्य को पाने की गहरी लालसा है। उनका उद्घोष यह है कि सत्य है वह मेरा है, न कि मेरा है वही सत्य है क्योंकि वे अनेकान्तद्रष्टा हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में सापेक्षवाद तथा अनेकान्त का सिद्धान्त इस जगत की घटनाओं को जानने की सशक्त तथा वर्तमान की अन्तिम तकनीक है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करते हुए साहित्य की रचना की है इस कारण उनका साहित्य युग की धारा के साथ प्रचलित और प्रतिष्ठित हुआ है।

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय

1. हमें ज्ञात है कि विज्ञान में विभिन्न विषयों का वर्गीकरण पदार्थ पक्ष को लेकर हुआ है और अध्यात्म शास्त्रों में विषयों का वर्गीकरण भाव पक्ष को लेकर हुआ है। आचार्य महाप्रज्ञ ने भावपक्ष में अव्यक्त द्रव्य को तथा द्रव्य पक्ष में अव्यक्त भाव पक्ष को उजागर कर संगति बिठाई है। उन्होंने पाया है कि विज्ञान और अध्यात्म दोनों सत्य की खोज की दो धाराएं हैं लेकिन विरोधी नहीं है। इनके बीच कोई लक्ष्मण-रेखा स्वीकार नहीं हो सकती।
2. विज्ञान जगत में पदार्थ के स्वरूप को स्थूल और सूक्ष्म दो भागों में बांटा है। वैज्ञानिक हाइजनबर्ग के अनुसार सूक्ष्म पदार्थ के नियम स्थूल पदार्थ के नियमों से भिन्न हैं अतः सूक्ष्म पदार्थ के नियम स्थूल पदार्थ पर लागू नहीं होते। जैन दृष्टि से अष्टस्पर्शी पुद्गल स्थूल हैं और चतुःस्पर्शी पुद्गल सूक्ष्म हैं जो भारहीन भी हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने चतुःस्पर्शी पुद्गलों की तुलना ऊर्जा से कर विज्ञान सम्मत विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त अदृश्य, अभौतिक द्रव्यों का विश्लेषण कर विज्ञान के क्षेत्र को व्यापक बनाने की दिशा प्रदान की है।
3. आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान के जिन मुख्य सिद्धान्तों का उपयोग किया है, वे निम्न हैं -
 - (1) क्रम-विकास (Evolution)
 - (2) आनुवंशिकता (Heredity)
 - (3) सापेक्षता का सिद्धान्त (Theory of Relativity)
 - (4) क्वांटम सिद्धान्त (Quantum Theory)
 - (5) शरीर रचना शास्त्र और मनोविज्ञान (Anatomy and Psychology)
4. जीन्स (Jeans) विज्ञान का अध्ययन अपेक्षाकृत नया है। 'जीन्स' के निर्माण के भेद को अभी समझना है। उनकी दृष्टि में जीन्स सूक्ष्म शरीर हैं और इसमें ऐच्छिक परिवर्तन की संभावना है। आधुनिक प्रयोगों ने यह सिद्ध किया है कि जीन्स पर बाहरी वातावरण का प्रभाव भी होता है। अतः व्यक्तित्व के लिए अकेला जीन्स ही जिम्मेदार नहीं है।

विधायक दृष्टिकोण

आचार्य महाप्रज्ञ का अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय के संबंध में विधायक दृष्टिकोण रहा है। विज्ञान की उपलब्धियों को उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा है कि विज्ञान सूक्ष्म तथ्यों का अन्वेषण कर रहा है, जो प्रायोगिक भी है अतः इससे अगर जैन दर्शन के सूक्ष्म सत्य अधिक स्पष्ट हो रहे हों तो दर्शन की प्रगति के द्वार बन्द नहीं करने चाहिए। आज दर्शन को नया आयाम देने की जरूरत है। यदि उसको नया आयाम नहीं दिया जायेगा तो दर्शन सर्वथा प्रयोग शून्य और अर्थ शून्य बन जाएगा।

अनुभव सिद्ध तथ्य

आचार्य महाप्रज्ञ ने अनुभव सिद्ध तथ्य कहा है कि पुरानी भाषा किसी समय सबके लिए सुगम थी किन्तु समय के प्रभाव के साथ आज वह सुगम नहीं रही। विज्ञान की पद्धति से प्राचीन रहस्यों को अधिक सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है। पुराने ग्रन्थ हैं उनमें सांकेतिक भाषा बहुत है — स्पष्टताएं कम हैं। हमने विज्ञान के माध्यम से जो बातें समझी हैं, वे बातें पुराने ग्रन्थों के आधार पर नहीं समझी जा सकती। विज्ञान का एक और भी अवदान है, उसने हमें कुछ नए उपकरण दिए। एक उपकरण का संबंध आभामंडल से है। यह ऐसा उपकरण है जो हमारे व्यक्तित्व के सूक्ष्म अंश को प्रत्यक्ष गोचर कर सकता है। दर्शन सदा से सूक्ष्म और अभूर्त की चिंता करता रहा है। जितने अंश में विज्ञान ने अभूर्त को पकड़ा उतने अंश में वह दर्शन के निकट आ गया।

सत्य में द्वैत नहीं

आचार्य महाप्रज्ञ का स्पष्ट मत है कि सत्य में कोई द्वैत नहीं होता। वे कहते हैं कि — “किसी भी माध्यम से सत्य की खोज करने वाला जब गहरे में उतरता है और सत्य का स्पर्श करता है, तब मान्यताएं पीछे रह जाती हैं और सत्य उभरकर सामने आ जाता है। बहुत लोगों का एक स्वर है कि विज्ञान ने धर्म को हानि पहुँचाई है, जनता को धर्म से दूर किया है। बहुत सारे धर्म गुरु भी इसी भाषा में बोलते हैं, किन्तु यह स्वर वास्तविकता से दूर प्रतीत होता है। मेरी निश्चित धारणा है कि विज्ञान ने धर्म की बहुत सत्यस्पर्शी व्याख्या की है और वह कर रहा है। जो सूक्ष्म रहस्य धार्मिक व्याख्या ग्रन्थों में अव्याख्यात हैं, जिनकी व्याख्या के स्रोत आज उपलब्ध नहीं हैं, उनकी व्याख्या वैज्ञानिक शोधों के सन्दर्भ में बहुत प्रामाणिकता के साथ

की जा सकती है। दर्शन और विज्ञान की सम्बन्धित शाखाओं का तुलनात्मक अध्ययन बहुत अपेक्षित है। ऐसा होने पर दर्शन के अनेक नए आयाम उद्घाटित हो सकते हैं।”

सूक्ष्म पर्यायों की खोज

आचार्य महाप्रज्ञ दूरदर्शी हैं। जब वे एक धर्मगुरु के रूप में लिखते हैं कि — “मैं स्वीकार करता हूँ कि विज्ञान ने धर्म का जितना उपकार किया है उतना संभवतः किसी ने नहीं किया। यदि आज विज्ञान सूक्ष्म पर्यायों की खोज में नहीं जाता, सूक्ष्म सत्यों की घोषणाएँ नहीं करता तो ये विभिन्न दार्शनिक और अधिक संघर्ष करने लग जाते। अभी दार्शनिकों की तीसरी आँख खुली नहीं है। वे प्रयोग की प्रक्रिया को भूल बैठे हैं। आज का वैज्ञानिक प्रतिदिन नए-नए आविष्कार करता चला आ रहा है। वह प्रयोग में संलग्न है। विज्ञान ने हमारे समक्ष अनेक सूक्ष्म सत्य प्रस्तुत किए हैं। उसने अनेक अव्यक्त पर्यायों को व्यक्त किया है। इस कारण से आज धर्म के प्रति जितना सम्यक् दृष्टिकोण है, वह 500-1000 वर्ष पहले नहीं हो सकता था। आज सूक्ष्म सत्य के प्रति जितनी जिज्ञासा है, उतनी पहले नहीं थी। विज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान की सीमा के आस-पास पहुँच रहा है। वैज्ञानिकों ने कोई साधना नहीं की, अध्यात्म का गहरा अभ्यास नहीं किया, अतीन्द्रिय चेतना को जगाने का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु इतने सूक्ष्म उपकरणों का निर्माण किया है कि जिनके माध्यम से अतीन्द्रिय सत्य खोजे जा सकते हैं। आज का विज्ञान अतीन्द्रिय तथ्यों को जानने-देखने और प्रतिपादन करने में सक्षम है।”

गहरी प्रतिबद्धता

अध्यात्म और विज्ञान की एकता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता प्रकट करते हुए वे लिखते हैं कि — “मैं नहीं मानता कि अध्यात्म और विज्ञान दो हैं। मेरी दृष्टि में ये दो नहीं हैं, भिन्न नहीं हैं। सत्य की खोज चाहे हम अतीन्द्रिय चेतना के माध्यम से करें, चाहे वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा करें, सूक्ष्म की खोज विज्ञान को भी अभिष्ट है और अध्यात्म को भी यह इष्ट है। यह अंतर हो सकता है कि विज्ञान के सामने केवल भौतिक जगत रहा। भौतिक विज्ञान के संदर्भ में इसका विकास हुआ अध्यात्म के आचार्यों के सामने मुख्यतः आत्मा और चैतन्य रहे। उन्होंने इसी पर अधिक खोजें की किन्तु कोई भी भौतिक विज्ञानी चेतना से हटकर कोई खोज नहीं कर सकता। केवल उपकरणों के द्वारा कोई सार्थक खोज नहीं हो सकती और कोई भी अध्यात्म

का विज्ञानी केवल चैतन्य के आधार पर उन खोजों को आगे नहीं बढ़ा सकता। अध्यात्म के जो महान आचार्य हुए हैं, उन्होंने अचेतन और जड़ पदार्थ की खोज भी की है। दोनों के बिना हमारा समन्वित व्यवहार नहीं चलता। यदि विज्ञान का व्यवसायीकरण हुआ है तो आज योग का भी व्यवसायीकरण हुआ है। ये दोनों बातें वांछनीय नहीं हैं। दोनों ही सत्य की खोज के लिए हैं, इसलिए दोनों का योग बहुत आवश्यक है।”

आध्यात्मिक व्यक्ति सत्य की खोज करे अथवा एक वैज्ञानिक सत्य की खोज करे — दोनों की प्रक्रिया एक ही है। दोनों को ही स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना पड़ता है। आध्यात्मिक व्यक्ति की खोज का साधन बनता है — अतीन्द्रिय ज्ञान और वैज्ञानिक की खोज के साधन बनते हैं — सूक्ष्मवीक्षण और दूरवीक्षण यंत्र। अतीन्द्रिय ज्ञानियों ने परमाणु की खोज की। आज परमाणु वैज्ञानिक भी चेतना की ओर आ रहे हैं। इस तथ्य को पुष्ट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि — “वैज्ञानिक आइंस्टीन से अंतिम समय में पूछा गया — ‘अगले जन्म में आप क्या करना चाहेंगे ?’ उन्होंने उत्तर दिया — ‘इस जन्म में मैंने ज्ञेय को खोजा, मेरा सारा विषय वस्तुनिष्ठ (Object) रहा। अब मैं चाहता हूँ कि अगले जन्म में मैं ज्ञाता को जानने का प्रयत्न करूँ। आत्मा को जानूँ, चैतन्य को जानूँ, चैतन्य के रहस्यों को जानूँ— यह मेरी अगले जन्म की इच्छा है।”

प्रेक्षा

आचार्य महाप्रज्ञ प्रेक्षा-ध्यान के प्रवर्तक हैं। वे अनुभव करते हैं कि वैज्ञानिक चिन्तन और आविष्कार के बाद विकास की अवधारणा इतनी जटिल हो गई है कि पीछे लौटना भी संभव नहीं और पीछे लौटे बिना सभ्यता पर छाए हुए संकट के बादलों का बिखरना भी संभव नहीं। अतः तकनीकी विकास पर विवेकपूर्ण अंकुश लगाना जरूरी है। क्या यह तकनीकी विकास उपादेय है, जो मानव की अस्मिता पर प्रश्न-चिन्ह लगा रहा है ? हमें मुड़ कर देखना होगा कि सीमातीत तकनीकी विकास के बाद मनुष्य ने क्या खोया और क्या पाया ? मानसिक शांति, तनाव मुक्त मनः स्थिति एवं स्वास्थ्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है?

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस समस्या के निराकरण हेतु दर्शन और योग को प्रायोगिक रूप दिया है, जो प्रेक्षा ध्यान और जीवन विज्ञान के रूप में विख्यात हुआ है। प्रेक्षा ध्यान के रहस्य को प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि प्रेक्षाध्यान

के बहुत सारे प्रयोगों में साइकोलॉजी, फिजियोलॉजी, सोशियोलॉजी, इकोलॉजी आदि का सहारा लिया गया है। इन्हीं के आधार पर प्रेक्षाध्यान के सारे प्रयोग चले हैं और चल रहे हैं। इनसे बड़ी मदद मिली है। प्रेक्षाध्यान में पहले शरीर के रहस्यों को समझा जाता है। शरीर के रहस्यों को समझने में शरीर-शास्त्र तथा मन को समझने के लिए मनोविज्ञान आवश्यक है। **प्रेक्षाध्यान में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग कर, शरीर, मन और बाद में चेतना के स्तर पर पहुँचने का प्रावधान किया है।**

आचार्य महाप्रज्ञ का मानना है कि विज्ञान एवं तकनीकी विकास ने हमें एक सुलभता प्रदान की है जो दर्शन एवं अध्यात्म साधना के द्वारा प्रदत्त वृत्ति-परिष्कार की पद्धतियों का वस्तुनिष्ठ अंकन कर उनकी उपादेयता को और अधिक आधारभूत बना सकती है। उदाहरणार्थ — अमुक-अमुक ध्यान प्रणाली द्वारा चित्त की चंचलता या शरीर का तनाव या भावों का परिष्कार घटित होता है या नहीं। इसे वस्तुनिष्ठ रूप में अंकित करने वाले उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से पूर्ण वैज्ञानिक विधि-सम्मत परीक्षणों द्वारा मानव जाति की अनेक समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। यदि ऐसे प्रयोग एवं परीक्षण शिक्षा क्षेत्र में उपलब्ध करवाए जाएं तो असीम भोग-वृत्ति से उत्पन्न हिंसा, विषमता, वंचना आदि को न्यून करने की दिशा में एक निर्णायक प्रतिकार की क्रियान्विति की जा सकती है।

मेरी भावना

उपर्युक्त संदर्भों से यह ज्ञात होता है कि जैन दर्शन और विज्ञान तथा मनोविज्ञान पर आचार्य महाप्रज्ञ का लेखन अधिकारपूर्ण हुआ है तथा यह साहित्य इतने परिमाण में है कि पाठकों के अध्ययन के लिए एक पुस्तक का आकार ले सकता है। मेरी भावना बनी कि एक कार्य-योजना द्वारा उपर्युक्त साहित्य का संकलन, विश्लेषण कर, विस्तार दूँ। **जिससे मैं अपने धर्म-गुरु के प्रति श्रद्धासिक्त भावामिव्यक्ति कर सकूँ।** यद्यपि मेरा विषय रसायन-विज्ञान का रहा परन्तु जैन दर्शन के अध्ययन की रुचि आरम्भ से रही तथा जिसे मैंने गुरु आशीर्वाद और श्रद्धा से सीखा। बादलों को जब अनुकूल हवाओं का वेग मिल जाता है, तो वे बरसते हैं। यही मेरे साथ हुआ। समणी मंगलप्रज्ञाजी जो कि 'महादेवलाल सरावगी अनेकान्त शोधपीठ' की निर्देशिका हैं, उन्होंने कहा कि मुझे जैन विद्या और विज्ञान पर मौलिक एवं नवीन लेखन करना चाहिए। उनकी प्रेरणा और मेरे मन की भावना को मानो मणि-कांचन का योग मिल गया हो। उन्हीं दिनों मैं जैन विश्व भारती संस्थान

में व्याख्यान देने गया हुआ था। वहां संस्थान की कुलपति श्रीमती सुधामही रघुनाथन भी एक व्याख्यान में उपस्थित थीं। उनका आग्रह रहा कि मुझे आचार्य महाप्रज्ञ के वैज्ञानिक साहित्य पर लेखन करना चाहिए। उसी दिन उन्होंने इस संबंध में एक औपचारिक पत्र भी मुझे भेज दिया। मेरी भावना को साकार होना था और मैंने यह विषय चुना "आचार्य महाप्रज्ञ का जैन विद्या और वैज्ञानिक तथ्यों के समन्वय में योगदान"। समणी मंगलप्रज्ञाजी ने मेरी योजना की चर्चा आचार्य महाप्रज्ञ से की। वहाँ की स्वीकृति के बाद जैन विश्व भारती संस्थान की कुलपति के पास योजना भेजी। समणी मंगलप्रज्ञा जी ने औपचारिकताएं पूर्ण करने में भी सहयोग किया उसका परिणाम है कि यह लेखन-यात्रा हो सकी है।

मेरे अध्ययन की सीमाएं

लेखन करने से पूर्व आचार्य महाप्रज्ञ की हिन्दी भाषा में प्रकाशित अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। आगमों के संशोधन और सम्पादन में दी गई टिप्पणियां पढ़ी। जहां भी जैन विद्या और विज्ञान के समन्वय का लेखन हुआ, उसे संग्रहित करता गया। अध्ययन करते समय यह आभास होता गया कि वे एक असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न लेखक हैं। वे भारतीय चिंतन परम्परा के गंभीर ज्ञाता हैं और आधुनिक मनोविज्ञान तथा विज्ञान के चिंतन से भी परिचित हैं। आगम और दर्शन के विषयों का प्रतिपादन, बोधगम्य करने की दृष्टि से विज्ञान का उपयोग किया है। पाठकगण पाएंगे कि युग बोधकारी साहित्य में भाषा सरल है लेकिन दर्शन के साहित्य में दार्शनिक भाषा ही छाई रही है। आचार्य महाप्रज्ञ की पुस्तक 'संबोधि' के आशीर्वचन में गणाधिपति तुलसी ने लिखा है कि लेखक ने अपनी प्रतिपादन-पद्धति में समयानुसार कितना परिवर्तन कर लिया है, यह इनके पिछले और वर्तमान साहित्य को देखने से ही पता लग जाता है। 'संबोधि' में पद जहां सरल और रोचक बन पड़े हैं वहां उतनी ही सफलतापूर्वक गहराई में पैठे हैं। इस संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि 'मैं सरल संस्कृत लिखने का अभ्यासी नहीं हूँ पर इसकी भाषा-सारल्य पर गणाधिपति ने साश्चर्य आशीर्वाद दिया, इसे मैं अपने जीवन की सफलता का प्रकाश-स्तम्भ मानता हूँ।'

प्रकाशित साहित्य

मूल साहित्य का अध्ययन करने के बाद आचार्य महाप्रज्ञ पर हिन्दी भाषा में पूर्व में प्रकाशित साहित्य का अवलोकन किया। 'महाप्रज्ञ व्यक्तित्व और

कर्तृत्व' पहली पुस्तक है जिसका सम्पादन 1980 में साहित्यकार श्री कन्हैयालाल फूलफगर के द्वारा हुआ। फूलफगर जी की दूसरी श्रेष्ठ सम्पादित पुस्तक 'आचार्य महाप्रज्ञ का रचना संसार' सन् 2001 में प्रकाशित हुई। इसमें आचार्य महाप्रज्ञ के अद्यतन साहित्य साधना की समीक्षा हुई है। मुनि धनंजय कुमार की पुस्तक 'महाप्रज्ञ जीवन दर्शन' 1996 में प्रकाशित हुई। लेखक ने श्रद्धाभाव से उल्लेख किया है कि 'महाप्रज्ञ का जीवन, श्रद्धा का, समर्पण का दस्तावेज है, प्रज्ञा और अंतर्दृष्टि का अभिलेख है, शांति और विधायक दृष्टि से परिपूर्ण जीवन का संदेश है। इस पुस्तक ने महाप्रज्ञ के वैचारिक, साहित्यिक और दार्शनिक व्यक्तित्व को प्रकट किया है। 2002 में 'महाप्रज्ञ दर्शन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसके विद्वान लेखक डा. दयानन्द भार्गव हैं। इसमें अन्य विषयों के साथ विज्ञान के भी उदाहरण सम्मिलित करते हुए एक अध्याय 'सापेक्षता और अनेकान्त' पर लिखा है। आचार्य महाप्रज्ञ के विज्ञान सम्बन्धी साहित्य को देखते हुए यह अध्याय प्रारम्भिक किन्तु महत्वपूर्ण प्रयत्न है। लेखक ने आचार्य महाप्रज्ञ की दार्शनिकता के नवीन पहलुओं को एक नए दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया है। 2003 में 'फांइडिंग योर स्पिच्युवल सेण्टर' पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमें अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों भाषाओं का उपयोग हुआ है। यह अत्यंत आकर्षक चित्रों से सजाई गई है। इसमें आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में से अनेक उपयोगी संदर्भों (Quotations) को उद्धृत किया है। पुस्तक देश-विदेश में लोकप्रिय हुई है। इसके संकलनकर्ता श्री रणजीत दूगड़ हैं। सन् 2004 के पूर्वार्द्ध में आचार्य महाप्रज्ञ के ऋषभायण काव्य पर 'अनुकृति' पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसके लेखक कवि-हृदय श्री जतन लाल जी रामपुरिया हैं। श्री गोविन्द लाल जी सरावगी के सौजन्य से यह पुस्तक मुझे उस समय प्राप्त हुई जब मैं इस पुस्तक की प्रस्तावना लिख रहा था अतः इसका उपयोग हो सका है। यह पुस्तक भाषा, शैली, विषय-वस्तु से श्रेष्ठ है तथा इसका आवरण पृष्ठ भी अत्यंत आकर्षक और सुंदर है। सन् 2005 में यह पुस्तक 'जैन विद्या और विज्ञान; संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रही है। पाठक गण यह निर्णय ले सकेंगे कि मैं इस कार्य में उनके लिए कितना उपयोगी हो सका हूँ।

मुझे इसका आभास है कि इस पुस्तक में मेरी लेखनी से साहित्यकार की भाषा और शैली सम्भवतः नहीं झलक पाई है लेकिन वैज्ञानिक की सत्य-गवेषी दृष्टि निरन्तर बनी रही है। फिर भी इस पुस्तक की सभी कमियों का

उत्तरदायित्व मेरा है। मुझे प्रसन्नता है कि इस लेखन के कारण मुझे युग के वरिष्ठ चिंतक आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य को विस्तार से पढ़ने का अवसर मिला। लेखन करते समय नए वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश भी यत्र-तत्र किया गया है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कि आचार्य महाप्रज्ञ के संस्कृत साहित्य पर एक राष्ट्रीय सेमीनार हुआ है तथा डॉ. हरिशंकर पाण्डेय के निर्देशन में शोध कार्य भी प्रकाशित हुआ है।

प्रतिनिधि साहित्य का चयन

आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में जैन दर्शन के साथ विज्ञान और मनोविज्ञान के तथ्य उपलब्ध हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न विषयों के प्रतिनिधि साहित्य का चयन करते हुए छह खण्ड बनाए गये हैं तथा इसके पूर्व 'जैन विद्या और विज्ञान पर सामान्य परिचयात्मक एक अध्याय प्रेषित किया गया है। उन खण्डों के नाम निम्न प्रकार हैं —

1. नया चिन्तन
2. द्रव्य मीमांसा और दर्शन
3. आगम और विज्ञान
4. जैन गणित तथा कर्मवाद
5. प्रेक्षा ध्यान और रोग निदान (थैरेपी)
6. आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व

1. पहले खण्ड में समस्त साहित्य के प्रतिफलन में जो नवीन धारणाएं प्रस्फुटित हुई हैं उन्हें संकलित किया गया है। उसका शीर्षक 'नया चिन्तन' दिया गया है।
2. दार्शनिक साहित्य में आचार्य महाप्रज्ञ की पहली और प्रसिद्ध पुस्तक "जैन दर्शन मनन और मीमांसा" में वर्णित छह द्रव्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है तथा अनेकान्त के वैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। इस द्वितीय खण्ड का नाम "द्रव्य मीमांसा और दर्शन" दिया गया है।
3. तृतीय खण्ड में जैन आगम साहित्य के प्रतिनिधि आगम आचारांग, स्थानांग और भगवती के उन प्रकरणों पर चर्चा की है जहाँ आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन के तत्त्वों को विज्ञान एवं गणित संगत बनाया है। इसका शीर्षक 'आगम और विज्ञान' दिया गया है।

4. चौथे खण्ड में 'जैन गणित तथा कर्मवाद' पर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है।
5. पांचवें खण्ड में युग बोधकारी नव-सृजित साहित्य को स्थान दिया गया है जिसका नाम 'प्रेक्षा ध्यान और रोग निदान' रखा गया है। जो प्रेक्षा ध्यान, जीवन विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित है।
6. छठे खण्ड में आचार्य महाप्रज्ञ और डॉ. कलाम के उन वक्तव्यों और वार्ताओं का संकलन किया गया है जिसमें आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व की बात कही गई है। अतः इस खण्ड का नाम 'आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व' रखा गया है।

इस पुस्तक के पृष्ठों का अध्ययन करते समय यह प्रतीत होता जाएगा कि ऐसे धर्माचार्य विरल ही होते हैं, हजारों वर्षों में होते हैं जो परम्परा में चले आ रहे उलझे प्रश्नों का समाधान देते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने अनेक उलझे प्रश्नों का समाधान दिया है। इसका कारण यह है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने वैज्ञानिक सोच तथा सापेक्ष दृष्टि को कभी भी ओझल नहीं होने दिया है।

आमार

मेरे दायित्व का निर्वाह करता हुआ मैं उन सभी को अन्तर्मन से व्यक्तिशः धन्यवाद देता हूँ जिनके सहयोग के बिना यह प्रकाशन संभव नहीं हो सकता था। मैं अनुगृहीत हूँ आचार्य महाप्रज्ञ का, जो वर्तमान में जैन विद्या के विश्वकोष (Encyclopaedia) सदृश ज्ञान के धनी हैं, ने इस पुस्तक को आशीर्वाद दिया है। मैं कृतज्ञ हूँ शासनगौरव साध्वी राजीमतीजी का कि उन्होंने मेरे लेखन को आद्योपांत पढ़ा तथा इस पुस्तक का आमुख भी लिखा। साध्वीश्री योग साधिका के साथ जैन आगमों की मनीषी भी है। मैं अनुगृहीत हूँ समणी मंगलप्रज्ञा जी का, कि उन्होंने अपने न्यूजर्सी, अमेरिका के प्रवास की व्यस्तता के बीच समय निकालकर पुस्तक का सम्पादन किया तथा सम्पादकीय लिखा। साध्वी राजीमतीजी तथा समणी मंगलप्रज्ञा जी के द्वारा सम्पादित होने से यह पुस्तक दर्शन और विज्ञान की साहित्य-दीर्घा में विशेष स्थान बनाएगी, जिसकी मुझे प्रसन्नता है। मैं इसे उनका उपकार मानता हूँ। 'प्रेक्षा ध्यान और रोग निदान (थैरेपी)' खण्ड के लेखन में डॉ. अरविंद जैन, जोधपुर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. जैन ने अपने स्तर पर प्रेक्षा ध्यान के चिकित्सकीय प्रयोग किए हैं, उन प्रयोगों को पुस्तक में स्थान दिया

गया है। आयुर्विज्ञान के अनुसार शरीर शास्त्र का वर्णन भी विषय वस्तु को स्पष्ट करने के लिए समाहित किया गया है। भौतिक शास्त्र सम्बन्धी आधुनिक धारणाओं को स्पष्ट करने में पीयूष जैन, अहमदाबाद से विवेचनात्मक वार्ताएं हुईं, उसका परिणाम है कि पाठकगण जैन द्रव्य मीमांसा के अध्याय में अनेक विषयों की भौतिक विज्ञान से की गई तुलना में नया चिंतन पाएंगे। मैं मेरे कर्तव्य निर्वाह में अधूरा रहूंगा, अगर मेरी धर्मपत्नी श्रीमती गुलाब गेलड़ा के प्रति आभार प्रकट न करूं, जो निरंतर मेरे लेखन कार्य में सहयोगी रही है तथा पूर्ण दक्षता से प्रूफ-रीडिंग भी किया है।

अंत में जैन विश्व भारती संस्थान की कुलपति श्रीमती सुधामही रघुनाथन, कुलसचिव जे. आर. भट्टाचार्य तथा महादेवलाल सरावगी अनेकान्त शोधपीठ, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं जिनके आर्थिक सहयोग से पुस्तक लेखन की योजना और प्रकाशन सम्पन्न हुआ है।

5 च 20,
जवाहर नगर
जयपुर (राज.)

प्रोफेसर डॉ. महावीर राज गेलड़ा
पूर्व कुलपति
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं



जैन विद्या और विज्ञान का सामान्य परिचय

1. जैन विद्या और विज्ञान	17
2. जैन धर्म	18
(i) अनगार धर्म	19
(ii) अगार धर्म	20
3. जैन दर्शन	21
4. जैन विज्ञान	22
(i) प्रकृति का दर्शन	23
(ii) विज्ञान का दर्शन	24
(iii) विज्ञान का समाज शास्त्र	25

जैन विद्या और विज्ञान का सामान्य परिचय

जैन विद्या और विज्ञान

जैन विद्या का अभिप्राय जैन दर्शन और जैन तत्त्व-ज्ञान से है। भगवान महावीर की वाणी जो चौदह पूर्वों में तथा आगमों में संकलित हुई है, वह जैन-विद्या है। महावीर के बाद के आचार्यों ने अनेक विषयों को विस्तार दिया है। भाष्य, टीका आदि ग्रन्थों की रचना की है, वह भी जैन विद्या का ही अंश है। इनमें जीवन और जगत के प्रत्यक्ष और परोक्ष सभी विषयों पर गहरा चिंतन हुआ है। इसी चिंतन के परिणामस्वरूप जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति विकसित हुई है। विज्ञान, भूगोल, खगोल, गणित आदि विषय भी इसी में सम्मिलित हुए हैं।

जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन एवं आध्यात्मिक धर्म है। जैन धर्म के अनुसार यह सृष्टि अनादि है और काल-चक्रीय है, वर्तुलीय है। अतः अतीत और अनागत दोहराते रहते हैं। प्रत्येक काल-चक्र के साथ अर्हत्तो-तीर्थकरों के इसमें होने की परम्परा का इतिहास है। अर्हत् वे हैं, जिन्होंने राग-द्वेष दोनों से मुक्ति पाई है। अर्हत्तों का प्रतीक सिद्धान्त अहिंसा रहा है। अहिंसा के इतिहास का प्राचीन होना स्वाभाविक है क्योंकि अहिंसा ने मानवीय सभ्यता को विकास का आधार दिया है। समता, सहिष्णुता, मैत्रीभाव, ये अहिंसा के प्रतिफल हैं, जिसे मानवीय जगत ने सदैव स्वीकार किया है। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर जो चौबीसवें तीर्थकर थे, उन्होंने अहिंसा सिद्धान्त को पुनर्जीवित कर प्रचार किया। अपरिग्रह, संयम और जीवन के प्रति परस्पर सहयोग और आदर की भावना को प्रचलित किया। महावीर 'जिन' थे (अर्थात् उन्होंने इन्द्रिय वासना को जीता था) अतः महावीर के अनुयायी जैन कहलाए।

जैन धर्म ने मानवीय स्वतन्त्रता को, आत्मा के कर्तृत्व को तथा पुरुषार्थ को महत्त्व दिया है। ज्ञान और चिन्तन में व्यापकता लाने के लिए तथा आग्रह बुद्धि की निवृत्ति के लिए अनेकान्त सिद्धान्त ने जैन दर्शन को प्रभावी बनाया है। वस्तु में अनेक धर्म होने के कारण, इसे जानने की विभिन्न दृष्टियों के

अस्तित्व को अनेकान्त कहा। जैन संस्कृति ने दया और मैत्री को महत्त्व देकर शांति के जीवन को प्रशस्त किया। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जैन समाज की पहचान शाकाहारी समाज के रूप में प्रतिष्ठित है। **जैनों ने सदैव यह ध्यान रखा है कि वे किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिंसात्मक कार्यों में भाग न ले।** जैन नीति शास्त्र के अनुसार जैन गृहस्थ पांच अणुव्रतों का पालन अपनी क्षमतानुसार करते हैं — वे अणुव्रत हैं — अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। रात्रि भोजन न करने का संकल्प भी लेते हैं। लम्बे समय से चली आ रही जैन श्रमण-श्रमणी की जीवित परम्परा ने तथा वीतरागियों की संग्रहित वाणी ने लोक कल्याण के कार्यों में सहयोग किया है। यह सचाई है कि जैनों की कोई राजनैतिक संस्था नहीं है क्योंकि वे धर्म को राजनीति से पृथक रखना चाहते हैं। धर्म पालन में जैनों की भावना रहती है कि वे समाज-सेवा करे तथा मोक्ष प्राप्ति के पथ की ओर अग्रसर हों। जैन धर्म किसी अन्य धर्म व धर्मावलम्बी का तिरस्कार नहीं करता और न ही किसी धार्मिक-समाज को समूह रूप से जैन धर्म में परिवर्तित करने का कार्यक्रम बनाता है। जैन धर्म में व्यक्ति के हृदय परिवर्तन को महत्त्व दिया गया है। जैनों का उद्देश्य स्पष्ट है कि वे इन्द्रियगत वासना को जीतने के लिए साधना करते हैं। अन्य को जीतने का कोई भी प्रयत्न, जैन धर्म को मान्य नहीं है। यह माना गया है कि आत्मा का ज्ञान परिपूर्ण नहीं होता, जब तक अचेतन को भी नहीं जान लिया जाता। इसलिए आत्मा (चेतन) और अनात्मा (अचेतन) दोनों की समग्रता के ज्ञान की साधना की जाती है।

जैन शास्त्रीय ज्ञान को तीन प्रमुख खण्डों में बांटा जा सकता है।

- धर्म
- दर्शन
- विज्ञान

जैन धर्म

धर्म क्या है ? इस जगत में धर्म की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। काल के अन्तराल में अनेक परिभाषाएं उदित हुई हैं लेकिन वे ही धार्मिक मान्यताएं स्थिर हो सकीं जिन्होंने आचरण की शुद्धता पर जोर दिया। जैन धर्म की यह विशेषता रही कि इसमें अहिंसा और अपरिग्रह को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है, जिससे मैत्री और साम्य भाव विकसित हुए हैं। आज जैन धर्म का नाम जगत के उन धर्मों में आता है जो प्रभावी रूप से पुनः विकास कर रहे हैं। यह सही है कि जैनों की संख्या कम है क्योंकि इन्होंने संख्या

बढ़ाने की ओर ध्यान नहीं दिया। समाज-धर्म की अपेक्षा मोक्ष-धर्म को अधिक महत्त्व दिया। जैन धर्म का अहिंसा का सिद्धान्त आज भी अत्यन्त लोकप्रिय है और समाजगत तथा राष्ट्रगत विद्वेष को दूर करने में सक्षम है।

जैनों का विश्वास है कि इस सृष्टि में दो ही मूल तत्त्व हैं —

- जीव
- अजीव

इस सिद्धान्त की सीमा यह है कि जीव कभी अजीव नहीं हो सकता और अजीव कभी जीव नहीं हो सकता।

जीव में चेतना का गुण है। उपयोग है। जीव दो प्रकार के हैं — सिद्ध और संसारी। संसारी आत्माएं सूक्ष्म कर्म पुद्गल से आवृत्त हैं। यही जीव के संसार-भ्रमण का कारण है। आत्मा और कर्म के अनादि सम्बन्ध के बारे में यह सहज प्रश्न होता है कि अभौतिक आत्मा तथा भौतिक कर्म की गुणों में असमानता होने पर भी ये अनादि काल से साथ-साथ कैसे रहते हैं? कोई न कोई तो समान गुण होना चाहिए। लेखक की दृष्टि में 'अगुरुलघु' का गुण दोनों में समान है, जो इन्हें साथ-साथ रहने की क्षमता प्रदान करता है। जैन दृष्टि से इस लोक के सभी मौलिक द्रव्यों में अगुरुलघु गुण होता है। अकेले पुद्गल की विशेषता हैं कि वह स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार का है। स्थूल पुद्गल में गुरुलघु का गुण होता है लेकिन सूक्ष्म पुद्गलों में गुरुलघु का गुण नहीं होता है। कर्म, सूक्ष्म पुद्गल है तथा अगुरुलघु है। अतः यह मानना उचित प्रतीत होता है कि आत्मा और कर्म में अगुरुलघु गुण की समानता है। जिससे ये अनादिकाल से साथ रह रहे हैं।

जैनों की मान्यता है कि जीव का सुख-दुःख, जीव से बंधे कर्मों के कारण है। जैन आत्मवादी दर्शन है और इसका लक्ष्य यही है कि धर्म के आचरण द्वारा जीव कर्म-मुक्त हो सके। आचरण की अपेक्षा कर्म मुक्ति के साधन के रूप में धर्म को दो भागों में विभक्त किया गया है—

- (1) अनगार धर्म (मुनि का चारित्र धर्म)
- (2) अगार धर्म (गृहस्थ का चारित्र धर्म)

(i) अनगार धर्म

जैन श्रमण-श्रमणी जिन्होंने सांसारिक जीवन से विरक्ति ली है, वैराग्य भाव से परिवार-मोह छोड़ा है, वे नियमों की कठोरता से पालना करते हैं। उनके लिए पांच महाव्रतों का विधान है। वे महाव्रत हैं — अहिंसा, सत्य, अचौर्य,

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन सिद्धान्तों का वे पूर्णता से पालन करते हैं लेकिन कभी कहीं अतिचार हो जाता है तो उसका प्रायश्चित्त करते हैं। वे अपने पूज्य अर्हतों और सिद्धों का गुणगान करते हैं, स्तुति करते हैं, पूजा करते हैं, जप करते हैं और मंदिरों में प्रार्थना करते हैं।

जैन धर्म में ईश्वरीय-सत्ता स्वीकार्य नहीं है जो जीव और प्रकृति की स्रष्टा हो तथा नियंता हो। यह माना गया है कि जगत अपने नियमों से चलता है। जैन समाज में तप की अत्यन्त महिमा है। साधु और श्रावक समान रूप से तपस्या करते हैं। तप, मन, वाणी और शरीर के संतुलन में सहयोगी हैं। ध्यान की परम्परा जैन धर्म में पुनः विकसित हो रही है। तप और ध्यान दोनों दृढ़ संकल्प से होते हैं और इसके कारण ही कर्म प्रकम्पित होते हैं और निर्जरा होती है। साधना के विविध पथों से गुजरते हुए श्रमण-श्रमणी, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र्य को उपलब्ध होते हैं। अतः मोक्ष पाने हेतु की गई समस्त अध्यात्म साधना, लोकोत्तर धर्म कही गई है। चीनी यात्री ह्वानचांग जो दो हजार वर्ष पूर्व भारत में आया था उसने जैन मुनियों का वर्णन किया है और चीनी भाषा में उन्हें लीही कहा है। वह लिखता है कि "जैन श्रमण, ब्राह्मणों और अन्य साधुओं से भिन्न जीवन जीते हैं। वे नग्न रहते हैं। वे शरीर के बाल स्वयं उखाड़ते हैं। उनके शरीर की चमड़ी फटी हुई है और उनके पैरों में बिवाइयाँ हैं, जो इस प्रकार फटी हुई हैं जैसे नदी के किनारे के पेड़ों के तने फटे हों।" जैन परम्परा में जिनकल्पी श्रमण-साधुओं की साधना अत्यन्त कठोर बताई गई है जो कष्ट को आमंत्रित कर, कर्म-बंध से मुक्त होने की साधना करते हैं।

(ii) अगार धर्म

जैन धर्म में श्रमण, श्रमणी के अतिरिक्त श्रावक और श्राविकाओं को मिलाकर चार तीर्थ कहे हैं। साधु, पांच महाव्रत का पालन करते हैं। श्रावक, पांच अणुव्रत का पालन करते हैं। महाव्रत और अणुव्रत में यही अंतर है कि अणुव्रत में व्रतों की सीमा होती है। इस सीमाकरण में बारह व्रतों का भी उल्लेख हुआ है। इनका पालन करना आध्यात्मिक गृहस्थ धर्म है। इस आध्यात्मिक धर्म के अन्तर्गत वे संवर और निर्जरा का पालन करते हैं। वे संकल्प पूर्वक त्रस जीवों की हिंसा नहीं करते और जीवन में अप्रामाणिक नहीं रहते हैं। इसे अगार धर्म कहा गया है। गृहस्थ जीवन में श्रावक श्राविकाएं समाजगत, परिवारगत, राष्ट्रगत कर्तव्यों का पालन करते हैं जिसमें आवश्यक हिंसा होती है। श्रावक उस हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता। इन कर्तव्यों को लौकिक धर्म कहा गया है।

पाठकगण को लौकिक और लोकोत्तर धर्म की भेदरेखा को समझना चाहिए क्योंकि कभी कभी भावावेश में या अज्ञानतावश लौकिक कर्तव्यों में आवश्यक हिंसा को अहिंसा बता दिया जाता है। हमें अहिंसा के मर्म और अहिंसा-हिंसा के भेद को समझना चाहिए। हिंसा-अहिंसा की परिभाषा न समयानुकूल है और न परिस्थितिजन्य है। यह विस्मृत नहीं होना चाहिए कि हिंसा सदैव हिंसा है और अहिंसा सदैव अहिंसा है। इस सम्बन्ध में आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि धर्म और कर्तव्य एक कोटि में अवस्थित नहीं है। धर्म का निर्णय आत्मा की शुद्धि के आधार पर होता है और कर्तव्य का निर्णय समाज की उपयोगिता के आधार पर होता है। धर्म की भूमिका में हिंसा और अहिंसा पर विचार किया जाता है। कर्तव्य की भूमिका में हिंसा और अहिंसा का विचार अनिवार्य नहीं है।

अहिंसा और अपरिग्रह को जीवन में प्रभावी रूप से आचरण में लाने के लिए आचार्य तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने कहा कि जीवन में सम्यक् विचार आने से ही सम्यक् आचरण सम्भव है। प्रत्येक अणुव्रती को प्रतिज्ञा लेनी होती है कि वह अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन करता हुआ, अपार वस्तुओं का संग्रह नहीं करेगा न किसी राष्ट्रद्रोह के कार्यों में भाग लेगा। आचार्य तुलसी ने अणुव्रत के अन्तर्गत उन नियमों का विधान किया है जो एक सद्चरित्र नागरिक का निर्माण कर सके। आज यह आन्दोलन, आचार्य महाप्रज्ञ के अनुशासन में अन्य अहिंसात्मक आन्दोलनों के साथ, समवाय कर, मानव-कल्याण की राह को प्रशस्त कर रहा है।

जैन दर्शन

दर्शन जगत में जैन दर्शन का अनेकान्त सिद्धान्त विख्यात है। अनेकान्त का अभिप्राय है कि सत्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से जानना। एक दृष्टिकोण से जानकर, समस्त को जान लेने का आग्रह नहीं करना। एक दृष्टि से जाना हुआ सत्य, सत्याश ही होता है। वस्तु अनेक गुणवाली है अतः उसे समग्रता से जानने के लिए सभी दृष्टियों से जानना आवश्यक है। पाठकगण के लिए अनेकान्त का एक उदाहरण प्रेषित है। स्थानांग सूत्र में जीव को समझने के विभिन्न विकल्प बताए हैं —

1. प्रत्येक शरीर की दृष्टि से जीव एक है।
2. संसारी और मुक्त इस अपेक्षा से जीव दो प्रकार के हैं अथवा ज्ञान चेतना और दर्शन चेतना की दृष्टि से वह द्विगुणात्मक है।

3. कर्म-चेतना, कर्म फल चेतना और ज्ञान चेतना की दृष्टि से वह त्रिगुणात्मक है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इस त्रिपदी से युक्त होने के कारण वह त्रिगुणात्मक है।

इस प्रकार एक से दस तक के विभिन्न विकल्प प्रस्तुत किए हैं। इससे भी अधिक विकल्प हो सकते हैं क्योंकि एक और अनेक सापेक्ष है।

अनेकान्त दर्शन के प्रतिपादन में घटना को बुद्धिगम्य करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सापेक्षता को आवश्यक माना गया है। अनेकान्त के अनुप्रयोग, समाज और राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में सक्षम हैं। अनेकान्त दर्शन उदारता का परिचायक है।

जैन दर्शन की अनेकांतिक मान्यता ने ही, अजैन को भी मोक्ष पाने का अधिकार दिया है। धर्म संप्रदाय, किसी भी आत्मा को मोक्ष पाने के लिए बाधित नहीं करते, केवल अहिंसा और आत्म-धर्म का पालन मोक्ष के लिए आवश्यक है। इस सिद्धान्त ने अन्य धर्मों के प्रति गहरी सहिष्णुता का परिचय दिया है। अनेकान्त सिद्धान्त के समान ही जैनों ने अपरिग्रह का प्रभावी सिद्धान्त दिया है। संग्रह, पाप है। गृहस्थ को भी धन-संग्रह, सम्पत्ति संग्रह की सीमा करनी होती है। अमीर-गरीब का भेद, अपरिग्रह सिद्धान्त ही मिटा सकता है। लेकिन जैन अनुयायियों ने अपने जीवन में इस सिद्धान्त को कम महत्त्व दिया है। यह चिंतनीय है।

जैन विज्ञान

प्रायः सभी धर्मों ने यह सार्थक प्रयत्न किया है कि उनके सिद्धान्तों के पालन से व्यक्ति को सुख और शांति मिले जिसकी सबको आवश्यकता है। जैन धर्म भी उनमें से एक है। जैन धर्म-साहित्य की विशेषता है कि उसने धर्म, दर्शन के अतिरिक्त विज्ञान को भी उतना ही महत्त्व दिया। बाह्य जगत को जानना उतना ही आवश्यक माना जितना कि अन्तर्-जगत को माना। पदार्थ के संबंध में जैन साहित्य में पुद्गल द्रव्य के अन्तर्गत विस्तार से विचार हुआ है। सूक्ष्म पदार्थ का भारहीनता संबंधी वर्णन हमें केवल जैन साहित्य में मिलता है। आज विज्ञान के समक्ष यह चुनौती है कि वह फोटॉन, ग्रेविटॉन तथा ग्लूऑन की भारहीनता को कैसे स्थापित करे? यह आश्चर्य की बात है कि जैन साहित्य में सूक्ष्म पदार्थ के संबंध में जितना विस्तार से वर्णन हुआ है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। अतः हम पाठकगण के लिए जैन विद्या और विज्ञान पर तीन भागों में चर्चा करेंगे।

- प्रकृति का दर्शन
- विज्ञान का दर्शन
- विज्ञान का समाजशास्त्र।

- (i) **प्रकृति का दर्शन** — जैन धर्म ने प्रकृति और पदार्थ के सम्बन्ध में, मनोविज्ञान और जीवन के सम्बन्ध में, जिन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है वे आज की वैज्ञानिक विचारों और सिद्धान्तों से साम्य भी रखते हैं तो कहीं अंतर भी है। जैसे हम पाते हैं कि वर्तमान विज्ञान उन सूक्ष्म कणों को समझने लगा है जो भारहीन हैं (फॉटोन, ग्रेवीटोन, ग्लूऑन आदि)। भारहीन कणों का सन्दर्भ जैन दर्शन में आत्मा से जुड़े कर्मों से साम्य प्रस्तुत करता है। जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार कर्म वर्गणाएं भारहीन हैं। कर्म वर्गणाओं में गुरु और लघु स्पर्श का अभाव है। भारहीनता का महत्त्व जैन दृष्टि से इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि उसके बिना आत्म अस्तित्व को समझना कठिन है। जैन आगमों का गहराई से अध्ययन करने पर हम पाएंगे कि इसमें दर्शन की सुदृढ़ता के लिए विज्ञान और गणित दोनों की चर्चा हुई है। अतः वर्तमान में जैन दर्शन और विज्ञान का परस्पर में सामीप्य प्रकट होता है।

आइंस्टीन ने कहा कि "जहां 'संहति' (mass) है, वहां पदार्थ है, जहां पदार्थ है, वहां 'संहति' (mass) है अर्थात् भार और पदार्थ की एकरूपता मानी गई। जैन साहित्य में भारहीनता का उल्लेख होने पर भी आधुनिक विज्ञान में आइंस्टीन के सिद्धान्त की प्रमुखता के कारण जैनों का भारहीनता का सिद्धान्त प्रचलित नहीं हुआ मगर अब भारहीनता का सिद्धान्त ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक पुष्टि प्राप्त करता जाएगा जैन सिद्धान्त के कर्मवाद के कठिन अध्याय भी सरलता से समझे जा सकेंगे। भारहीनता पर उपलब्ध जैन विद्या के अनेक प्रसंग आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में उपयोगी हैं। कर्म-वर्गणाओं की भांति ही मन की वर्गणा, भाषा की वर्गणा भारहीन होती है। इसी कारण सूक्ष्म पदार्थ क्षण भर में लम्बी दूरी तय कर लेते हैं। जैनों के गति सम्बन्धी नियम विज्ञान के गति नियमों से भिन्न रहे हैं क्योंकि जैनों ने प्रकाश की गति से अधिक गति के कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जैनों ने सूक्ष्म पदार्थ के सन्दर्भ में जितना विचार किया है उतना ही लोक और अलोक के बारे में किया है।

इस सृष्टि को समझने के लिए जैनों ने केवल तारों की गति की ही जानकारी नहीं दी अपितु ब्लैक होल — तमस्काय का वर्णन भी किया। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जैन विद्वान सैद्धान्तिक स्तर पर आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व ही आइंस्टीन के सापेक्षवाद से, प्लांक के क्वांटम यांत्रिकी से तथा बिग-बैंग की धारणा से आगे निकल चुका था। जैन साहित्य में इस सृष्टि के आकार की, आकाश के विभिन्न आयामों की,

आत्मा के पुनर्जन्म की, पुद्गल-पदार्थ की गति ओर स्थिति का विश्लेषणात्मक वर्णन किया है। समस्त अस्तित्व को समझने के लिये छः शाश्वत द्रव्यों को माना और उनके द्वितीयक, तृतीयक गुणों को वैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया।

- (ii) **विज्ञान का दर्शन** — विज्ञान का अपना दर्शन है, चिंतन है। प्रायः प्रयोगों का आधार पूर्व निर्धारित सिद्धान्तों पर होता है। एक समय था जब विज्ञान और दर्शन की धाराएं ध्रुवीय थीं लेकिन अब परस्पर में निकट आने लगी हैं। आज भौतिक विज्ञानी जीवन और जगत के उन रहस्यों को जानने में संलग्न हैं जिन्हें पूर्व में केवल दार्शनिक चिन्तन कहा जाता था। वर्तमान में प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री हाकिंग सृष्टि के बारे में वैज्ञानिक आधार से यह सिद्ध कर रहे हैं कि यह सृष्टि सीमित है तथा काल की दृष्टि से इसकी न आदि है और न इसका अंत है। ईश्वर को इस सृष्टि निर्माण में कुछ भी करने की जगह नहीं है। भौतिक विज्ञानी हाकिंग के इस कथन से ऐसा लगता है कि कोई जैन दार्शनिक अपने दर्शन की व्याख्या कर रहा हो। पूर्वीय धर्मों में केवल एक जैन धर्म (तथा बौद्ध धर्म) ही इस बात के लिए विख्यात है कि वह ईश्वर को इस सृष्टि का कर्ता और नियंता स्वीकार नहीं करता। जैन दृष्टि से यह सृष्टि अनादि और अनंत है। आज के विज्ञान से इन तथ्यों का साम्य होना जैन दर्शन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य जैन विद्या और विज्ञान की साम्यता का यह है कि दोनों की तकनीक और तर्क शक्ति समान सी है। जैन विद्या का महत्त्वपूर्ण सत्य है कि प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान अनेक दृष्टियों से करना चाहिए और इस विचार को उन्होंने अनेकान्त के सिद्धान्त के रूप में प्रचलित किया। अनेकान्त दृष्टि की पुष्टि में जैनों ने स्याद्वाद के सिद्धान्त को प्रसारित किया। स्याद्वाद के अनुसार वस्तु के सभी गुण एक साथ नहीं कहे जा सकते लेकिन एक गुण के कथन के समय अन्य गुणों की संभावना बनी रहती है। विज्ञान ने ऐसी संभावना के संबंध में प्रायिकता का सिद्धान्त प्रसिद्ध किया है। अनेकान्त के प्रसार में जैनों ने स्याद्वाद को प्रस्तुत करते हुए बताया कि विज्ञान का प्रायिकता का सिद्धान्त उससे साम्य रखता है। पदार्थ विज्ञान में जैनों का कार्य-कारण वाद का सिद्धान्त भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है इस दृष्टि से यह सम्भावना प्रबल होती है कि जैन दर्शन और विज्ञान का दर्शन दोनों की साम्यता का गहराई से अध्ययन किया जा सकता है।

(iii) **विज्ञान का समाज शास्त्र** — विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने अपने मस्तिष्क की उपज से एवं प्रयोग से इस जगत को जानने में अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए। उनके फलस्वरूप तकनीक के स्तर पर विज्ञान ने अनेक यंत्रों का निर्माण किया। सिद्धान्त और तकनीक की ये दो धाराएं परस्पर विज्ञान जगत में प्रमुख रही हैं लेकिन अब तीसरी धारा की आवश्यकता है जो मानवीय जीवन की सुरक्षा के लिए पर्यावरण के क्षेत्र से विकसित हो रही है। पर्यावरण की रक्षा के लिए यह आवश्यक हो गया है कि विज्ञान नैतिक और सम्य समाज की शर्तों को स्वीकार करें। इस क्षेत्र में जैनों की नैतिक परम्परा, जीवन के प्रति आदर की उच्चता बहुत उपयोगी हो सकती है। जैन ही एक ऐसा धर्म है जिसने पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, और वनस्पति में मनुष्य की भांति संवेदना को माना है। आत्मवाद का ऐसा सिद्धान्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। जैनों ने यह भी माना है कि सभी आत्माएं समान हैं और परस्पर में जीवन को सहारा देती हैं अतः किसी का जीवन नष्ट करने का अधिकार दूसरों को नहीं है। इस श्रेष्ठ सिद्धान्त ने पर्यावरण की सुरक्षा की है। हिंसा से विमुख जैन दृष्टि में, प्रकृति से प्रेम करने के सिद्धान्त को महत्त्व दिया है। जैनों का यह अहिंसा का सिद्धान्त सार्वभौम है।

युग की आवश्यकता है कि इस कठिन समय में वैज्ञानिक और दार्शनिक परस्पर में संवाद प्रारम्भ करें और यह विवाद भी समाप्त करें कि विज्ञान और धर्म में ध्रुवीय अन्तर है। आशा की जा सकती है कि इस इक्कीसवीं शताब्दी में अध्यात्म-विज्ञान की एकता, मानव समाज के लिए हितकारी सिद्ध होगी।

यह सही है कि भौतिक, यांत्रिक, विद्युत चुम्बकीय इस त्रिआयामी सृष्टि में चौथा आयाम अगर धर्म ग्रहण कर लेता है तो मानव विकास के लिये एक सन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह सम्भावना इसलिये बनी है कि वर्तमान के सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्री भौतिक विज्ञान के माध्यम से चेतना और नैतिकता की समस्याओं के निदान में भी जुड़ गये हैं। इसके साथ यह भी आवश्यकता है कि आधुनिक विज्ञान भी नीति और संस्कृति को, विकास में महत्वपूर्ण स्थान दे, जिससे विज्ञान अपनी सीमाओं में मानव जाति की सेवा कर सके। धर्म, समाज और विज्ञान इन तीनों के समन्वय से एक नयी संस्कृति के उदय होने की आवश्यकता है।

नया चिंतन



नया चिन्तन

महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त	29
महाप्रज्ञ का आत्म-तुला का सिद्धान्त	39
महाप्रज्ञ की सैद्धान्तिक स्थापनाएं	50
1. जैन दर्शन का स्वतंत्र अस्तित्व	50
2. लोक-अलोक की प्ररूपणा	51
3. जीव और पुद्गल का सम्बन्ध भौतिक या अभौतिक	52
4. कर्म-परिवर्तन का सिद्धान्त	54
5. स्वभाव परिवर्तन में पुनर्भरण क्रियाविधि	55
6. संज्ञाएं (ओघ, लोक)	57
7. व्यावहारिक परमाणु	60
8. तेणं कालेण, तेणं समएणं	61
9. विद्युत् : सचित या अचित ?	62
10. अस्वाध्याय	74
11. कल्प-वृक्ष	75
12. आगमों का रचना काल	76

महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त (Mahaprajna's Principle of Opposites)

आचार्य महाप्रज्ञ जैन दर्शन के अनेकान्त सिद्धान्त के सफल व्याख्याता हैं। वे इस सत्य के पक्षधर हैं कि अस्तित्व में पक्ष का प्रतिपक्ष अर्थात् विरोधी युगल का होना आवश्यक है। प्रतिपक्ष के बिना, दो विरोधी युगलों के बिना विश्व चल नहीं सकता। विज्ञान पढ़ने वाला जानता है कि कोरा 'मैटर' इस विश्व में नहीं है, अगर 'मैटर' है तो 'एंटीमैटर' भी है। प्रतिपक्ष के बिना दुनिया का काम नहीं चलता। उनके अनुसार समूची प्रकृति में, समूची व्यवस्था में विरोधी युगलों का अस्तित्व है। विरोधी युगल या द्वंदात्मक जीवन के आधार पर आचार्य महाप्रज्ञ ने सह-प्रतिपक्ष के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने अनेक स्तरों पर अनेक स्थितियों में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है तथा शरीर श्मश्रु और मनोविज्ञान में अनुप्रयोग किए हैं अतः इस अस्तित्वगत सत्य को "महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त" कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार किसी भी सिद्धान्त को हम यदि सत्य के साथ जोड़ते हैं, तो कोई द्वन्द नहीं होता। उसी सिद्धान्त को यदि हम विस्तार के साथ जोड़ते हैं तो समस्या पैदा होती है। लेकिन विस्तार के बिना सिद्धान्त का प्रभावी स्वरूप प्रकट नहीं होता। अतः हम सह-प्रतिपक्ष के सिद्धान्त का विस्तार से यहां अध्ययन करेंगे।

सह-प्रतिपक्ष सिद्धान्त की अवधारणाएँ —

- प्रतिपक्ष का अर्थ है भिन्न दिशा में होना।
- प्रतिपक्ष का होना, वस्तु जगत की प्रकृति है। यह शारीरिक संरचना और सृष्टि संरचना की प्रकृति है।
- पक्ष-प्रतिपक्ष परस्पर में विरोधी होते हुए भी सर्वथा विरोधी नहीं है।
- प्रकृति में अत्यन्त प्रतिपक्ष (विरोध) में भी पक्ष (साम्यता) और अत्यन्त पक्ष (साम्यता) में भी प्रतिपक्ष (विरोध) प्रकट होता है। यह सहअस्तित्व का आधार है।

आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों का कुछ संकलन पाठकों के लिए प्रस्तुत है जो सह-प्रतिपक्ष सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

जगत दो भागों में विभक्त हैं —

- (i) पदार्थ का जगत और आत्मा का जगत
- (ii) स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत
- (iii) मूर्त जगत और अमूर्त जगत

इन सबके बीच संतुलन बनाना होगा। स्थूल और सूक्ष्म, पदार्थ और आत्मा, मूर्त और अमूर्त के संतुलन से ही समस्याएं समाहित होंगी। हमें पदार्थ से कुछ लेना-देना नहीं है — यह सोचना सही नहीं है। पदार्थ के बिना व्यक्ति का काम नहीं चलता, जीवन की यात्रा नहीं चलती। इसी तरह यदि हम केवल पदार्थ में उलझे रहे तो समस्याएं उलझती ही चली जाएंगी। समस्या को सुलझाने के लिए प्रतिपक्ष को खड़ा करना आवश्यक है। प्रतिपक्ष बिना, दो विरोधी युगलों के बिना विश्व चल नहीं सकता।

लोकतन्त्र में पक्ष-प्रतिपक्ष

लोकतन्त्र की कल्पना करने वालों ने बहुत बड़ी सचाई को खोजा। लोकतन्त्र में पक्ष के साथ प्रतिपक्ष का होना जरूरी है अगर विरोधी दल नहीं है तो लोकतन्त्र ठीक नहीं चल सकता। अनेकान्त का सिद्धान्त है— विरोधी युगल का होना अनिवार्य है उसके बिना सम्यक् व्यवस्था संपादित नहीं हो सकती। धर्मास्तिकाय नहीं है तो अधर्मास्तिकाय नहीं हो सकती। जैन तत्त्व ज्ञान के अनुसार धर्मास्तिकाय जो गति सहायक तत्त्व हैं को अपने अस्तित्व के लिए अधर्मास्तिकाय जो स्थिति सहायक तत्त्व हैं को स्वीकार करना जरूरी है। अनेकान्त का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है। जो व्यवहार में लोकतन्त्र में आया पर क्रियान्वित नहीं हो सका। पूरकता के स्थान पर झूठा विरोध करना, एक विडम्बना है। अनेकान्त की सार्थक अभिव्यक्ति है — पदार्थ और आत्मा की स्वीकृति। आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा में असमाज है तो समाज का होना जरूरी है। भोग है तो त्याग का होना जरूरी है। पदार्थ है तो अपदार्थ का होना जरूरी है।

पुरुषार्थ और नियति

जीवन और जगत के विकास में पुरुषार्थ और नियति दोनों का योग रहता है। दोनों की अपनी सीमाएं हैं। नियति को छोड़कर केवल पुरुषार्थ के आधार पर जीवन की समग्रता से व्याख्या नहीं की जा सकती तथा वह नियति अकिंचित्कर बन जाती है जिसके साथ पुरुषार्थ जुड़ा हुआ नहीं होता। हम नियति के पुरुषार्थ को जाने और पुरुषार्थ की नियति को जाने।

व्यक्तिगत चेतना और सामुदायिक चेतना

व्यक्तिगत चेतना और सामुदायिक चेतना, दोनों का मूल्य हैं। व्यक्तिगत चेतना स्वाभाविक हैं, व्यक्ति में अपनी प्रेरणा है, अपना स्वार्थ है। सामुदायिक चेतना का अभिप्राय है कि व्यक्तिगत चेतना उसमें विलीन हो जाय। परिवार में, समाज में, सामुदायिक चेतना का महत्त्व है। वे लिखते हैं कि व्यक्ति को समुदाय से भिन्न करने में कठिनाई का अनुभव कर रहा हूँ। इसलिए कि जल राशि से विलग पड़ा कण अपना अस्तित्व नहीं रख पाता। समुदाय को व्यक्ति से भिन्न कहने में भी सरलता का अनुभव नहीं हो रहा है इसलिए कि जलकणों से भिन्न जलराशि की अपनी कोई अस्मिता नहीं है। व्यक्ति और समुदाय दोनों को एक कहने में भी समस्या का समाधान नहीं देख रहा हूँ। इसलिए कि जलकण पर जलपोत नहीं तैरते और जलराशि को कभी सिर पर नहीं उठाया जा सकता। सरल मार्ग यह है कि जल-कण और जलराशि में रहे अमेद और भेद दोनों को एक साथ देखूँ। तात्पर्य की भाषा में विरोधी, प्रतीत होने वाले धर्मों का एक साथ होना समन्वय है। वस्तु जगत में पूर्ण सामंजस्य और सह-अस्तित्व है। विरोध की कल्पना हमारी बुद्धि ने की है। उत्पाद और विनाश, जन्म और मृत्यु, शाश्वत और अशाश्वत—ये सब साथ-साथ चलते हैं।

मैटर एण्टी-मैटर

विज्ञान की सीमा वस्तु (ऑब्जेक्ट) है। दर्शन चेतना (सब्जेक्ट) प्रधान है। विज्ञान को चेतना में घटित घटना मान्य नहीं है और दर्शन का पदार्थ में घटित होने वाली घटनाओं से संबंध नहीं है। इसीलिए इन दोनों की पारस्परिक पूरकता का विकास होना चाहिए। इससे वैश्विक समस्याओं के समाधान में बहुत बड़ा योग मिल सकता है। आज का विज्ञान कहता है यूनिवर्स हैं तो एण्टी-यूनिवर्स भी है। कण है तो प्रतिकण भी है। अणु है तो प्रति-अणु भी है। पदार्थ है तो प्रति-पदार्थ भी है। जगत है तो प्रति-जगत भी हैं। मैटर है तो एण्टी-मैटर भी है। यदि एण्टी-मैटर न हो तो मैटर का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। यदि प्रति-अणु न हो तो अणु का और प्रतिजगत न हो तो जगत का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता।

ऋषभायण में विरोधाभासी अलंकारों का प्रयोग

ऋषभायण महाप्रज्ञजी द्वारा प्रणीत एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। महाप्रज्ञजी ने 'सह-प्रतिपक्ष के सिद्धान्त' का इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। साध्वी श्रुतयशा ने इसे ऋषभायण में विरोधाभास अलंकार के रूप

में प्रस्तुत किया है। वे लिखती हैं कि अनेक स्थलों पर विरोध दिखाई देता है, पर अनेकान्त दृष्टि से वह विरोध नहीं है, यथा —

दो का नाम अभय है भाई/भय का अर्थ अकेला है।

द्वन्द सत्य द्वंदात्मक जग में/ गुरु के आगे चेला है।

दो सापेक्षता का प्रतीक है, एक निरपेक्षता का। जहाँ सापेक्षता है वहाँ सत्य है और जहाँ सत्य है वहाँ अभय। एकांत निरपेक्ष होता है और उसे अपने प्रतिपक्षी एकांत से सदा भय बना रहता है। सुंदोपसुंद न्याय से एकांत की पराजय हो जाती है। गुरु के आगे चेला कहने का तात्पर्य है, निश्चय नय के गुरु स्थानीय होने पर भी जगत का व्यवहार, व्यवहार नय के बिना नहीं चल सकता।

साध्वी श्रुतयशा ने अन्य उद्धरण प्रस्तुत किए हैं —

1. 'जलधि शांत है वही तरंगित',
2. जैसे-जैसे निकट-निकट प्रभु/वैसे-वैसे लगते दूर',
3. 'मरुदेवा मर अमर हो गई',
4. दृश्य हो गया है सहसा दिनकर/तीव्र रश्मि से बना 'अदृश्य' आदि।

अनेक विरोधाभासी अलंकारों का सुंदर निदर्शन ऋषभायण में मिलता है। अनेकान्त दृष्टि से यह अलंकार शब्द और अर्थ की अनेक अर्थ-छवियों का अद्भुत सृजन करने में सक्षम हैं। साध्वीश्री के उपर्युक्त लेखन के अतिरिक्त आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि अनेकान्त ने सूक्ष्म और स्थूल दोनों नियमों की व्याख्या की और दो कोण हमारे सामने प्रस्तुत किए। एक कोण — निश्चय नय और दूसरा कोण है — व्यवहार नय। यदि सूक्ष्म सत्यों को जानना हो तो निश्चय नय का सहारा लें और स्थूल नियमों को जानना हो तो व्यवहार नय का सहारा लें। जब ये दोनों सापेक्ष होते हैं, समन्वित होते हैं, तब हम सचाई तक पहुँच जाते हैं कि भेद और अभेद भिन्न भिन्न नहीं किन्तु, समन्वित रहते हैं।

हम जानते हैं कि जैन दर्शन में पदार्थ को पुद्गल कहा है। पुद्गल वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाला है। आठ स्पर्श, जो परस्पर में संयोग-वियोग के कारण हैं वे चार विरोधी-युगल रूप हैं। स्निग्ध-रुक्ष, हल्का-भारी, शीत-ऊष्ण, मृदु-कर्कश। समूची पौद्गालिक सृष्टि का निर्माण इन विरोधी-युगल स्पर्शों से होता है। जितने भी स्थूल पुद्गल पदार्थ है उसमें ये आठों स्पर्श होते हैं, जो स्कन्ध को स्थायित्व प्रदान करते हैं। यह कितना रहस्यमय है कि वस्तु के निर्माण में विरोधी-युगल स्पर्शों का होना आवश्यक है।

शरीर शास्त्र के उदाहरण

आचार्य महाप्रज्ञ ने अस्तित्वगत इस सत्य को इस विविधता से प्रतिपादित किया है कि अब इसका स्वरूप एक सिद्धान्त के रूप में प्रकट होता है। अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि "महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त" ने दर्शन जगत को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विज्ञान जगत में परम्परा है कि जो नई खोज करते हैं उन्हीं के नाम से वह सिद्धान्त प्रचलित हो जाता है। उनकी यह विलक्षणता है कि उन्होंने इस सिद्धान्त के अनुरूप, शरीर शास्त्र के उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं।

- (i) शरीर शास्त्र के अनुसार वे लिखते हैं - शरीर में दो केन्द्र हैं। एक - ज्ञान केन्द्र और दूसरा - काम केन्द्र। दोनों विरोधी हैं। काम केन्द्र चेतना को नीचे ले जाता है। ज्ञान केन्द्र चेतना को ऊपर ले जाता है। एक है अधोगमन और दूसरा है ऊर्ध्वगमन। चेतना का नीचे का अवतरण और चेतना का ऊर्ध्व अवतरण दोनों विरोधी हैं। यही जीवन को टिकाए हुए है। विज्ञान की भाषा में ज्ञान-केन्द्र और काम-केन्द्र के वाचक दो ग्लैण्ड्स हैं। एक है पीनियल, पिट्यूटरी ग्लैण्ड और दूसरा है गोनाड्स। पीनियल और पिट्यूटरी - ये दोनों ज्ञान के विकास की ग्रन्थियां हैं। गोनाड्स - यह काम विकास की ग्रन्थि है। हमारी चेतना का विकास पीनियल और पिट्यूटरी के विकास पर निर्भर है। पिट्यूटरी और पीनियल का स्राव जब गोनाड्स को मिलता है तब काम की उत्तेजना बढ़ती है। जब वह स्राव बदलता है हाईपोथेलेमस की क्रिया बदलती है तब ज्ञान का विकास होने लग जाता है। दोनों विरोधी ग्लैण्ड्स की प्रक्रियाएं हमारे शरीर की संरचना में समाई हुई हैं। दोनों ग्रन्थियां अपना-अपना काम करती हैं यद्यपि दोनों विरोधी हैं।
- (ii) हमारे शरीर में खरबों कोशिकाएँ हैं। प्रति सैकण्ड पांच करोड़ कोशिकाएं नष्ट होती हैं और पांच करोड़ कोशिकाएं उत्पन्न होती हैं। यह अस्तित्व बना रहता है। जन्मना और मरना, पैदा होना और नष्ट होना। कोशिकाएं नष्ट हों तो शरीर मुर्दा बन जाता है। कोशिकाएं पैदा न हों तो शरीर टूट जाता है। दोनों चालू रहते हैं, तब शरीर टिकता है।
- (iii) मनोविज्ञान की दृष्टि से उल्लेख किया है कि जीन में दो प्रकार की विशेषताएं होती हैं। माता-पिता के गुण संतान में संक्रान्त होते हैं, विरोधी गुण भी संक्रान्त होते हैं। उसमें एक प्रभावी होता है और

दूसरा अप्रभावी। जो प्रभावी होता है वह व्यक्त हो जाता है और जो अप्रभावी होता है, वह पर्दे के पीछे रह जाता है। कर्मवाद की भी यही प्रकृति है। हमारे साथ जितने कर्मों का संबंध है, उन सभी कर्मों की विरोधी प्रकृतियां बनी रहती हैं। जैसे सुखवेदनीय कर्म है तो दुःखवेदनीय कर्म भी है। इसी प्रकार शुभ नामकर्म-अशुभ नामकर्म, उच्च गोत्र कर्म-नीच गोत्र कर्म, शुभ आयुष्य-अशुभ आयुष्य के युगल कर्म रूप में विद्यमान हैं। दोनों विरोधी प्रकृतियां हैं लेकिन एक प्रकृति व्यक्त होती है तब दूसरी अव्यक्त हो जाती है।

हम पाते हैं कि आचार्य महाप्रज्ञ ने 'सह-प्रतिपक्ष के सिद्धान्त' के प्रतिपादन में एक महत्त्वपूर्ण सीमा बांधी है जिसे हम लिमिटेशन (limitation) कहते हैं। वह यह है कि "पक्ष-प्रतिपक्ष अथवा विरोधी युगल परस्पर में विरोधी होते हुए भी सर्वथा विरोधी नहीं है।" इसी कारण उनमें समन्वय है। इस जगत में सर्वथा सदृश या सर्वथा विसदृश कुछ भी नहीं है। सर्वथा अस्तित्व या सर्वथा नास्तित्व कुछ भी नहीं है। सादृश्य और विसादृश्य समन्वित हैं। अस्तित्व और नास्तित्व समन्वित है। अत्यन्त विरोध में भी साम्यता और अत्यन्त साम्यता में भी विरोध प्रकट होता है। महाप्रज्ञजी की इस सिद्धान्त के प्रति प्रतिबद्धता है, उसे पाठकों के लिए आगे के बिंदुओं में प्रेषित किया गया है।

विरोधी युगल

इस दुनिया में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसका प्रतिपक्ष शब्द न हो। जिसका अस्तित्व होता है, उसका प्रतिपक्ष भी होता है। प्रत्येक वस्तु का प्रतिपक्ष है। जिसका प्रतिपक्ष न हो वह सत् नहीं होता, उसका अस्तित्व ही नहीं होता। जिस शब्द का प्रतिपक्ष नहीं है उसका तो अर्थ ही नहीं हो सकता। कल्पना करें कि यदि दुनिया में अंधकार मिट जायेगा तो प्रकाश का अर्थ भी समाप्त हो जाएगा। प्रकाश का अर्थ हम तभी समझ सकते हैं जबकि अंधकार का अस्तित्व है। यह संसार विरोधी युगलों का संसार है। सारे जोड़े युगल हैं और वे भी विरोधी युगल। सब कुछ द्वन्द्व है। द्वन्द्व के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ है — युगल और दूसरा अर्थ है — लड़ाई, संघर्ष, युद्ध। जो युगल होगा वह विरोधी ही होगा। समान जाति का युगल नहीं होता। स्त्री-पुरुष, नर-मादा, नित्य-अनित्य, शाश्वत-अशाश्वत, अंधकार-प्रकाश, सर्दी-गर्मी, आदि आदि युगल हैं। हम इस सत्य को मानकर चलें कि इस दुनिया में विरोध रहेगा, भिन्नता रहेगी, प्रतिपक्ष रहेगा। इसे कोई मिटा नहीं सकता। इसमें हमें नए मार्ग की खोज करनी होगी। वह मार्ग होगा सह-अस्तित्व का, समन्वय का। जब आदमी समन्वय की चेतना से समाधान खोजता है तो

प्रत्येक समस्या का समाधान हो सकता है। विरोध प्रकृति में है। विरोध का अर्थ है — भिन्न दिशा में होना। प्रतिपक्ष होना, यह हमारे वस्तु जगत की प्रकृति है। यह शारीरिक संरचना और सृष्टि संरचना की प्रकृति है।

महाप्रज्ञ-दर्शन में डॉ. दयानन्द भार्गव ने प्रतिपक्ष के सिद्धान्त को द्वन्दों की दुनिया के शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि — पदार्थ का नाम और रूप उस पदार्थ को दूसरे पदार्थ से भिन्न बनाता है। भेद का आधार है— विषमता। यह विषमता ही द्वैत का आधार है। अंधकार है, इसीलिए प्रकाश का नाम प्रकाश है। प्रकाश और अंधकार को साथ-साथ रहना होता है। यह द्वन्द सब स्तरों पर काम कर रहा है। व्यक्ति के स्तर पर प्राण और अप्राण के बीच द्वन्द है। आचार के क्षेत्र में पाप और पुण्य का द्वन्द है। दर्शन के क्षेत्र में ज्ञान और कर्म का विरोध प्रसिद्ध है। इसी प्रकार प्रवृत्ति-निवृत्ति, बिम्ब-प्रतिबिम्ब, दुःख-सुख, यथाअवगत-तथागत, भेद-अभेद, व्यक्त-अव्यक्त, निश्चय-व्यवहार, पूर्णता-अपूर्णता, जन्म-मृत्यु, परिस्थिति-मनःस्थिति आदि द्वन्द के कारण हैं। हम प्रकृति के नियम के विरुद्ध नहीं जा सकते। विश्व की व्यवस्था ही ऐसी है कि उसके मूल में विरोधी युगल एक साथ रहते हैं।

महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त, जैन आगम साहित्य से प्रसूत हुआ है। हम पाते हैं कि स्थानांग (ठाण) सूत्र के प्रथम तथा द्वितीय अध्ययन में प्रतिपक्षी युगलों का विस्तार से वर्णन हुआ है जो निम्न प्रकार है —

(1) स्थानांग आगम का प्रथम अध्ययन का प्रथम पद अस्तित्ववाद से संबंधित है। इसके 5 से 14 तक के सूत्र अवलोकनीय हैं।

5	लोक एक है।	6	अलोक एक है।
7	धर्म (धर्मास्तिकाय) एक है।	8	अधर्म (अधर्मास्तिकाय) एक है।
9	बन्ध एक है।	10	मोक्ष एक है।
11	पुण्य एक है।	12	पाप एक है।
13	आश्रव एक है।	14	संवर एक है।

इसके संबंध में टिप्पणी करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि संख्यांकित छः सूत्र (9-14) में नव तत्त्वों में से परस्पर प्रतिपक्षी छह तत्त्वों का निर्देश किया गया है।

बन्धन के द्वारा आत्मा के चैतन्य आदि गुण प्रतिबद्ध होते हैं। मोक्ष आत्मा की उस अवस्था का नाम है जिसमें आत्मा के चैतन्य आदि गुण पूर्ण हो जाते

हैं इसलिए बंधन और मोक्ष में परस्पर प्रतिपक्ष भाव है। पुण्य के द्वारा जीव को सुख की अनुभूति होती है और पाप के द्वारा उसे दुख की अनुभूति होती है। इसलिए पुण्य और पाप में परस्पर प्रतिपक्ष भाव है। आश्रव पुद्गलों को आकर्षित करता है और संवर उसका निरोध करता है, इसलिए आश्रव और संवर में परस्पर प्रतिपक्ष भाव है। दूसरे स्थानांग (सू. 9) में इनका प्रतिपक्ष युगल के रूप में उल्लेख मिलता है।

इसी प्रकार लोक और अलोक प्रतिपक्षी युगल हैं। आकाश लोक और अलोक, इन दो भागों में विभक्त है। जिस आकाश में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये पाँचों द्रव्य मिलते हैं, उसे लोक कहा जाता है और जहाँ केवल आकाश ही होता है वह अलोक कहलाता है। इसी प्रकार धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय भी प्रतिपक्षी युगल हैं। धर्मास्तिकाय का लक्षण गति और अधर्मास्तिकाय का लक्षण स्थिति (अगति) है।

यह जगत प्रतिपक्षी युगलों से भरा है या यों कहना चाहिए कि प्रतिपक्षी युगलों के अस्तित्व के कारण ही जगत का स्थायित्व है।

(2) स्थानांग (ठाण) सूत्र के दूसरे स्थान का प्रथम पद, द्विपदावतार के नाम से है। हम पाते हैं कि इसमें भी प्रतिपक्षी युगलों का विस्तार से वर्णन निम्न प्रकार से हुआ है।

लोक में जो कुछ भी है द्विपदावतार (दो-दो पदों में अवतरित) होता है:—

1.	जीव और अजीव	2	त्रस और स्थावर
3	सयोनि और अयोनि	4	आयु सहित और आयु रहित
5	इन्द्रिय सहित और इन्द्रिय रहित	6	वेद सहित और वेद रहित
7	रूप सहित और रूप रहित	8	पुद्गल सहित और पुद्गल रहित
9	संसार समापन्न (संसारी), असंसार समापन्नक (सिद्ध)	10	शाश्वत और अशाश्वत
11	आकाश और नोआकाश	12	धर्म और अधर्म
13	बन्ध और मोक्ष	14	पुण्य और पाप
15	आश्रव और संवर	16	वेदना और निर्जरा

(3) नन्दी सूत्र में श्रुत के चौदह विकल्प बताए हैं।

1	अक्षर-श्रुत	2	अनक्षर-श्रुत
3	संज्ञी-श्रुत	4	असंज्ञी-श्रुत
5	सम्यक्-श्रुत	6	मिथ्या-श्रुत
7	आदि-श्रुत	8	अनादि-श्रुत
9	सपर्यवसित-श्रुत	10	अपर्यवसित-श्रुत
11	गमिक-श्रुत	12	अगमिक-श्रुत
13	अंगं प्रविष्ट-श्रुत	14	अनंगं प्रविष्ट-श्रुत

आचार्य महाप्रज्ञ उपर्युक्त आगमों के वर्णन को इस दृष्टि से देखते हैं कि जैन दर्शन ने विरोधी युगलों का सह-अस्तित्व स्वीकार किया इसलिए वह सर्वग्राही दर्शन हो गया। वह किसी भी विचारधारा को असत्य की दृष्टि से नहीं देखता किन्तु सापेक्ष-सत्य की दृष्टि से देखता है। **जितने विचार हैं वे सब पर्याय हैं और पर्याय निरपेक्ष-सत्य नहीं हो सकता। निरपेक्ष-सत्य तो मूल द्रव्य हो सकता है।** जैन दर्शन में जड़वादी विचार अमान्य नहीं हैं किन्तु साथ-साथ आत्मवादी विचार भी उतना ही मान्य है जितना कि जड़वादी विचार। दोनों विचारों का योग होने पर ही जैन दर्शन यथार्थ बनता है। जैन दर्शन को युगानुकूल भाषा में प्रेषित करने का श्रेय महाप्रज्ञजी को है।

(4) दशवैकालिक सूत्र में चार आवेगों (क्रोध, मान, माया, लोभ) की प्रतिपक्ष भावना का सुन्दर निरूपण हुआ है। यदि क्रोध के आवेग को मिटाना है, कम करना है तो उपशम के संस्कार को पुष्ट करना होगा। क्रोध का प्रतिपक्ष है - उपशम का संस्कार जितना पुष्ट होगा, क्रोध का आवेग उतना ही क्षीण होता चला जाएगा। मान के आवेग को नष्ट करना है तो मृदुता को पुष्ट करो। मृदुता और मैत्री में कोई अंतर नहीं है। मैत्री, मृदुता का ही प्रतिफलन है। जब मृदुता है तो किसी के साथ शत्रुता हो ही नहीं सकती। लोभ के आवेग को नष्ट करना है तो सन्तोष को विकसित करें, उसे पुष्ट करें।

आवेगों को मिटाने के लिए प्रतिपक्ष के संस्कारों को पुष्ट करना है। जब तक प्रतिपक्ष का संस्कार पुष्ट नहीं होगा आवेगों का अनुभव नहीं किया जा सकता। साधना में प्रतिपक्ष भावना का बहुत बड़ा महत्त्व है।

भौतिक विज्ञान

भौतिक विज्ञान ने इस सृष्टि का प्रारम्भ 'बिग-बैंग' से माना है। उसी समय पदार्थ-रचना के मूल कण क्वार्क भी उत्पन्न हुए हैं। वास्तविकता यह है कि क्वार्क के कण सभी समान न होकर, विरोधी गुणों वाले उत्पन्न हुए और उसी से पदार्थ रचना हुई। क्वार्क से पूर्व, विज्ञान जगत में यह माना जा रहा था कि परमाणु की संरचना, दो विरोधी विद्युतीय कणों से हुई है। वे हैं - इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन। इलेक्ट्रॉन ऋण विद्युतीय कण हैं और प्रोटॉन धन विद्युतीय कण हैं। परस्पर में विरोधी गुणों का होना, इस प्रकृति की देन है। विज्ञान जगत में हलचल मची थी जब प्रकाश के व्यवहार में ज्ञात हुआ कि वह कण रूप व्यवहार करता है और लहर रूप भी व्यवहार करता है। इस द्वैध के कारण भौतिक विज्ञान की प्रगति रुक सी गई थी तब यह स्वीकार किया गया कि जहाँ कण हैं वहाँ लहर है और जहाँ लहर है वहाँ कण है। इसी समन्वय को लेकर विज्ञान की प्रगति हुई है। भौतिक विज्ञान के अनुसार किसी भी परमाणु के दो इलेक्ट्रॉन पूर्ण रूप से समान नहीं होते। असमानता के होते हुए भी, सह-अस्तित्व की प्रकृति पदार्थ के मूल में है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'महाप्रज्ञ का सह-प्रतिपक्ष का सिद्धान्त' सार्वभौमिक है।

"To deny the co-existence of mutually conflicting view points about a thing would mean to deny the true nature of reality."



महाप्रज्ञ का आत्म-तुला का सिद्धान्त (Mahaprajna's Principle of Equivalence of Souls)

भगवान महावीर ने सत्य का प्रतिपादन करते हुए कहा कि सब जीवों को अपने समान समझो क्योंकि सबमें आत्म-तत्त्व की समानता है। चैतन्य जीव का सामान्य लक्षण है। उस दृष्टि से सब जीव समान होते हैं। जीवत्व की दृष्टि में हाथी और कुंथु की समानता का प्रतिपादन जैन दर्शन में हुआ है। यद्यपि दोनों के शरीरों में भेद है लेकिन यह भेद चैतन्य की सत्ता में भेद नहीं डालता। दोनों में असंख्य आत्म-प्रदेशों का चैतन्य विद्यमान है। यह सैद्धान्तिक स्थिति है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आचारांग भाष्य में आत्म-तत्त्व का दार्शनिक विवेचन करते हुए लिखा है कि जैन दर्शन के अनुसार आत्माएं अनन्त हैं और उन सबका अस्तित्व स्वतंत्र है। उनका पृथक-पृथक कर्तृत्व है। वे किसी एक ईश्वर की अंशमूत नहीं हैं और किसी ब्रह्म की प्रपंचमूत भी नहीं हैं। जैन दर्शन में आत्म-तत्त्व की स्वतंत्रता और समानता को विशेष महत्त्व दिया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्म-तत्त्व की स्वतंत्रता के पक्ष में उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, वे निम्न हैं —

- (1) जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है।
- (2) जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।
- (3) जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही है।
- (4) जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही है।
- (5) जिसे तू मारने योग्य मानता है, वह तू ही है।
- (6) सुख और दुःख व्यक्ति का अपना अपना होता है।
- (7) जो एक को जानता है, वह सबको जानता है
जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।
- (8) अकेला उत्पन्न होता है, अकेला ही मरता है, और अकेला ही जन्मान्तर में जाता है।

आत्मा की स्वतंत्रता

ये घोष आत्मा की स्वतंत्रता की उद्घोषणा करते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्माओं की परस्पर में समानता और स्वतंत्रता को आत्म-तुला का स्वरूप

कहा है। इस सार्वभौम सत्य की नई व्याख्या करते हुए कहा है कि भगवान महावीर द्वारा सभी को समान समझने का अर्थ सभी के साथ मैत्री-भाव रखना है। **मैत्री-भाव का सिद्धान्त ही आत्म-तुला का सिद्धान्त है।** वे कहते हैं कि जो सब जीवों को अपने समान नहीं समझता वहां मैत्री केवल व्यावहारिक ही हो सकती है। मैत्री का विराट एवं वास्तविक सिद्धान्त, आत्म-तुला का सिद्धान्त है। इसमें सब जीवों के साथ मैत्री होती है, कोई भी प्राणी शेष नहीं बचता। अगर एक भी जीव के साथ अमैत्री का भाव है तो वह आध्यात्मिक मैत्री नहीं हो सकती। आध्यात्मिक मैत्री ही विश्व मैत्री हो सकती है जो आत्म-तुला की भावना का प्रतिफल है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्म-तुला के अर्थ को अधिक स्पष्ट करने हेतु, अध्यात्म और व्यवहार के भेद को समझाया है।

अध्यात्म और व्यवहार

आचार्य महाप्रज्ञ का स्पष्ट मतव्य है कि अध्यात्म के स्तर पर जीने वाले व्यक्ति का व्यवहार और व्यवहार के स्तर पर जीने वाले व्यक्ति का व्यवहार भिन्न होता है। व्यवहार से मुक्त कोई भी नहीं हो सकता। जो शरीरधारी है वह व्यवहार करता है। व्यवहार के बिना वह जी नहीं सकता, उनका जीवन चल नहीं सकता। किंतु दोनों का व्यवहार बहुत भिन्न होता है। आचारांग सूत्र का कथन है कि आध्यात्मिक व्यक्ति को अन्यथा व्यवहार करना चाहिए। व्यवहार की भूमिका पर जीने वाला जैसे व्यवहार करता है वैसे व्यवहार अध्यात्म की भूमिका पर जीने वाले को नहीं करना चाहिए, किंतु उसे भिन्न प्रकार से व्यवहार करना चाहिए, अन्यथा व्यवहार करना चाहिए।

हम 'अन्यथा' शब्द को समझें। इसके तात्पर्य को समझें। व्यावहारिक व्यक्ति का व्यवहार क्रियात्मक नहीं होता, प्रतिक्रियात्मक होता है। वह सोचता है — उसने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया तो मैं भी उसके प्रति ऐसा ही व्यवहार करूँ। यह क्रियात्मक व्यवहार नहीं, प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है। ऐसे व्यक्ति में कर्तव्य की स्वतंत्र प्रेरणा नहीं होती और कर्तव्य का स्वतंत्र मूल्य भी नहीं होता। उसका कर्तव्य स्व-संकल्प से प्रेरित नहीं होता, वह होता है दूसरों से प्रेरित।

वर्तमान के आचार शास्त्रियों और दार्शनिकों ने आचार मीमांसा में इस प्रश्न पर बहुत चर्चा की है कि हमारे कर्तव्य की प्रेरणा और हमारे कर्तव्य का स्वरूप क्या होना चाहिए? प्रसिद्ध दार्शनिक कांट ने कहा — 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य होना चाहिए, न दया के लिए, न अनुकंपा के लिए और न दूसरों का भला करने के लिए।' ये सब नैतिक कर्म के हामी

नहीं हैं और उससे संबद्ध भी नहीं हैं। केवल मनुष्य का स्वतंत्र संकल्प उसका स्वलक्ष्य मूल्य है। इसलिए कर्तव्य के लिए ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

कर्तव्य के लिए कर्तव्य की बात बहुत ही मूल्यवान है। यह क्रियात्मक बात है, प्रतिक्रियात्मक नहीं। कोई व्यक्ति दया का पात्र है, उस पर कोई दया करता है तो यह कोई स्वतंत्र क्रिया नहीं है। प्रतिक्रिया है। यह मेरा धर्म है कि मैं प्राणीमात्र को अपनी आत्मा समझता हूँ और उसके साथ मैत्री का व्यवहार करता हूँ। यह स्वतंत्र कर्तव्य है, स्वतंत्र मूल्य है, क्रियात्मक कार्य है। यही आत्म-तुला का सिद्धान्त है।

मैं इसलिए प्रसन्न होऊँ कि दूसरे ने मेरी प्रशंसा कर दी और इसलिए नाराज होऊँ कि दूसरों ने मुझे गालियाँ दे दीं — यह सारा प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है। व्यवहार के स्तर पर जीने वाला प्रत्येक व्यक्ति सदा प्रतिक्रियात्मक व्यवहार करता है। क्रियात्मक व्यवहार करने का उसके साथ कोई दर्शन जुड़ा हुआ नहीं है।

अन्यथा व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि इसका पहला सूत्र है — क्रियात्मक व्यवहार। जो व्यक्ति आध्यात्मिक है वह सदा क्रियात्मक व्यवहार करेगा, क्योंकि वह उसका धर्म है। उसने मेरा उपकार किया है तो मुझे उसको सहयोग देना चाहिए — यह उसका चिंतन नहीं होगा। वह सोचता है — कोई मेरा उपकार करे या न करे, मुझे सहयोग दे या न दे, मैं सदा दूसरों का उपकार करूँगा, सहयोग दूँगा। यह क्रियात्मक व्यवहार ही विश्व मैत्री का आधार है। इस संबंध में उपनिषद् की कथा विख्यात है।

उपनिषद् की कथा

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संबंध में एक विख्यात कथा को प्रेषित किया है। जाजली नाम के एक ऋषि घोर तप कर रहे थे। उनकी जटाएं बढ़ गई थीं। वे निश्चल खड़े थे। पक्षियों ने उनकी जटा में घोंसले बना लिए। उन्होंने अंडे दिए। अंडों से बच्चे निकले और वयस्क होकर उड़ गए। तब तक ऋषि ज्यों के त्यों खड़े रहे। तप के साथ-साथ अहं भी बढ़ता गया। मैंने कितना विकट तप तपा है ? यह भाव अहं को वृद्धिगत करता है। प्रभुता पास में हो और अहंकार न हो, यह कब होता है ? ऐसा कौन व्यक्ति है जिसके पास प्रभुता है और अहं नहीं है ? ज्ञान का, सत्ता का, संपत्ति का, शक्ति का और प्रभुता का अहंकार होता है। तप का भी अहंकार होता है। तपस्वी का अहं पुष्ट होता जा रहा था। एक दिन देववाणी हुई — “जाजली! अभी तक तुम सधे नहीं हो। तुम तुलाधर वैश्य के पास जाकर सीखो।” यह सुनते ही ऋषि का

मन बौखला गया। अहं पर गहरी चोट लगी। देववाणी के प्रति वह नत था। वह बिना कुछ ननुनच किए तुलाधर वैश्य के पास आया। उसने देखा कि वैश्य तुलाधर एक दुकान में बैठा है। ग्राहक आ रहे हैं, जा रहे हैं। तुलाधर तराजू से तोलता जा रहा है। कोई साधना नहीं, कोई ध्यान नहीं, कोई स्वाध्याय नहीं, कोई तपस्या नहीं। वह केवल तराजू से तोल रहा है। इतना सा ध्यान दे रहा है कि दोनों पलड़े समान रहें, कोई भी झुका हुआ न हो। सांझ हुई। तुलाधर वैश्य दुकान बंद करने लगा। ऋषि पास में जाकर बोले — 'भाई! क्या तुम्हारा नाम तुलाधर है ?'

'हाँ, जाजली! तुम आए हो! कहो — किसलिए आए हो ?'

'मैं तुम्हारी साधना जानने के लिए आया हूँ। तुम्हारी साधना का मर्म क्या है ?' ऋषि ने पूछा।

तुलाधर ने कहा — 'मेरी और कोई साधना नहीं है। मैं तो व्यापारी हूँ। व्यापार करता हूँ। वस्तुएं तोलता हूँ किंतु एक बात का ध्यान रखता हूँ कि दोनों पलड़े समान हों। दोनों पलड़े समान रखता हूँ। इस बाहरी संतुलन ने मेरे भीतर भी संतुलन पैदा कर दिया।' इस कथा के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि जब भीतर संतुलन का वलय बन जाता है तो ध्यान अपने-आप सिद्ध हो जाता है और समाधि भी सिद्ध हो जाती है।

मैत्री क्यों ?

मैत्री के अर्थ को अधिक स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि प्रश्न होता है — मैत्री क्यों ? इसका क्या अर्थ है ? क्या मैत्री का संबंध केवल दूसरों के लिए ही है ? समाधान की भाषा में लिखते हैं कि मैत्री का संबंध दूसरों का हित सोचना, हित चिंतन करना तो है ही पर इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि जो व्यक्ति दूसरों का हित नहीं करता है वह उनसे शत्रुता का भाव रखता है। मैत्री की दार्शनिक मीमांसा करते हुए लिखते हैं कि जो स्वयं का हित चिंतन करता है, अपने विषय में सोचता है, वह भी मैत्री है। जो व्यक्ति स्वयं का हित सोचता है, उससे दूसरो का हित स्वतः हो जाता है क्योंकि ऐसा व्यक्ति कभी बैर-विरोध के मार्ग पर नहीं जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। आत्म-तुला के सिद्धान्त को विकसित करते हुए इसे मनः चिकित्सा के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया है।

मनः चिकित्सा

आत्म-तुला के सिद्धान्त का मनोवैज्ञानिक विवेचन करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति के मन में विधायक भाव के साथ निषेधात्मक भाव भी होते हैं।

दूसरों का अहित चिन्तन करना एक निषेधात्मक भाव है। मस्तिष्क विद्या के अनुसार हमारे मस्तिष्क में अनेक रसायन होते हैं। उनमें कुछ रसायन विष तुल्य होते हैं और कुछ रसायन, अमृत तुल्य होते हैं। शरीर को पोषण देने वाले रसायन अमृत के समान होते हैं। हम जो बाहर से खाते हैं इससे हमारा सारा काम नहीं चलता है वह तो मात्र तीस अथवा चालीस प्रतिशत है। साठ अथवा सत्तर प्रतिशत काम भीतर के रसायनों से चलता है। यह शरीर अनेक प्रकार के विटामिन्स, प्रोटीन्स बनाता है। उस शरीर के अंदर एक बड़ा कारखाना चल रहा है जो हर समय आवश्यकतानुसार रसायन पैदा करता रहता है। पाठकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण रसायन एण्डोरफिन की हम चर्चा करेंगे।

एण्डोरफिन रसायन

विज्ञान जगत का एक प्रसिद्ध शब्द है एण्डोरफिन रसायन। जब कष्ट आता है उस समय बड़ी पीड़ा होती है। जब वह पीड़ा सहन नहीं की जा सकती उसी वक्त शरीर एण्डोरफिन रसायन को मस्तिष्क में पैदा करता है तो पीड़ा कम हो जाती है। एण्डोरफिन रसायन एक तरह से अफीम में मौजूद दर्द निवारक रसायन से मिलते-जुलते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि शरीर में दर्द अनुभव होने पर, शरीर अफीम की तरह के रसायन बनाता है जिससे पीड़ा कम अनुभव होती है। लेकिन एण्डोरफिन एक सीमित मात्रा तक ही उत्पादित होते हैं अतः अधिकांश दर्द जो मध्यम या गहन तीव्रता के होते हैं, शरीर में एण्डोरफिन बनाने के बावजूद भी शरीर अपने आप पूर्णतया आराम नहीं दे पाता है। हल्की पीड़ा, एण्डोरफिन के प्रभाव से स्वतः बंद हो जाती है। अतः हम यह जाने कि यह शरीर, शामक औषधियाँ और पेन-किलर भी पैदा करता है। इसी प्रकार बाहर से ग्लूकोज दिया जाता है पर शरीर स्वयं ग्लूकोज पैदा करता है।

उपर्युक्त शारीरिक रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ समझाते हैं कि जब भी मन में किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति बुरा भाव आएगा, बुरा विचार आएगा तो मस्तिष्क ऐसा रसायन पैदा करेगा जो शरीर को हानि पहुंचाएगा। इस प्रकार वैर-विरोध करने वाला किसी दूसरे का अहित नहीं करता, स्वयं का अहित करता है। दूसरे का अहित होगा या नहीं, किंतु अपना अहित निश्चित कर लेगा।

वैर-विरोध न करें

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को यथार्थ के धरातल पर समझाने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि वैर-विरोध का भाव मस्तिष्क में जहर पैदा करेगा। ईर्ष्या का भाव मन में आया और पेट में अल्सर पैदा हो जाएगा। यह अल्सर किसने पैदा किया? यद्यपि ज्यादा मिर्च नहीं खाई, ज्यादा खट्टी चीजें नहीं खाई, सम्यक् खान-पान चल रहा है फिर भी अल्सर क्यों? इसके समाधान में कहते हैं कि ईर्ष्या की भावना, जलन और कुढ़न मन में हुई और अल्सर की बीमारी हो गई। ये जितनी मनोकायिक बीमारियां होती हैं, हमारे बुरे विचारों और बुरी भावनाओं के कारण होती हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ की स्पष्ट धारणा है कि मनोविज्ञान को समझने से ही मैत्री का संदर्भ समझ में आ सकेगा। हम किसी के साथ वैर-विरोध न करें और इसलिए न करें कि वह वैर का विचार, विरोध का विचार स्वयं को ही हानि पहुंचाएगा। यह मैत्री का सिद्धान्त बड़ा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बन जाता है, अपने हित का सिद्धान्त बन जाता है। इसलिए अच्छी बात सोचो, अच्छा काम करो। बुरा विकल्प न करो, अपने प्रति भी और दूसरों के प्रति भी। न आत्महत्या की बात सोचो और न दूसरे की हत्या की बात सोचो। यह सारा मैत्री का सिद्धान्त है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने मनोविज्ञान के आधार से स्व-हित से पर-हित और पर-हित से स्व-हित के बीच जो सामंजस्य किया है, इससे आत्म-तुला के सिद्धान्त को नई भूमिका मिली है।

मैत्री का अनुप्रयोग

वर्तमान में वे अहिंसा-यात्रा पर हैं, पैदल विहार करते हुए सभी जाति और धर्म के अनुयायियों के बीच मैत्री का संदेश प्रसारित कर रहे हैं। आत्म-तुला के इस अनुप्रयोग की सराहना हुई है।

भगवान महावीर ने कहा है 'मिति मे सच्च भूएसु' अर्थात् सबके साथ मैत्री हो। आचार्य महाप्रज्ञ ने एक अन्य सूत्र के द्वारा मैत्री के पूरे दर्शन को समाहित किया है। वह है -

'अप्यणा सच्चमेसेज्जा मितिं भूएसु कप्पए'

अर्थात् स्वयं सत्य खोजें, सबके साथ मैत्री करें। प्रेक्षा ध्यान के प्रवर्तन में, इस वाक्य का प्रारम्भ में ही उच्चारण किया जाता है। मैत्री, प्रेक्षा ध्यान की उप-सम्पदा है, व्यक्ति सदैव अपने भावों में यह प्रकट करता रहता है कि

‘मेरी सभी से मैत्री है।’ इससे भय और हीनता की भावना उत्पन्न नहीं होती। इस संबंध का एक रोचक कथानक निम्न प्रकार से है।

रोचक कथानक

1. एक बार एक योगी ने अपनी साधना के द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया और उसे स्मरण किया। इन्द्र योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। योगी ने कहा, ‘इन्द्र, मुझे तुम्हारा वज्र चाहिए जिससे मैं जगत का संहार कर सकूँ।’ इन्द्र ने कहा, मुनिवर! इस जगत में आपके मित्र भी होंगे, उनका भी क्या संहार करेंगे ? योगी ने विचलित होते हुए कहा, ‘मेरा इस जगत में कोई मित्र नहीं है, सभी शत्रु हैं।’ योगी की यह बात सुनकर, इन्द्र ने वहां से प्रस्थान किया। स्वर्ग लौटने से पूर्व उन्होंने एक अन्य योगी को देखा और उसके निकट जाकर इन्द्र ने कहा, ‘मुनिवर! आपके ध्यान-योग में कोई बाधा तो नहीं डालता, आप मेरा वज्र अपने पास रखें और अपने शत्रुओं का संहार करें।’ योगी ने अपनी शांत और प्रसन्न मुद्रा में कहा, ‘इंद्र मेरा इस जगत में कोई शत्रु नहीं है, सभी मेरे मित्र हैं। मुझे तुम्हारा वज्र नहीं चाहिए।’ इस वाक्य को सुनकर इन्द्र प्रसन्न हुआ और मित्रता के अर्थ को समझ कर प्रस्थान कर गया।
2. कहा जाता है कि चीन के महान दार्शनिक कन्फ्यूशियस एक दिन एकांत में बैठे चिन्तन कर रहे थे। तभी उधर से चीन के सम्राट गुजरे। अपने ध्यान में लीन कन्फ्यूशियस ने सम्राट की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सम्राट ने इसे अनादर माना और पूछा ‘‘तुम कौन हो’। कन्फ्यूशियस ने कहा ‘‘मैं सम्राट हूँ’। उन्होंने पूछा ‘‘तुम्हारी सेना कहाँ है’। कन्फ्यूशियस ने कहा ‘‘सेना उनको चाहिए, जिनके शत्रु हों, मेरी सबसे मैत्री है’। सम्राट नतमस्तक हो गया।

हित चिंतन भी करें

आचार्य महाप्रज्ञ ने मैत्री के अर्थ को बोधगम्य करते हुए लिखा है कि— ‘‘मैत्री का दार्शनिक पक्ष है — आत्म-तुला का सिद्धान्त — सबको अपने समान समझें और अपने समान मानें’। इसका प्रायोगिक रूप है — हित चिंतन करो। अपना हित सोचो और दूसरे का हित सोचो। इसका अर्थ है कि — दूसरा कोई अज्ञानी है, उसे ज्ञान की बात बताओ। दूसरा क्या समझता है, उसको

सीख दो, विवेक दो। दूसरे की ज्ञान शक्ति का उद्घाटन करो, दूसरे का निर्माण करो। शक्ति का नियोजन करो और दूसरे का निर्माण करो, यह मैत्री का व्यावहारिक रूप है कि आप में कोई विशेषता है तो उसे अपने तक सीमित मत रखो। उसका उपयोग करो और दूसरे को भी बताओ। दूसरे को बताना बहुत बड़ी बात है। अनेक लोग अपना ज्ञान दूसरों को सिखाते हैं। क्यों ? इसलिए कि इससे उसका और अपना भी हित होगा, भला होगा। एक गुरु अपने शिष्य को आगे बढ़ाता है, तैयार करता है। यह मैत्री का प्रयोग है। आत्म-तुला के सिद्धान्त को सामने रखें, सब जीवों को अपने समान समझें, उनके विकास का प्रयत्न करें, उनके उत्थान का प्रयत्न करें, उन्हें उठाएं, उन्हें कुछ दें।

आचार्य भिक्षु के दर्शन को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि— किसी को कष्ट न पहुंचाना, किसी का अहित न करना, किसी को हानि न पहुंचाना, सबसे बड़ी मैत्री है। सबके साथ हम यही मैत्री कर सकते हैं। यह प्रायोगिक मैत्री है। यदि कोई व्यक्ति सब जीवों के साथ व्यक्तिगत मैत्री करना चाहे तो नहीं कर सकता। उसकी सीमा होगी। इसकी व्याख्या में मैत्री दो प्रकार की बताई है।

- (i) जो हित साधने वाली मैत्री है, वह सीमा की मैत्री होगी।
- (ii) दूसरों का अहित न करने वाली मैत्री है, वह सार्वजनिक मैत्री होगी।

हम मैत्री के व्यापक अर्थ को समझें और मैत्री का यथाशक्ति प्रयोग करें तभी 'मिती मे सव्वभूएसु-सबके साथ मेरी मैत्री हो' फलित होगी।

में सभी जीवों के प्रति मैत्री की भावना रखना अत्यंत विस्तार वाला तथा कठिन कार्य है क्योंकि जैनों ने पृथ्वी, पानी, जल, अग्नि और वनस्पति में भी जीव (आत्म-तत्त्व) को माना है। आचारांग सूत्र में उल्लेख है कि पृथ्वी आदि स्थावर (गतिहीन) जीवों में प्राणों का स्पंदन है ; पर इन चर्म-चक्षुओं से हम देख नहीं पाते। मूर्च्छित मनुष्य की चेतना जैसे बाहर से लुप्त होती है वैसे ही स्त्यानगृद्धि निद्रा के सतत् उदय से उनकी चेतना सतत मूर्च्छित और बाहर से लुप्त रहती है लेकिन अन्तर में चेतना शून्य नहीं होती। वे मूर्च्छित मनुष्य की भांति कष्ट का अनुभव करते हैं।

अतः पृथ्वी आदि स्थावर जीवों को परिताप देना हिंसा है। इसी प्रकार वनस्पति जीव और मनुष्य के चेतन तत्त्व की तुलना निम्न प्रकार से की गई है —

मनुष्य	वनस्पति
यह भी जन्मता है।	यह भी जन्मती है।
यह भी बढ़ता है।	यह भी बढ़ती है।
यह भी चैतन्ययुक्त है।	यह भी चैतन्ययुक्त है।
यह भी छिन्न होने पर म्लान होता है।	यह भी छिन्न होने पर म्लान होती है।
यह भी आहार करता है।	यह भी आहार करती है।
यह भी अनित्य है।	यह भी अनित्य है।
यह भी अशाश्वत है।	यह भी अशाश्वत है।
यह भी उपचित और अपचित होता है।	यह भी उपचित और अपचित होती है।
यह भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है।	यह भी विविधि अवस्थाओं को प्राप्त होती है।

विश्व मैत्री का अभिप्राय

उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्थावर जीव समस्त जगत में व्याप्त हैं, ऐसे में विश्व-मैत्री के अभिप्राय की स्पष्टता को समझने की आवश्यकता है क्योंकि इस जगत में अनन्त आत्माएं हैं, सभी से मैत्री करना कैसे संभव है ? इस संबंध में वैज्ञानिक क्षेत्र में पर्यावरण-संरक्षण की आवश्यकता पर जो कार्य हो रहा है, उसका उल्लेख करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि सृष्टि-संतुलन-शास्त्र आधुनिक विज्ञान के लिए विज्ञान की एक नई शाखा हो सकती है लेकिन एक जैन के लिए यह सिद्धान्त ढाई हजार वर्ष पुराना है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के अस्तित्व को, अपने अस्तित्व के समान माना है। इनके अस्तित्व को मिटाकर कोई भी व्यक्ति अपने अस्तित्व को बचा नहीं सकता। वनस्पति आदि अन्य निकायों में जीवन है उसको विनष्ट करना हिंसा है। हिंसा स्वयं प्रमाद है अथवा प्रमाद की निष्पत्ति है। अहिंसात्मक जीवन जीने वाला, पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करता। इस भावना ने पर्यावरण संरक्षण में सहयोग किया है। अहिंसा अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होना है साथ साथ दूसरे जीवों के अस्तित्व के प्रति

जागरूक होना भी है। यह जागरूकता आत्म-तुला के सिद्धान्त से विकसित होती है। विश्व मैत्री का संयम की चेतना से गहरा संबंध है अतः इस संबंध में हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

संयम की चेतना

आचार्य महाप्रज्ञ विश्व-मैत्री के व्यापक स्वरूप को प्रकट करते हुए कहते हैं कि "किसी प्राणी को मत मारो यह अहिंसा-मैत्री की सीमा नहीं है। शस्त्र का निर्माण मत करो, यह भी इसकी सीमा नहीं है। अहिंसा का व्यापक स्वरूप है, संयम की चेतना का निर्माण। हम पर्यावरण को विशुद्ध करने का और निःशस्त्रीकरण का प्रयत्न करते हैं, किंतु चेतना के रूपान्तरण का प्रयत्न नहीं करते। क्या चेतना के रूपान्तरण किए बिना प्रकृति का अतिदोहन, पर्यावरण का प्रदूषण और शस्त्रों का निर्माण रोका जा सकता है? "यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसका समाधान संयम की चेतना के निर्माण में ही है। संयम के द्वारा व्यक्ति अपने स्वभाव की पहचान बनाए रख सकता है। यह स्वयं का हित है और अमर्यादित न होने के कारण वह दूसरों के जीवन में अहित नहीं करता।

समता-संयम प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए संसार का छोटे से छोटा प्राणी, यहां तक कि सामान्य वनस्पति भी, अवध्य हो जाती है। किसी प्राणी के वध से द्विविध प्रभाव होता है, एक तो उस प्राणी की मृत्यु और दूसरा उस वध-कर्ता की आत्मा के स्वाभाविक स्वरूप का हनन — आचार्य महाप्रज्ञ ने इस तथ्य को वैज्ञानिक पर्यावरण-विज्ञान (Ecology) के सिद्धान्त से अधिक बोधगम्य बनाया है। पर्यावरण विज्ञान के अनुसार प्रकृति का कोई भी अंश यदि अस्त-व्यस्त रहता है तो प्रकृति का सारा चक्र ही अस्त-व्यस्त हो जाता है।

पर्यावरण — विज्ञान का नया आयाम

पर्यावरण विज्ञान का नया आयाम है। पहले के जमाने में मनुष्य पर ही ध्यान था और माना जाता था कि मनुष्य ही सब कुछ है। फिर दूसरे प्राणियों पर ध्यान गया कि मनुष्य के लिए पशु उपयोगी हैं। पशुओं का मूल्यांकन किया गया किंतु इस 'इकोलॉजी' ने एक नया आयाम खोल दिया। यह बात मान्य हो गई कि प्रकृति का छोटा-मोटा — प्रत्येक अवयव उपयोगी है, अनिवार्य है। अभी-अभी पर्यावरण-विशेषज्ञों ने आंकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा कि आज वनस्पति की बीस हजार उपजातियां उपलब्ध हैं। यदि उनकी सुरक्षा नहीं की गई तो बहुत बड़ी निधियां समाप्त हो जाएंगी। आज तक यह जाना ही नहीं गया कि किस वनस्पति में क्या विशेषता है? ऐसी वनस्पतियां हैं जिनमें

कैंसर जैसे असाध्य रोग को मिटाने की क्षमता है। ऐसी वनस्पतियां हैं जो मनुष्य के शरीर को संतुलित रखती हैं, रक्तचाप को संतुलित रखती हैं। यदि ये वनस्पतियां नष्ट हो गईं तो मनुष्य बहुत बड़े लाभ से वंचित रह जाएगा। संतुलन परम आवश्यक है।

आचार्य महाप्रज्ञ पर्यावरण के संबंध में कहते हैं कि हमारी सारी दुनिया एक जोड़ है। कोई तोड़ नहीं है। मात्र एक योग है। योग से ही सारा जीवन चलता है। जगत में, प्रकृति में जितनी जीव-जातियां और प्रजातियां हैं, जितने पदार्थ हैं उन सबका जोड़ है। जोड़ है इसलिए सब कुछ चल रहा है। जहां भी जोड़ से थोड़ा सा टूटा, खराबी हो जाती है, सब कुछ लड़खड़ा जाता है। एक की टूट के कारण प्रकृति की सारी व्यवस्था प्रभावित हो जाती है। वे कहते हैं कि एक जंगल कटता है तो वैज्ञानिक चिंतित हो उठते हैं, कि केवल जंगल ही नहीं कटता उसके साथ-साथ वर्षा की कमी हो जाती है, रेगिस्तान बढ़ जाता है, अनाज की कमी हो जाती है, न जाने और कितनों पर असर होता है। एक के साथ अनेक जुड़े हुए हैं।

समता ही पर्यावरण का विज्ञान

समता ही पर्यावरण का विज्ञान है। इस पर्यावरण के विज्ञान को अध्यात्म के साधकों ने बहुत पहले ही खोज लिया था। उन्होंने समत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा — 'किसी को मत मारो, चोट मत पहुंचाओ, परिताप मत करो, क्लेश मत दो। सबको समान समझो। सबके साथ समत्व का व्यवहार करो।' संयम की चेतना का संबंध अनुकम्पा (दया) से जोड़ते हुए वे लिखते हैं कि —

अनुकम्पा के दो रूप होते हैं — विधेयात्मक और निषेधात्मक। भगवान महावीर ने अहिंसा के संयम स्वरूप को मान्य किया है। अनुकम्पा अहिंसा का ही एक अवान्तर प्रकार है, इसलिए उसका सीमा-स्तम्भ संयम ही हो सकता है। सूत्रकार ने अनुकम्पा की प्रयोगात्मक व्याख्या में 'दुःख न देना'— इसका निर्देश किया है, सुख देना — इसका निर्देश नहीं किया है। सुखात्मक अनुकम्पा समाज की प्रकृति के अनुकूल हो सकती है, किंतु संयम-धर्म की प्रकृति के अनुकूल नहीं हो सकती। मनुष्य आरम्भ में प्रवृत्त होकर दूसरों को दुःख देता है। अनुकम्पा का भाव जागृत होने पर वह आरम्भ का संयम करता है, इसलिए वह दूसरों को दुःख नहीं देता। अनुकम्पा का यह स्वरूप सार्वभौम है, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है और सर्वथा निर्दोष है। इससे विश्व मैत्री फलित होती है और इसी से आत्म-तुला के सिद्धान्त की पुष्टि होती है।

महाप्रज्ञ की सैद्धान्तिक स्थापनाएँ

आचार्य महाप्रज्ञ इस युग के महान दार्शनिक संत हैं। जैन आगम साहित्य के अनुसंधान तथा संपादन कार्य के साथ आपने जैन आगमों पर भाष्य-लेखन की परम्परा को आगे बढ़ाया है। आचार्य भाष्य और भगवती भाष्य की रचना कर भाष्य लेखन के ठहराव को गति प्रदान की है। जैन साहित्य में तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से भगवती को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। भगवती भाष्य में तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर दर्शन शास्त्र, आचार शास्त्र, जीव विद्या, सृष्टि विद्या, परामनोविज्ञान आदि अनेक विषयों का गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। भगवती भाष्य में तथा अन्य साहित्य में उन्होंने अनेक गंभीर, बहुचर्चित प्रश्नों का समाधान देते हुए, कई नई मौलिक स्थापनाएँ की हैं। अनुसंधान प्रवृत्ति में अपने वैज्ञानिक सोच को महत्त्व दिया है तथा विज्ञान की खोजों की मीमांसा की हैं। आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रदत्त कुछ मौलिक स्थापनाएँ पाठक गण के लिये प्रस्तुत है : -

1. जैन दर्शन का स्वतंत्र अस्तित्व

पश्चिमी विचारकों ने लिखा है - जैन दर्शन अन्यान्य दर्शनों के विचारों का संग्रह-मात्र है, इसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस प्रश्न को गंभीरतापूर्वक लेते हुए कहा है कि पश्चिमी विद्वानों की इस स्थापना को हम सर्वथा निराधार नहीं मानते, इसका एक आधार भी है। मध्य युग के आचार्यों ने न्याय या तर्कशास्त्र के जिन ग्रन्थों की रचना की उसमें बौद्ध और नैयायिक आदि दर्शनों के विचारों का संग्रह किया गया है। उन ग्रन्थों को पढ़कर जैन दर्शन के बारे में उक्त धारणा होना अस्वाभाविक नहीं है। आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में वे दर्शन के प्रतिनिधि ग्रन्थ नहीं हैं। इसकी विवेचना करते हुए लिखते हैं कि -

- (i) पहली भ्रान्ति यह है कि तार्किक ग्रन्थों को दार्शनिक ग्रन्थ माना जा रहा है।
- (ii) दूसरी भ्रान्ति इसी मान्यता के आधार पर पल रही है कि जैन दर्शन दूसरे दर्शनों के विचार का संग्रह-मात्र है।

पहली भ्रान्ति टूटे बिना दूसरी भ्रान्ति नहीं टूट सकती। जैन दर्शन के आधारभूत और मौलिक ग्रन्थ आगम-ग्रन्थ हैं। ये दर्शन का प्रतिनिधित्व करते

हैं। इनका गंभीर अध्येता नहीं कह सकता कि जैन दर्शन दूसरों के विचारों का संग्रह मात्र है।

षडजीव निकाय, लोक-अलोकवाद, पंचास्तिकाय, परमाणुवाद, तमस्काय, कृष्णराजि — ये जैन दर्शन के सर्वथा स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रज्ञापक हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन की मौलिकता स्थापित करते हुए आचार्य सिद्धसेन का एक उद्धरण दिया है कि —

“भगवान ! आपकी सर्वज्ञता को सिद्ध करने के लिए मुझे बहुत प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। आपके द्वारा प्रतिपादित षडजीव निकायवाद आपके सर्वज्ञत्व का प्रबलतम साक्ष्य हैं।”

2. लोक-अलोक की प्ररूपणा

पं. दलसुख मालवणिया के अनुसार पंचास्तिकाय और षडद्रव्य की कल्पना, नव तत्त्व या सात तत्त्व के बाद हुई हैं। उनकी पुस्तक ‘जैन दर्शन का आदिकाल’ में टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं कि सूत्रकृतांग के काल तक पंचास्तिकाय और षडद्रव्य की चर्चा ने तत्त्व विचारणा में स्थान पाया है। उनकी दृष्टि में जीव और अजीव का वर्गीकरण ही मुख्य रूप से प्रचलित था। आचार्य महाप्रज्ञ ने उक्त मन्तव्य की समीक्षा करते हुए इसका समाधान दिया है कि भगवान महावीर ने जीव और अजीव की प्ररूपणा से पहले लोक और अलोक की प्ररूपणा की हैं अतः पंचास्तिकाय या षडद्रव्य की कल्पना नव तत्त्व या सात तत्त्व के बाद संभव नहीं है। मालवणिया जी सूत्रकृतांग की जिस सूची को सात पदार्थ या नव तत्त्व का आधार मानते हैं उसी सूची में सबसे पहले लोक और अलोक का, उसके पश्चात् जीव और अजीव का उल्लेख है। अतः इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भगवान महावीर ने जीव और अजीव की प्ररूपणा से पहले लोक और अलोक की प्ररूपणा की है।

मालवणियाजी भगवती सूत्र का प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि वहां प्रश्न किया गया है कि लोकान्त में खड़ा रहकर देव अलोक में अपना हाथ हिला सकता है या नहीं ? वहां उत्तर दिया गया है कि नहीं हिला सकता और उसका जो कारण बताया गया है उससे स्पष्ट होता है कि जीव और अजीव की गति का कारण पुद्गल को माना गया है। मालवणियाजी का निष्कर्ष यह रहा कि यदि भगवती के इस उत्तर की रचना के समय में धर्मास्तिकाय द्रव्य की कल्पना स्थिर हो गई होती तो ऐसा उत्तर नहीं मिलता। इस मन्तव्य की गहरी मीमांसा आचार्य महाप्रज्ञ ने भगवती की भूमिका में प्रस्तुत कर, एक

नई मौलिक स्थापना की हैं। ऐसी स्थापना कोई दार्शनिक धर्माचार्य ही कर सकता है। वे लिखते हैं —

आचारांग में आत्मा और जीव की चर्चा आचार के प्रसंग में की गई हैं। वहाँ द्रव्य मीमांसा का स्वतन्त्र स्थान नहीं है। सूत्रकृतांग में भी द्रव्य मीमांसा प्रासंगिक है। उसका विस्तृत रूप व्याख्या-प्रज्ञप्ति में ही मिलता है। व्याख्या प्रज्ञप्ति में लोक की व्याख्या पंचास्तिकाय के आधार पर की गई है। कहा गया है कि आकाश दो प्रकार का है — लोकाकाश और अलोकाकाश। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय— ये पांचों लोक प्रमाण है — जितने आकाश में ये व्याप्त है उतना ही लोक है, जहाँ ये नहीं हैं, वह अलोक है।

यह सही है कि अलोक में जीव और पुद्गल नहीं है लेकिन यह लोकस्थिति के सिद्धान्त का एक प्रकार है। अतः यह बहुत संभव है कि जैन दर्शन में द्रव्य के अर्थ में अस्तिकाय का प्रयोग प्राचीन है और द्रव्य का प्रयोग बाद का है लेकिन पंचास्तिकाय की स्थापना लोक-अलोक, जीव-अजीव और मोक्ष के सिद्धान्त के साथ ही हुई है, इसे बाद में मानना न्याय संगत नहीं।

3. जीव और पुद्गल का संबंध भौतिक या अभौतिक

जैन दर्शन में आत्मा को अभौतिक और पुद्गल कर्म पदार्थ को भौतिक माना है। संसारी अवस्था में आत्मा और कर्म परस्पर बद्ध रहते हैं। यह बहुचर्चित प्रश्न रहा है कि जीव और पुद्गल दोनों में अत्यन्तभाव हैं, त्रैकालिक स्वतन्त्रता है फिर भी इनमें परस्पर संबंध क्यों होता है ? जीव और पुद्गल का संबंध भौतिक होता है या अभौतिक ? यह भी एक प्रश्न है।

इस संबंध में अपनी मौलिक स्थापना करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि अनेकान्त दृष्टि से चेतन और अचेतन सर्वथा भिन्न नहीं है, इसलिए इनमें संबंध हो सकता है। चेतन और अचेतन को सर्वथा भिन्न तथा संसारी जीव को सर्वथा शुद्ध मानने पर ही संबंध की समस्या जटिल बनती है। वे विस्तार से स्पष्ट करते हैं कि —

जीव और पुद्गल का संबंध भौतिक होता है या अभौतिक ? यह एक प्रश्न है। संसारी अवस्था में जीव सर्वथा अभौतिक नहीं होता, इसलिए जीव और पुद्गल के संबंध को भौतिक माना जा सकता है। यह संबंध केवल जीव या पुद्गल की ओर से ही नहीं होता, किन्तु दोनों ओर से होता है। इसकी

जानकारी हमें 'स्नेह प्रतिबद्ध' से मिलती हैं। जीव में स्नेह हैं — आश्रव और पुद्गल में स्नेह हैं — आकर्षित होने की अर्हता। इस उभयात्मक स्नेह के द्वारा परस्पर संबंध स्थापित होता है। नौका में छिद्र है तो पानी अपने आप उसमें भर जायेगा। जीव और पुद्गल के संबंध को बन्ध,स्पर्श, अवगाह, स्नेह प्रतिबद्ध और घटा (एकीभूत अवस्था) इन पांच रूपों में प्रतिपादित किया गया है। इस विषय को जैन दर्शन के आधार से स्पष्टता से प्रकट किया है कि संसारी जीव स्वरूपतः चेतन होते हुए भी पुद्गल या शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं हैं। इन दोनों में नैसर्गिक संबंध चला आ रहा है। ये दोनों परस्पर संबद्ध है, इनमें अन्तःक्रिया होती है और इसलिए वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

सारांश यह है कि जैन धर्म में आत्मा अमूर्त हैं, अरूप है और कर्म परमाणु मूर्त है, रूपवान है। जैन दर्शन की मान्यता है कि आत्मा कर्म परमाणुओं से आबद्ध हैं। प्रश्न स्वाभाविक है कि अमूर्त के साथ मूर्त का संबंध कैसे होता है ? इसके उत्तर में यह स्वीकार किया जाता है कि संसारी आत्मा बद्ध है, कर्म पुद्गलों से बंधी हुई है वह अमूर्त नहीं हो सकती हैं।

पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में भी मन और शरीर के संबंध की समस्या बहुत दिनों से चली आ रही है। देकार्त, स्पिनोजा, लाइबनिज की मान्यताओं का संदर्भ देते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने मनोविज्ञान के संबंध में लिखा है कि—

मनोविज्ञान में भी जिज्ञासा है कि शरीर और मन में क्या संबंध है? शरीर मन को प्रभावित करता है? ठीक यही प्रश्न हमारे सामने है कि शरीर, चेतना को प्रभावित करता है या चेतना शरीर को प्रभावित करती हैं? इन दोनों में परस्पर क्या संबंध हैं ? ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। शरीर और चेतना को सर्वथा स्वतन्त्र स्वीकार कर हम उनके संबंध और पारस्परिक प्रभाव की व्याख्या नहीं कर सकते हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि —

- (i) अनेकान्त दृष्टि के अनुसार चेतन और अचेतन सर्वथा भिन्न नहीं है, इसलिए इनमें संबंध हो सकता है।
- (ii) इस संसार में जीव का अस्तित्व पुद्गल मुक्त नहीं हैं, संसारी जीव शुद्ध नहीं यौगिक हैं।
- (iii) चेतन और अचेतन को सर्वथा भिन्न तथा संसारी जीव को सर्वथा शुद्ध मानने पर ही संबंध की समस्या जटिल बनती है ।

- (iv) भेद विज्ञान की साधना चेतना और अचेतना के सापेक्ष संबंध के आधार पर ही हो सकती है, आध्यात्मिक दृष्टि से इसका बहुत मूल्य है।

4. कर्म-परिवर्तन का सिद्धान्त

कर्मवाद में कर्म बन्धन की दस अवस्थाओं का वर्णन है। इनमें कर्मों की उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण और संक्रमण चार अवस्थाओं में परिवर्तन किया जा सकता है। इसमें एक अवस्था संक्रमण है। इसका हम पाठकों के लिए विस्तार से चिंतन करेंगे।

संक्रमण

वीर्य विशेष से सजातीय कर्म-प्रकृतियों के एक दूसरे में परिणमन करने को संक्रमण कहा जाता है। प्रश्न यह बना हुआ था कि क्या शुभ कर्म प्रकृति अशुभ में तथा अशुभ कर्म प्रकृति शुभ में संक्रमित हो सकती है? संक्रमण के संबंध में पूर्व धारणा बनी हुई थी कि शुभ कर्म, अशुभ कर्म में नहीं बदलते और अशुभ कर्म, शुभ कर्म में नहीं बदलते। शुभ कर्म, अन्य शुभ प्रकृतियों में तथा अशुभ कर्म अशुभ प्रकृतियों में बदल जाते हैं। इस धारणा के संबंध में नई स्थापना देते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा है कि यह कहना न्यायसंगत होगा कि पुरुषार्थ से कर्म में परिवर्तन संभव है। पुण्य को पाप में और पाप को पुण्य में बदलने की जीव में क्षमता रहती है। जैन दर्शन में कर्म परिवर्तन का सिद्धान्त मान्य है। शुभ कर्म प्रकृति का अशुभ कर्म प्रकृति में परिणमन होता है और अशुभ प्रकृति का शुभ प्रकृति के रूप में परिणमन होता है। इसमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश — ये चारों एक रूप से दूसरे रूप में संक्रान्त हो जाते हैं। परिवर्तन के ये निम्न रूप बनते हैं —

(i) शिथिल बन्धन गाढ़ बन्धन में बदल जाता है।

(ii) गाढ़ बंधन शिथिल बंधन में बदल जाता है।

यह प्रकृति बंध का परिवर्तन है। अशुभ परिणाम धारा के कारण अशुभ प्रकृति का शिथिल बन्धन तीव्र बंधन में बदल जाता है और शुभ परिणाम धारा के कारण अशुभ प्रकृति का तीव्र बंधन शिथिल बंधन में बदल जाता है। उदाहरणतः जैसे कोई व्यक्ति साता वेदनीय कर्म का अनुभव कर रहा है, इस समय उसके अशुभ कर्म की परिणति प्रबल हो गई, परिणाम-स्वरूप, साता वेदनीय असाता वेदनीय में संक्रान्त हो गया। संक्रमण के कुछ अपवाद

भी है - आयुष्य कर्म की चार उत्तर प्रकृतियों का परस्पर संक्रमण नहीं होता। इसी प्रकार मोह कर्म की मुख्य दो प्रकृतियों का दर्शन मोह और चरित्र मोह का भी परस्पर संक्रमण नहीं होता। कर्म सिद्धांत की पूर्णता इसी में है कि इसमें कर्म-परिवर्तन को स्वीकार किया गया है। इससे पुरुषार्थ का महत्व जैन दर्शन में कभी कम नहीं हुआ है।

5. स्वभाव परिवर्तन में पुनर्भरण क्रियाविधि

आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वभाव परिवर्तन के लिए पुनर्भरण क्रियाविधि (Feedback Mechanism) का नया प्रयोग प्रस्तुत किया है। इस पद्धति को स्पष्ट करने के लिए जैन धर्म में तप के द्वारा होने वाली कर्म निर्जरा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं - उदाहरण के लिए एक व्यक्ति उपवास करता है। उपवास का प्रभाव स्थूल शरीर पर होता है। सिद्धान्त यह है कि जिसने उपवास किया, उसके कर्म की निर्जरा हुई, कर्म का शोधन हुआ। कर्म तो स्थूल शरीर में नहीं है। कर्म तो है कर्म शरीर में, जो सूक्ष्मतर शरीर है। निर्जरा वहां हुई और उपवास यहां स्थूल शरीर में हुआ। यह कैसे हो सकता है? यह बड़ा विचित्र प्रश्न है। हम ध्यान करते हैं, उपवास करते हैं, स्वाध्याय करते हैं जितने भी शोधन के उपाय हैं वे होते हैं स्थूल शरीर के द्वारा और शोधन होता है सूक्ष्मतर शरीर का।

स्थूल और सूक्ष्म शरीर के परस्पर के सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि आचारांग सूत्र का एक प्रसिद्ध वाक्य है -

मुणी मोणं समायाए, धुणे कम्म-सरीरगं।

मुनि ज्ञान को प्राप्त कर, कर्म-शरीर को प्रकम्पित करे। जब तक कर्म शरीर प्रकम्पित नहीं होगा तब तक यह स्थूल शरीर प्रकम्पित नहीं होगा। हमें पहुंचना है स्थूल से सूक्ष्म शरीर तक। यह हमारी पुनर्भरण (Feedback) की पद्धति हो गई। उपवास स्थूल शरीर करता है, कष्ट भी स्थूल शरीर को होता है और शोधन कर्म-शरीर में होता है। बड़ा अजीब सा लगता है। स्थूल शरीर पुनर्भरण है। सूक्ष्म शरीर के प्रकम्पन स्थूल शरीर को प्रभावित करते हैं और स्थूल शरीर के प्रकम्पन सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करते हैं। दोनों में एक सम्बन्ध है। दोनों में आदान-प्रदान हो रहा है। जो घटना स्थूल शरीर में हो रही है उसका प्रभाव सूक्ष्मतर शरीर (कर्म-शरीर) तक पहुंचता है और जो कर्म शरीर में स्पंदन होता है वह स्थूल शरीर तक पहुंचता है। यह कैसे होता है? इसके उत्तर में आचार्य महाप्रज्ञ दो प्रयोग प्रस्तावित करते हैं -

- (i) **श्वास के द्वारा** — श्वास प्रेक्षा से, श्वास दर्शन के साथ हमारे जो प्रकम्पन होते हैं वे कर्म-शरीर तक पहुंचते हैं और वहां शोधन करते हैं।
- (ii) **संकल्प के द्वारा** — संकल्प के साथ सूक्ष्म प्रकम्पन शुरू हो जाता है, स्पन्दन शुरू हो जाता है। प्रक्रिया चलते-चलते एक समय ऐसा आता है कि उस भाव में परिणमन हो जाता है। जो आकार का रूप लेता है यह विचार का आकार है।

निर्जरा और कर्म शोधन

इसी प्रकरण के अन्तर्गत आचार्य महाप्रज्ञ निर्जरा और कर्म शोधन के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि — व्यक्ति ने उपवास किया, खाना नहीं खाया यह हमारी स्थूल क्रिया है लेकिन उसने नहीं खाने का जो संकल्प किया उस संकल्प के परमाणु जो प्रकम्पन पैदा करते हैं, वे प्रकम्पन सूक्ष्म शरीर को प्रकम्पित कर देते हैं और निर्जरा हो जाती है। एक व्यक्ति उपवास करता है और बहुत कष्ट का अनुभव करता है। एक व्यक्ति उपवास करता है, पता ही नहीं चलता। अब प्रश्न होगा कि शोधन किसका ज्यादा हुआ? इसका उत्तर हम कष्ट के आधार पर दें तो बड़ी समस्या है। इसका अर्थ यह हो गया कि जितना कष्ट भोगो उतना ही लाभ है। जबकि जैन दर्शन का सिद्धान्त ही नहीं है कि शरीर को कष्ट दो। कष्ट दो तो फिर मोक्ष का सुख क्यों? पाना चाहते हो सुख और शरीर को कष्ट देते हो क्या यह मूर्खता की बात नहीं है? जो सुख है, सुख के द्वारा मिल सकता है, कष्ट के द्वारा कैसे मिलेगा? उपवास का संकल्प करते समय जिस व्यक्ति ने शक्तिशाली प्रकम्पन पैदा कर दिए चाहे कष्ट न हुआ फिर भी उसके अधिक निर्जरा या शोधन हो जाएगा। जिसका संकल्प कमजोर है, वह चाहे सारे दिन कष्ट भोगता रहा लेकिन निर्जरा उसकी तुलना में नहीं आ सकती। यह हमारे प्रकम्पनों को पैदा करने के श्रम पर निर्भर है कि किस व्यक्ति ने किस क्षण में कितने ज्यादा शक्तिशाली प्रकम्पन पैदा किए। यह प्रकम्पन भीतर जाकर कर्म-शरीर को प्रकम्पित करते हैं और वहां जो विजातीय कर्म का कण जमा हुआ है, उसका क्षरण और निर्जरण कर देते हैं।

कायोत्सर्ग इसका आलम्बन है क्योंकि इस अवस्था में सुझाव का प्रयोग सफल होता है। सुझाव की परिवर्तन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सुझाव के द्वारा परिवर्तन होता है।

लेखक की दृष्टि में उपर्युक्त प्रकरण का यह निष्कर्ष निकलता है कि कर्म को प्रकम्पित करने के लिए श्वास और संकल्प प्रधान है उसका संभवतः यह कारण है कि कर्म का भौतिक स्वरूप चतुःस्पर्शी पुद्गलों से बना है और चतुःस्पर्शी पुद्गलों का प्रकम्पन चतुःस्पर्शी पुद्गल ही कर सकते हैं। यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि सूक्ष्म, सूक्ष्म को प्रभावित करता है। इस कारण कर्म प्रकम्पन के लिए मन और श्वास के पुद्गल उपयोगी हैं। श्वास के पुद्गल मन के पुद्गलों से स्थूल हैं इसलिए कर्म प्रकम्पन में पहले श्वास की साधना और बाद में मन की साधना उपयोगी बनती है। यही स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का रास्ता है। हम इसके लिए श्वास के पुद्गलों को शरीर और मन के बीच आया हुआ एक पुल (Bridge) अर्थात् संधि-बिंदु के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। मन और भावनाओं के प्रत्येक परिवर्तन का असर श्वास पर और आगे चलकर शरीर पर पड़ता है। इसी प्रकार श्वास क्रिया का परिवर्तन भी हमारे मन और भावनाओं को बदलता है। अतः तप के साथ श्वास-प्रेक्षा और संकल्प की तीव्रता का होना आवश्यक है।

6. संज्ञाएं (ओघ, लोक)

संज्ञा का अभिप्राय आत्मा और मन की प्रवृत्ति से है। मनोविज्ञान की दृष्टि से ये मनोवृत्तियाँ कहलाती हैं। जैन आगम साहित्य में संज्ञा के दो अर्थ किए हैं — आवेग (संवेगात्मक ज्ञान या स्मृति) और मनोविज्ञान। संज्ञा के दस प्रकार निर्दिष्ट हैं। उनमें प्रथम आठ प्रकार संवेगात्मक तथा अंतिम दो प्रकार ज्ञानात्मक हैं। इनकी उत्पत्ति बाह्य और आन्तरिक उत्तेजना से होती है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं की उत्पत्ति के चार-चार कारण चतुर्थ स्थान में निर्दिष्ट हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ — इन चार संज्ञाओं की उत्पत्ति के कारणों का निर्देश भी प्राप्त होता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने उन संज्ञाओं का विशेष विवेचन किया है जो इन्द्रिय और मन से परे हैं। ये दो संज्ञाएं हैं जो ओघ और लोक संज्ञा के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका विस्तार से वर्णन निम्न प्रकार है।

ओघ संज्ञा — सामान्य अवबोध क्रिया, दर्शनोपयोग या सामान्य प्रवृत्ति क्रिया है। ज्ञान के दो निमित्त हैं। इन्द्रिय के निमित्त से होने वाला ज्ञान और अनिन्द्रिय के निमित्त से होने वाला ज्ञान। स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द का ज्ञान स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत इन्द्रिय से होता है। यह इन्द्रिय निमित्त से होने वाला ज्ञान है। अनिन्द्रिय के निमित्त से होने वाले ज्ञान के दो प्रकार हैं — मानसिक ज्ञान और ओघज्ञान। इन्द्रियज्ञान विभागात्मक होता

है, जैसे — नाक से गंध का ज्ञान होता है, चक्षु से रूप का ज्ञान होता है। ओघज्ञान निर्विभाग होता है। वह किसी इन्द्रिय या मन से नहीं होता। किन्तु वह चेतना की, इन्द्रिय और मन से पृथक्, एक स्वतंत्र क्रिया है। ओघ संज्ञा की यह विशेषता है कि यह अनुकरण की मनोवृत्ति है। जैसे लताएँ वृक्ष पर चढ़ती हैं, यह वृक्षारोहण का ज्ञान ओघ संज्ञा है।

ओघज्ञान को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया है — बल्ली वृक्ष आदि पर आरोहण करती है। उसका यह आरोहण-ज्ञान न स्पर्शन इन्द्रिय से होता है और न मानसिक निमित्त से होता है। वह चेतना के अनावरण की एक स्वतन्त्र क्रिया है।

वर्तमान के वैज्ञानिक एक छठी इन्द्रिय की कल्पना कर रहे हैं। उसकी तुलना ओघसंज्ञा से की जा सकती है। उनकी कल्पना का विवरण इन शब्दों में है — सामान्यतया यह माना जाता है कि हमारे पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं — आंख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा। वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि इन पांच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त एक छठी ज्ञानेन्द्रिय भी है।

इसी छठी इन्द्रिय को अंग्रेजी में 'ई-एस-पी' (एक्सट्रासेन्सरी पर्सेप्शन) अथवा अतीन्द्रिय अंतःकरण कहते हैं।

कई वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि प्रकृति ने यह इन्द्रिय बाकी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से भी पहले मनुष्य को उसके पूर्वजों को तथा अनेक पशु-पक्षियों को प्रदान की थी। मनुष्य में तो यह शक्ति जब तक ही प्राकृतिक रूप में पाई गई थी, क्योंकि सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसने इसका 'अभ्यास' त्याग दिया। अनेक पशु-पक्षियों में यह अब भी देखने में आती है। उदाहरण के लिए —

1. भूकंप या तूफान आने से पहले पशु-पक्षी उसका आभास पाकर अपने बिलों, घोंसलों या अन्य सुरक्षित स्थानों में पहुंच जाते हैं।
2. कई मछलियां देख नहीं सकती, परन्तु सूक्ष्म विद्युत धाराओं के जरिए पानी में उपस्थित रुकावटों से बचकर संचार करती हैं।

आधुनिक युग में आदिम जातियों के मनुष्यों में भी यह छठी इन्द्रिय काफी हद तक पाई जाती है। उदाहरण के लिए —

1. आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का कहना है कि वे धुएं के संकेत का प्रयोग तो केवल उद्दिष्ट व्यक्ति का ध्यान खींचने के लिए करते हैं और इसके बाद उन दोनों में विचारों का आदान-प्रदान मानसिक रूप से ही होता है।

2. अमरीका आदिवासियों में तो इस छठी इन्द्रिय के लिए एक विशिष्ट नाम का प्रयोग होता है और वह है शुम्फो।

लोकसंज्ञा – विशेष अवबोध क्रिया, ज्ञानोपयोग और विशेष प्रवृत्ति किया है।

ओघसंज्ञा के संदर्भ में इसका अर्थ विभागात्मक ज्ञान (**इन्द्रियज्ञान और मानसज्ञान**) किया जा सकता है।

शीलांकसूरि ने आचारांग वृत्ति में लोकसंज्ञा का अर्थ लौकिक मान्यता किया है। किन्तु वह मूलस्पर्शी अर्थ प्रतीत नहीं होता। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी मनोवैज्ञानिक विवेचना की है। वे लिखते हैं – प्रस्तुत प्रसंग में कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्य भी ज्ञातव्य है। मनोविज्ञान ने मानसिक प्रतिक्रियाओं के दो रूप माने हैं – भाव और संवेग। भाव सरल और प्राथमिक मानसिक प्रतिक्रिया है। संवेग जटिल प्रतिक्रिया है। भय, क्रोध, प्रेम, उल्लास, हास, ईर्ष्या आदि को संवेग कहा जाता है। उसकी उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में होती है और वह शारीरिक और मानसिक यंत्र को प्रभावित करता है।

संवेग के कारण बाह्य और आन्तरिक परिवर्तन होते हैं।

बाह्य परिवर्तनों में ये तीन मुख्य हैं –

1. मुखाकृति अभिव्यंजन (Facial expression)
2. स्वराभिव्यंजन (Vocal expression)
3. शारीरिक स्थिति (Bodily posture)

आन्तरिक परिवर्तन

1. श्वास की गति में परिवर्तन (Changes in respiration)
2. हृदय की गति में परिवर्तन (Changes in heart beat)
3. रक्तचाप में परिवर्तन (Changes in blood pressure)
4. पाचन क्रिया में परिवर्तन (Changes in gastro intestinal or digestive function)
5. रक्त में रसायनिक परिवर्तन (Chemical Changes in blood)
6. मानस-तरंगों में परिवर्तन (Changes in Brain waves)
7. ग्रन्थियों की क्रियाओं में परिवर्तन (Changes in the activities of the glands)

मनोविज्ञान के अनुसार संवेग का उद्गम स्थान हाइपोथेलेमस (Hypothalamus) माना जाता है। यह मस्तिष्क के मध्य भाग में होता है। यही संवेग का संचालन और नियन्त्रण करता है। यदि इसको काट दिया जाए तो सारे संवेग नष्ट हो जाते हैं।

भाव रागात्मक होता है। उसके दो प्रकार हैं — सुखद और दुःखद। उसकी उत्पत्ति के लिए बाह्य उत्तेजना आवश्यक नहीं होती। आचार्य महाप्रज्ञ ने ओघ और लोक संज्ञाओं का विज्ञान और मनोविज्ञान की दृष्टि में नया दृष्टिकोण दिया है।

7. व्यावहारिक परमाणु

अनुयोगद्वारा आगम में परमाणु दो प्रकार के बतलाए हैं। सूक्ष्म और व्यावहारिक। सूक्ष्म परमाणुओं के समुदाय से व्यावहारिक परमाणु बनता है। निश्चय नय की अपेक्षा से वह अनन्त प्रदेशी स्कन्ध हैं। प्रायः यह माना जाता रहा है कि विज्ञान सम्मत परमाणु व्यावहारिक परमाणु के समतुल्य होना चाहिए क्योंकि सूक्ष्म परमाणु विभाजित नहीं होता। प्रश्न यह बना हुआ है कि व्यावहारिक परमाणु यद्यपि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध रूप है फिर भी इतना बड़ा नहीं है कि उसका विभाजन किसी बाह्य शस्त्र से किया जा सके इस प्रकार व्यावहारिक परमाणु की विज्ञान सम्मत परमाणु से समतुल्यता स्थापित नहीं होती।

इसकी मीमांसा करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने स्थापना की है कि "व्यावहारिक परमाणु शस्त्र से नहीं टूटता है। लेकिन" आगम साहित्य में असिधारा से परमाणु छिन्न-भिन्न नहीं होता, यह कहा गया है। असि की धारा बहुत स्थूल होती है इसलिए उससे परमाणु का विभाजन नहीं होता, यह सही है। आधुनिक विज्ञान ने बहुत सूक्ष्म उपकरण विकसित किए हैं। उनसे व्यावहारिक परमाणु के विभाजन की संभावना की जा सकती है।

विज्ञान के क्षेत्र में परमाणु अब पदार्थ का सूक्ष्मतम कण नहीं रहा है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और बाद में न्यूट्रॉन भी परमाणु परिवार के अंश माने गए। पिछले कुछ वर्षों से क्वार्क की खोज ने, परमाणु के सूक्ष्मतम होने पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। जैन दर्शन सम्मत परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म है इसलिए व्यावहारिक परमाणु की तुलना विज्ञान सम्मत परमाणु से की जा सकती है।

8. तेषं कालेणं, तेषं समएणं

जैन आगम भगवती सूत्र में, किसी भी घटना या स्थान का वर्णन करते समय प्रायः काल और समय का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है।

‘तेषं कालेणं तेषं समएणं’

अर्थात् उस काल और उस समय में।

सामान्यतया काल और समय को एकार्थक ही कहा जाता है। यह जिज्ञासा सदैव बनी रही कि इन दो शब्दों का उल्लेख क्यों हुआ है? काल को प्रलम्ब कालखण्ड का और समय को निश्चित कालावधि का सूचक माना प्रतीत होता है।

सूत्र के वृत्तिकार के अनुसार ‘काल’ पद के द्वारा वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थ विभाग (चौथा आरा) का बोध होता है और ‘समय’ पद के द्वारा उस कालखण्ड का बोध होता है जिसमें भगवानः महावीर ने प्रवचन किया था।

काल और समय के साथ-साथ देश (स्थान) का भी निर्देश निम्न प्रकार से हुआ है।

- (i) तेषं कालेणं तेषं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था।
उस काल और उस समय में राजगृही नामक नगर था।
- (ii) तेषं कालेणं तेषं समएणं तुंगिया नामं नयरी होत्था।
उस काल और उस समय में तुंगिया नामक नगरी थी।

इस संबंध में यह प्रश्न बना रहा कि देश और काल को किसी वर्णन से पूर्व लिखना, कोई लेखन शैली थी या कोई सैद्धांतिक आवश्यकता थी? आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी तुलना वर्तमान विज्ञान की देश-काल की धारणा से की है। वे लिखते हैं कि आइंस्टीन के सापेक्षवाद के अनुसार देश और काल से निरपेक्ष किसी वस्तु या घटना को समझना संभव नहीं है। जर्मन दार्शनिक इम्मेन्युअल कांट ने भी देश और काल को बहुत महत्त्व दिया है। आचार्य सिद्धसेन ने भी अर्थ बोध के लिए काल और क्षेत्र को अनिवार्य माना है।

काल की अवधारणा

विज्ञान जगत में काल की अवधारणा रेखाकार है। उसमें सदा आगे की ओर ही गति होती है। काल की दूसरी अवधारणा वृत्तलाकार है। उसमें गति आगे भी होती है और पीछे भी होती है। जैसे मरने के बाद पुनः जन्म होना, काल की पीछे की ओर गति है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त काल की

वृत्तुलाकार गति वाले सिद्धान्त पर आधृत है। जैन अवधारणा में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के रूप में काल-चक्र को मान्य किया है। इस सिद्धान्त में काल लौटता है और काल के साथ जुड़ी घटनाओं की भी पुनरावृत्ति होती है। इस संसार में नया जैसा कुछ भी नहीं है — ऐसा कुछ भी नहीं है जो पहले न हो चुका हो।

आचार्य महाप्रज्ञ ने काल की वर्तुलीय धारणा को स्पष्ट कर, एक नया आयाम प्रस्तुत किया है जो बहुत उपयोगी है। भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर हाकिंग भी इस प्रकार की कल्पना से दूर नहीं है। वे लिखते हैं कि काल आकाश में आगे की दिशा में गति करता है अतः उसके लौटने की संभावना नहीं रहती लेकिन अगर काल किन्हीं परिस्थितियों में दिशा के बंधन से मुक्त हो जाए तो काल पीछे की ओर भी गति कर सकता है। इससे यह संभावना बनती है कि काल अतीत में भी लौट सकता है।

यद्यपि जैन दर्शन में आकाश और काल को अलग-अलग मौलिक द्रव्य माना है किन्तु घटना के वर्णन में देश और काल का साथ-साथ ही वर्णन किया है।

9. विद्युत् : सचित्त या अचित्त ?

आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन आगमों के अनेक विषयों को अपनी प्रज्ञा से स्पष्ट किया है उनमें विद्युत् सचित्त है या अचित्त सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। इसका मूल कारण यह है कि विद्युत् की अवधारणा वर्तमान विज्ञान की देन है और तेजकाय का जैन आगमिक विषय कई हजार वर्ष प्राचीन है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आगमिक और वैज्ञानिक अनुसंधान वृत्ति से विद्युत् को अचित्त निर्जीव सिद्ध किया है। पाठकों के लिए यह विषय अत्यन्त रुचिकर रहेगा क्योंकि अनेक जैन मुनि विद्युत् को सचित्त मानकर विद्युतीय यंत्रों से परहेज करते हैं। अतः आचार्य महाप्रज्ञ का लेख उन्हीं के शब्दों में प्रेषित है।

भगवान महावीर का भारतीय दर्शन को एक मौलिक अवदान है। षड्जीवनिकाय का सिद्धान्त। जीवों के छह निकाय हैं — पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजसकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। इनमें पहले पांच स्थावरकाय (गतिहीन) हैं। त्रसकाय गतिशील हैं। स्थानांगसूत्र में बतलाया गया है — पांच स्थावरकाय परिणत और अपरिणत — दोनों प्रकार के होते हैं, सचित्त और अचित्त — दोनों प्रकार के होते हैं। पृथ्वी सचित्त-सजीव भी होती है, अचित्त-निर्जीव भी होती है। जल सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार का होता है। पानी

बरसता है, वह सारा सचित्त है, ऐसा भी नहीं है। वह अचित्त भी हो सकता है, पर हमें पता नहीं लगता। अग्नि और वायुकाय भी सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार के होते हैं।

एक नियम है — शस्त्र परिणत होने पर सचित्त अचित्त बन जाता है। सजीव, निर्जीव बन जाता है। इस प्रारम्भिक आगमिक वर्णन को आधार बनाकर वे आगे लिखते हैं कि हमें विद्युत् के प्रश्न पर विचार करना है। विद्युत् सचित्त है या अचित्त?

आज बिजली का प्रयोग बहुत होता है। पूज्य गुरुदेव के शासनकाल में चिन्तन चला कि बिजली सजीव है या निर्जीव? पूज्य गुरुदेव बीदासर में विराज रहे थे। वहीं तीन दिनों तक हजारों व्यक्तियों के बीच चिन्तन चला, पक्ष-विपक्ष में बहुत से तर्क आए। आखिर निर्णय हुआ कि बिजली सजीव नहीं है। बिजली ऊर्जा है, जीव नहीं है, विद्युत् को निर्जीव किस आधार पर माना गया? आखिर आधार क्या है? आधार दोनों है। आगम का आधार है। उससे भी बिजली निर्जीव सिद्ध होती है। वर्तमान के विज्ञान का तो है ही। विज्ञान ने तो इसे एक रासायनिक क्रिया माना है। वैज्ञानिक अग्नि को भी जीव नहीं मानते तो भला बिजली का तो प्रश्न ही नहीं।

हम आगम के आधार पर विचार करें। तैजसकाय के पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त हैं। आठ वर्गणाओं में एक वर्गणा है तैजस वर्गणा। उसके पुद्गल पूरे लोक में व्याप्त हैं। अग्नि कैसे होती है और अग्नि कहाँ होती है? इस पर आगम में विचार किया गया। बतलाया गया कि सजीव अग्नि तिर्यक् लोक में ही हो सकती है। न ऊँचे लोक में अग्नि है, न नीचे लोक में है। वहाँ अग्नि नहीं, ऊर्जा है। उसे अग्नि कहते हैं पर वास्तव में सचित्त अग्नि नहीं है। सचित्त अग्नि केवल मनुष्य लोक में, तिरछे लोक में ही हो सकती है। कह सकते हैं कि नरक लोक में तो बहुत तेज अग्नि है। सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन आदि में वर्णन मिलता है कि नरक लोक में कोई नैरयिक जीव है, उसे निकाल कर यहां की अग्नि में डाल दिया जाए तो उसे लगेगा कि जैसे हिमालय में डाल दिया गया हो। इतनी भयंकर अग्नि का ताप है वहां पर वह निर्जीव है, सजीव नहीं है, क्योंकि तिरछे लोक से नीचे सजीव अग्नि होती नहीं है। इसीलिए सूत्रकृतांग में कहा गया — अगणी अकट्टो, बिना ईंधन की अग्नि, बिना काष्ठ की अग्नि। 'अग्नि' शब्द का प्रयोग तो किया गया है, पर वास्तव में अग्निकायिक जीव नहीं है। बिजली भी अग्निकायिक जीव नहीं है।

एक तेजोलेण्या सम्पन्न मुनि है, जिसे तेजोलब्धि प्राप्त है, वह कभी क्रोध में आकर उसका प्रयोग करता है, जैसे गोशालक ने महावीर पर किया था। भगवान महावीर यात्रा कर रहे थे। गोशालक उनके साथ था। एक संन्यासी पंचाग्नि ताप रहा था, उसने छेड़छाड़ की। क्रोध में आकर उसने तेजोलेण्या का प्रयोग कर दिया। शक्ति का प्रयोग किया, जलने की स्थिति आ गई। लगा कि भस्म हो जाएगा। उसी समय भगवान महावीर ने शीतल लेण्या का प्रयोग कर उसे शान्त कर दिया। तेजोलब्धि की शक्ति इतनी है कि अनेक प्राणियों को वह भस्म कर सकती है। एक अणुबम से भी अधिक शक्तिशाली तेजोलब्धि का प्रयोग है। किन्तु वह सारा पुद्गल है, अजीव है, निर्जीव है। अब उसे अग्नि कह दें या आज की भाषा में विद्युत्। वह सजीव नहीं है।

बिजली अग्नि नहीं है, इसका एक कारण तो यह है कि वह बिना वायु के जलती है। भगवती सूत्र में कहा गया है — 'न विना वायुकाएण अग्नी पज्जलई।' वायु के बिना अग्नि जलती नहीं है। अग्नि को हमेशा ऑक्सीजन चाहिए। वायु नहीं मिलेगी, अग्नि नहीं जलेगी। ऊर्जा होगी, किन्तु अग्नि नहीं जलेगी। जहां बिजली का प्रसंग है, वहाँ वैक्यूम करना होता है। वायु का निष्कासन जरूरी है वहां। वहां आक्सीजन का सुयोग मिल जाए तो यह आग का रूप ले सकती है। किन्तु जहाँ ऊर्जा है वहाँ अग्नि नहीं है। सूर्य का ताप कितना भयंकर होता है। आज तो सौर ऊर्जा का प्रयोग भी होने लगा है। चूल्हा भी जलता है, रसोई भी बनती है और भी अनेक कार्य होते हैं पर वह सारी निर्जीव अग्नि है। वह सजीव अग्नि नहीं है। विद्युत् है, अग्नि नहीं है। सौर ऊर्जा या जो भी ऊर्जा है वह तैजस् परमाणु है यानी तैजस वर्गणा है, परमाणु है। इसलिए आगम में इन्हें अग्निसदृश द्रव्य कहा गया है, अग्नितुल्य द्रव्य। अग्नि जैसा द्रव्य है, इसलिए इसका नाम अग्नि रखा गया है।

जयाचार्य ने भगवती की व्याख्या में कहा — अग्निद्रव्य सरिस — अग्नि जैसा द्रव्य। यह अग्निकायिक जीव नहीं है। विद्युत् एक ऊर्जा का प्रवाह है। यह सारा निर्णय हो गया। इस निर्णय के आधार पर फिर गुरुदेव ने यह घोषणा भी कर दी कि बिजली हमारी दृष्टि में अचित्त है, निर्जीव है। शास्त्रार्थ के अनेक आधारों पर यह सिद्ध हो गया कि अग्नि जीव नहीं, मात्र ऊर्जा है। तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं, इसलिए निर्जीव है। यह हमारी मान्यता है।

जैनों में भी कुछ लोग इसे सजीव मानते हैं। यह तो अपना-अपना विचार है। अगर कोई खोज न करे तो परम्परा से जो चल रहा है, वह माना जाता

है। हमने तो चिन्तन किया, खोज की, अनुसंधान किया, प्रमाण ढूंढे और आगम के इतने प्रमाण उपलब्ध किए, जिनके आधार पर यह स्थापना करने में हमें कोई संकोच नहीं हुआ। यह कोई संशय में नहीं किया गया कि अग्नि अचित्त है या नहीं? अनुसंधान के आधार पर अच्छी तरह निश्चित हो गया कि यह मात्र पुद्गल है, ऊर्जा है, एक शक्ति है, अग्निकायिक जीव नहीं है। अब अपनी-अपनी परम्परा होती है। कुछ लोग ध्यान नहीं देते तो क्या कहा जाए? हाथ में घड़ी बंधी है तो कहते हैं कि सजीव है। घड़ी में बैट्री है क्या? ऊर्जा का एक स्पन्दन ही तो है। जुगनू चमकता है तो आग जैसा लगता है, किन्तु वह आग तो नहीं है। औरों की बात छोड़ दें, हमारे शरीर में भी पौद्गलिक अग्नि है। आयुर्वेद को जानने वाला जठराग्नि को जानता है। भोजन करते हैं, वह किससे पचता है? जठराग्नि से पचता है। हमारे जठर यानी पेट की जो अग्नि है, उससे हमारा भोजन पचता है। जब कोई बीमार होता है तो वैद्य उसकी परीक्षा कर कभी-कभी कहते हैं — इसकी अग्नि मंद हो गई है खाया हुआ पच नहीं रहा है। अग्नि जब तक ठीक रहे, भोजन का ठीक पाचन होता है, वह मंद हो जाए तो भोजन का पाचन नहीं हो पाता। हमारे शरीर में भी अग्नि है, विद्युत् है। शरीरशास्त्र की दृष्टि से देखें तो हर कोशिका का अपना पावर हाऊस हैं। अरबों कोशिकाएँ है और हर कोशिका का अपना पावर हाऊस है। इतनी अग्नि भरी पड़ी है शरीर के भीतर। यह बड़ी अद्भुत बात है कि शरीर की अग्नि कभी लीक नहीं होती। यदि हो जाए तो पूरे शरीर में जलन हो जाती है। शरीर अंगारा जैसा हो जाता है। ऐसे कई केस (Case) प्रेक्षाध्यान शिविरों में आए कि शरीर पूरा जलने लग गया।

हमारे शरीर में भी अग्नि है। यह सब तैजस वर्गणा के परमाणु हैं, पुद्गल है। अब प्रश्न है कि चाहे माइक हो, चाहे घड़ी हो, हम उसे सचित नहीं मान सकते। आगम के आधार पर उसे सजीव नहीं सिद्ध किया जा सकता। इसलिए पूरी स्पष्टता रहे। बहुत से भाई आते हैं और कहते हैं कि घड़ी बँधी हुई है, संघटा करें या न करें? घड़ी हाथ में बँधी हुई है, आहार-पानी बहराएँ या न बहराएँ? नहीं बहराओ तो आपकी इच्छा। हमें कोई आपत्ति नहीं है। वंदना करने में स्पर्श करो या नहीं, आपकी इच्छा। हमें कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं है, क्योंकि उसे हम सजीव नहीं, मात्र ऊर्जा मानते हैं।

अभी-अभी एक प्रश्न आया कि विद्युत् सचित नहीं है तो क्या एक साधु स्विच को चालू कर सकता है या बन्द कर सकता है? यह व्यवहार की

बात है। प्रयोग करना या न करना, यह हमारे व्यवहार की बात है। हम कितना प्रयोग करें, कितना न करें? इस सन्दर्भ में अभी नहीं कह सकते। वर्जित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विद्युत् को हम सचित्त मानते हैं। पर प्रयोग करने में विवेक से काम लेते हैं कि कितना व्यर्थ का काम होता है, कितना सार्थक काम होता है। दो बातें हो गईं — सिद्धान्त और व्यवहार। व्यवहार में कितना काम में लेना, यह अलग बात है। व्यवहार में बहुत सारी बातें वर्जित भी होती है। यह खाना, यह नहीं खाना। ऐसे में सिद्धान्त को प्रयोग में लाएं तो बड़ी विचित्र बात हो जाती है। सिद्धान्ततः विहित है, पर व्यवहार में बहुत सारी वर्जित हैं, क्योंकि स्विच को ऑन और ऑफ करने में बहुत सारी समस्याएँ पैदा हो जाती है। इसलिए अभी व्यवहार में इसे नहीं लेते। किन्तु सिद्धान्ततः यही बात मान्य है कि विद्युत् सचित्त नहीं है।

विषय को आगमिक प्रमाणों से पुष्ट करते हुए लिखा है कि वर्तमान युग बिजली का युग है। इस विषय में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं —

1. बिजली अग्नि है या नहीं?
2. बिजली सचित्त है या अचित्त?

इस विषय पर विभज्यवादी शैली से विचार करना आवश्यक है। अग्नि के मुख्य धर्म पांच हैं — 1. ज्वलनशीलता, 2. दाहकता, 3. ताप, 4. प्रकाश, 5. पाक शक्ति। नरक में जो अग्नि है

- (i) वह ज्वलनशील भी है (सूयगड़ो 1/5/11)
- (ii) वह दाहक भी है (सूयगड़ो 1/5/12)।
- (iii) उसमें ताप भी है (सूयगड़ो 1/5/13)
- (iv) प्रकाश भी है (सूयगड़ो 1/5/14)
- (v) पाक शक्ति भी है (सूयगड़ो 1/5/15)।

फिर भी वह निर्जीव है, अचित्त है। सजीव अग्निकाय सिर्फ मनुष्य क्षेत्र में होता है। मनुष्य क्षेत्र से बाहर सजीव अग्नि नहीं होती। उसे सूत्रकृतांग सूत्र में अकाष्ठ अग्नि-ईधन के बिना होने वाली अग्नि बताया गया है। (सूयगड़ो 1/5/38)

मनुष्य लोक में भी अचित्त अग्नि होती है। उसका उदाहरण है तेजोलेश्या। भगवती के एक प्रसंग से यह विषय स्पष्ट होता है —

- भंते! क्या अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्योतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

— हां, करते हैं?

— भंते! वे कौनसे अचित्त पुद्गल वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्योतित करते हैं? प्रभासित करते हैं?

कालोदायी! क्रुद्ध अनगार ने तेजोलेश्या का निसर्जन किया। वह दूर जाकर दूर देश में गिरती है, पार्श्व में जाकर, पार्श्व देश में गिरती है। वह जहां-जहां गिरती है, वहां-वहां उसके अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं। कालोदायी! इस प्रकार वे अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं। (भगवई 7/229-230)

कुछ विचारक कहते हैं — इसमें विद्युत् का नाम नहीं है। प्रश्न नाम होने का नहीं है। मूल प्रतिपाद्य यह है — अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं, तप्त करते हैं। उस स्थिति में यह व्याप्ति नहीं बनती की जिसमें दाहकता है, प्रकाश है, ताप है, वह सचित्त ही होता है।

नरक में होने वाली अग्नि, तेजोलेश्या के प्रयोग के समय निकलने वाली ज्वाला जैसे अचित्त अथवा निर्जीव अग्नि है वैसे ही विद्युत् भी अचित्त और निर्जीव अग्नि है, यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है। वास्तव में अचित्त अग्नि तैजस ऊर्जा है, तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं। षड्जीवनिकाय में आने वाला सजीव अग्निकाय नहीं है।

भगवती वृत्ति में तेजोलेश्या को अग्निसूदश द्रव्य कहा गया है।

(भ.वृ. पत्र 642. तदग्नि सदृशद्रव्यान्तराऽपेक्षयावसेयं संभवन्ति तथाविध शक्तिमन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति।)

विद्युत् अग्नि है या नहीं — इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें भगवती के उस नियम को भी ध्यान रखना चाहिए — वायुकाय के बिना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं होता।

न विणा वाऊकाएण अगणिकाए उज्जलति (भगवई 16/5)

निष्कर्ष

उक्त विवरण का निष्कर्ष यह है — विद्युत् ऊर्जा है। इसे काष्ठविहीन अग्नि भी कहा जा सकता है। जैसे तेजोलेश्या के प्रयोग के समय तेजोलब्धि संपन्न व्यक्ति के मुख से निकलने वाली ज्वाला को अग्नि कहा जा सकता है, वैसे ही विद्युत् को अग्नि कहा जा सकता है।

जैसे नरक में होने वाली ऊर्जा को अग्नि कहा गया है, वैसे ही विद्युत् की ऊर्जा को अग्नि कहा जा सकता है। जैसे तेजोलेश्या के तैजस परमाणुओं से उत्पन्न ऊर्जा अचित्त है और जैसे नरक में होने वाले तैजस परमाणुओं की ऊर्जा अचित्त है, वैसे ही विद्युत् की तैजस परमाणुओं से उत्पन्न ऊर्जा अचित्त है।

विद्युत् सचित्त है या अचित्त? यह कोई हमारे आग्रह का विषय नहीं है। विद्युत् का प्रयोग व्यावहारिक है या अव्यावहारिक? इस प्रश्न पर चिन्तन करना हमारे अधिकार का विषय नहीं है। सब अपनी परम्परा को मानने और इसके अनुसार व्यवहार करने में स्वतंत्र है। हमारा प्रतिपाद्य इतना ही है कि व्यवहार और अव्यवहार की समस्या के आधार पर यथार्थ को नहीं बदला जा सकता।

यद्यपि प्रस्तुत लेख में आगम के साक्ष्य उद्धृत किए गए हैं, फिर भी संलग्न रूप में आगम, घूर्णि और वृत्ति के कुछ उद्धरण करना अपेक्षित मानता हूँ।

बादर तैजसकाय मनुष्य क्षेत्र से बाहर नहीं -

कहं णं भंते ! बादरतेऽकाइयाणं पज्जतगाणं ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! सट्ठाणेणं अंतोमणुस्सखेत्ते अट्ठाइज्जेसु दीव-समुद्देशु निव्वाघाएणं पण्णरससु कम्मभूमिसु, वाघायं पड्ढुच्च पंचसु महाविदेहेसु, एत्थ णं बादरतेऽक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स, असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जभागे। (पण्णवण्णा 2/7)

- भंते!पर्याय बादर तैजसकायिक जीवों के स्थान कहाँ प्रज्ञप्त हैं?
- गौतम!स्वस्थान की अपेक्षा बादर तैजसकायिक जीवों का क्षेत्र मनुष्य क्षेत्र से कुछ न्यून है। निर्व्याघात स्थिति में अट्ठाई द्वीप समुद्रों और पन्द्रह कर्म भूमियों में है। व्याघात स्थिति में वे पांच महाविदेह क्षेत्रों में है। पर्याप्त बादर तैजसकायिक जीवों का यह अन्तः क्षेत्र प्रज्ञप्त है।

उपपात की अपेक्षा बादर तैजसकायिक जीव लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से तैजसकायिक जीव लोक के असंख्यातवें भाग में, स्वस्थान की अपेक्षा बादर तैजसकायिक जीव लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।

अचित्त पुद्गल : प्रकाश और ताप

अत्थिं णं भंते!अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति? पभासैंति? हंता अत्थि ।

कयरे णं भंते!ते अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति? पभासैंति?

कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेय-लेस्सा निसद्धा समाणी दूरं गता दूरं निपतति, देसं गता देसं निपतति, जहिं जहिं च णं सा निपतति तहिं-तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासैंति । एतेणं कालोदाई!

ते अचित्त वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासैंति ।

(भगवई 7/229, 230)

— भंते! क्या अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्योतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

— कालोदायी! क्रुद्ध अनगार ने तेजोलेश्या का निसर्जन किया, वह दूर जाकर दूर देश में गिरती है, पार्श्व में जाकर पार्श्व देश में गिरती है। वह जहां-जहां गिरती है, वहां-वहां उसके अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभावित करते हैं। कलोदायी! इस प्रकार वे अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभावित करते हैं।

अग्नि नहीं, अग्नि सदृश द्रव्य

तत्थ णं जे से विग्गहगति समावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झमज्झेणं वीइवएज्जा । (भगवई 14/54, 55)

नारकक्षेत्रे बादरागिनकायस्याभावात्, मनुष्यक्षेत्रे एवं तदभावत्, यच्चोत्तराध्ययनादिषु श्रूयतेहुयासणे जलतंभि दड्ढुपुव्वो अणेगसो । इत्यादि तदग्नि सदृशव्यान्तरापेक्षयावसेयं, संभवन्ति च तथाविधशक्तिमन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति । (भगवई टीका 14/54,55)

वायु के बिना अग्नि नहीं जलती

न विणा वाऊयाएणं अगणिकाय उज्जलित । (भगवई 17/5)

अचित्त अग्नि

इंगालरासिं जलियं सजोइं, तओवमं भूमिमणुक्कमंता ।
ते डज्जमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्थ चिरट्ठिईया ।

(सुयगडो 5/1/7)

वे जलती हुई ज्योति सहित अंगारराशि के समान भूमि पर चलते हैं। उसके ताप से जलते हुए वे चिल्ला चिल्लाकर करुण क्रन्दन करते हैं। वे चिरकाल तक उस नरक में रहे हैं।

इंगालसिं

जथा इंगालरासी जलितो धगधगेति एवं ते नरकाः स्वभावोष्णा एव ण पुण तत्थ बादरो अग्गी अत्थि, उसिणपरिणता पोग्गला जंतवाडचुल्लेओ वि उसिणतरा (सूत्रकृतांग चूर्णी, पृ. 128)

तत्र बादराग्नेरभावात्तदुपमां भूमिमित्युक्तम्, एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते, ते च नारका महानगरदाहाधिकेन तापेन दह्यमाना। (सूत्रकृतांग वृत्ति, पृ. 129)

विधूमो नामाग्निरेव, विधूमग्रणाद्, निरिन्धनोडग्निः स्वयं प्रज्वलितः सेन्धनस्य ह्यग्नेरवश्यमेव धूमो भवति। (चूर्णि, पृ. 136)

वैक्रियकालभवा अग्नयः अघटिता पातालस्था अप्यनवस्था (चूर्णि, पृ. 137)

नरक में बादर अग्नि नहीं होती। वहां के कुछ स्थानों के पुद्गल स्वतः उष्ण होते हैं। वे भट्टी की आग से भी अधिक ताप वाले होते हैं। वे अचित्त अग्निकाय के पुद्गल हैं। हमारी अग्नि से उस अग्नि की तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि वहां अग्नि का ताप महानगरदाह की अग्नि से उत्पन्न ताप से बहुत तीव्र होता है।

पैतीसवें तथा अड़तीसवें श्लोक में भी बिना काठ की अग्नि का उल्लेख है। उसकी उत्पत्ति वैक्रिय से होती है। यह अचित्त अग्नि है।

कंसि च बंधित्तु गले सिलाओ, उदगंसि बोलेंति महालयसि ।

कंलबुयावालुयमुम्मुरे य, लोलेंति पच्चंति य तत्थ अण्णे ।। (सूयगो 5/1/10)

कुछ परमाधार्मिक देव किन्हीं के गले में शिला बांधकर उन्हें अथाह पानी में डुबो देते हैं। (वहां से निकालकर) तुषाग्नि की भांति (वैतरणी के) तीर की तपी हुई बालुका में उन्हें लोटपोट करते हैं और भूनते हैं।

असूरियं णाम महाभितावं, अंधं तमं दुष्पतरं महंतं ।
उद्धं अहे यं तिरियं दिसासु, समाहिओ जत्थगणी झियाई ॥

(सूगडो 5/1/11)

असूर्य नाम का महान संतापकारी एक नरकावास है। वहां घोर अन्धकार है। जिसका पार पाना कठिन हो, इतना विशाल है। वहां ऊंची, नीची और तिरछी दिशाओं में निरंतर आग जलती है।

अगणी-आग

तत्थ कालोभासी अचेयणो अगणिककायो । (चूर्णि, पृ. 129)

चूर्णिकार ने इसका अर्थ काली आभा वाला अग्निकाय किया है। वह अचेतन होता है। जंसी गुहाए जलणेऽतिवट्टे, अविजाणओं डज्जइ लत्तुपण्णो ।

सया य कलुणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइदुक्खधम्मं ॥

(सूयगडो 5/1/12)

उसकी गुफा में नारकीय जीव ढकेला जाता है। वह प्रज्ञाशून्य नैरयिक निर्गमद्वार को नहीं जानता हुआ उस अग्नि में जलने लग जाता है। नैरयिकों के रहने का वह स्थान सदा तापमय और करुणा उत्पन्न करने वाला है। वह कर्म के द्वारा प्राप्त और अत्यन्त दुःखमय है।

घत्तारि अगणीओ समाग्भेत्ता, जहि कूरकम्मा भितवेत्त बालं ।

ते तत्थ चिद्धंतऽभितप्पमाणा, मच्छा व जीवंतु व जोइपत्ता ॥

(सुयगडो 5/1/13)

क्रूरकर्मा नरकपाल नरकावास में चारों दिशाओं में अग्नि जलाकर इन अज्ञानी नारकों को तपाते हैं। वे ताप सहते हुए वहां पड़े रहते हैं, जैसे अग्नि के समीप ले जाई गई जीवित मछलियां।

अयं व तत्तं जलियं सजोइं, तओवमं भूमिमणुक्कमंता ।

ते डज्जमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥

(सुयगडो 5/2/4)

तप्त लोह की भांति जलती हुई अग्नि जैसी भूमि पर चलते हुए वे जलने पर करुण रुदन करते हैं, वे बाण से बीधे जाते हैं और तपे हुए जुए से जुते रहते हैं।

(1) तओवमं – अग्नि जैसी

सा तु भूमि.....न तु केवलमेवोष्णा । ज्वलितज्योतिषाऽपि अणंतगुणं हि उष्णा सा, तदस्या औपम्यं तदोपमा । (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 135)

एवां तदेवरूपां तदुपमां वा भूमिम्। (सूत्रकृतांग वृत्तिपत्र 135)

यह भूमि का विशेषण है। इसका संस्कृत रूप है 'तदुपमाम्' वह भूमि केवल उष्ण ही नहीं है किन्तु अग्नि से भी अन्नत गुण अधिक उष्ण है।

(2) ते डज्जमाणा - वे जलने पर

ते तं इंगालतुल्लं भूमिं पुणो पुणो खुंदाविज्जंति। (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 135)

नरकपाल धधकते अंगारे जैसी उष्ण भूमि पर नैरयिकों को जाने-आने के लिए विवश करते हैं।

समूसियं णाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति।

अहोसिरं कटटु विगत्तिऊणं, अयं व सत्थेहि समूसवेत्ति।। (सूयगडो 5/2/8)

वहां एक बहुत ऊंचा विधूम अग्नि का स्थान है, जिसमें जाकर वे नैरयिक शोक से तप्त होकर करुण रुदन करते हैं। नरकपाल उन्हें बकरे की भांति औंधे सिर कर, उनके सिर को काटते हैं और शूल पर लटका देते हैं।

विधूमठाणं

(1) विधूमो नागाग्निरेव, विधूमग्रहणाद् निरिन्धनोऽग्निः स्वयं प्रज्वलितः सेन्धनस्य ह्यग्नेरवश्यमेव धूमो भवति अथवा विधूमवद्, विधूमानां हि अग्दाराणामतीव तापो भवति। (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 136)

चूर्णिकार ने बताया है, जो अग्नि ईंधन से ही प्रज्वलित होती है, उससे धुआं अवश्य ही निकलता है। नरक की अग्नि निरिन्धन होती है।

सयाजलं ठाण णिहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकट्टो।

चिद्धंति तत्था बहुकूरकम्मा, अहस्सरा केइ चिरड्ढिईया। (5/2/11)

सदा जलने वाला एक महान् वधस्थान है। उसमें बिना काठ की आग जलती है। वहां बहुत क्रूर कर्म वाले नैरयिक जोर-जोर से चिल्लाते हुए लंबे समय तक रहते हैं।

जहा इहं अगणी उण्हो, एतोणंतगुणे तहिं।

नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए।। (उत्तरज्जयणाणि 19/47)

जैसे यहां अग्नि उष्ण है, इससे अनन्त गुना अधिक दुःखमय उष्ण-वेदना वहां नरक में मैंने सही है।

कंदतो कंदुकुंभीसु, उड्डपाओ अहोसिरो ।

हुयासणे जलंतम्मि, पुक्कपुब्बो अणंतसो ॥ (उत्तरज्झयाणि 7/57)

पकाने के पात्र में, जलती हुई अग्नि में पैरों को ऊंचा और सिर को नीचा कर आक्रन्दन करता हुआ मैं अनन्त बार पकाया गया हूँ।

हुयासणे

तत्र च बादराग्नेरभावात् पृथिव्या एव तथाविधः स्पर्श इति गम्यते ।
(बृहद्वृत्ति, पत्र 459)

अग्निकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं — सूक्ष्म और बादर। अग्नि के बादर जीव नरक में नहीं होते। यहां जो अग्नि का उल्लेख है, वह सजीव अग्नि के लिए नहीं किन्तु अग्नि जैसे तापवान् और प्रकाशवान् पुद्गलों के लिए हैं।

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए ।

कलंबर्वालुयाए य, दड्डुपुब्बो अणंतसो ॥ (उत्तरज्झयाणाणि 19/50)

महा दवाग्नि तथा मरु-देश और वज्र — बालुका जैसी कदम्ब नदी के बालु में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ।

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो वि व ।

दड्डो पक्को व अवसो, पावकम्महि पाविओ ॥ (उत्तरज्झयाणाणि 19/57)

पाप कर्मों से घिरा और परवश हुआ मैं भैसे की भांति अग्नि की जलती हुई चिताओं में जलाया और पकाया गया हूँ।

इंदभूती नाम अणगारे गोयमसगोत्ते.....संखित्तविउलतेयलेसे..... ।

(भगवती 1/9)

संक्षिप्ता-शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतां गता, विपुला-विस्तीर्णा अनेकायोजनप्रमाणक्षेत्रा — श्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात्तेजोलेश्या-विशिष्टतपोजन्यलब्धि विशेषप्रभवता तेजोज्वाला यस्य स तथा । (भ. वृ. 1/9)

वृत्तिकार ने तेजोलेश्या का अर्थ तेजो-ज्वाला किया है। यहां तेजोलेश्या का प्रयोग एक ऋद्धि (लब्धि या योगज विभूति) के अर्थ में हुआ है।

स्थानांग सूत्र के अनुसार यह ऋद्धि तीन कारणों से उपलब्ध होती है। इसकी तुलना हठयोग की कुण्डलिनी से की जा सकती है। कुण्डलिनी की दो अवस्थाएं होती हैं — सुप्त और जागृत। तेजोलेश्या की भी दो अवस्थाएं होती हैं — संक्षिप्त और विपुल। इसके द्वारा हजारों किलोमीटर में अवस्थित

वस्तु को भस्म किया जा सकता है। इसी प्रकार बहुत दूर तक अनुग्रह भी किया जा सकता है। इसके द्वारा अनुग्रह और निग्रह दोनों किये जा सकते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ का यह लेख "विद्युतः सचित है या अचित"। जैन आगमों के अनुसंधान कार्य पर आधारित हैं। आपकी अनुसंधान वृत्ति से ही इतने प्रमाणों से पुष्ट यह लेख प्रकाशित हुआ है। आपके ही शिष्य

मुनि महेन्द्र कुमार जी ने 'क्या विद्युत् सचित तेउकाय है?'

नामक पुस्तक में इस विषय को विस्तार से प्रेषित किया है इसमें विज्ञान सम्मत अनेक उदाहरण दिये हैं। सभी पाठक गण के लिए इसका अध्ययन उपयोगी हैं।

10. अस्वाध्याय

जैन परम्परा में अस्वाध्यायिक वातावरण में स्वाध्याय (आगम-अध्ययन) करने का निषेध है। इसे ज्ञान का अतिचार कहा है। इस निषेध के पीछे अनेक कारण रहे हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार, शुभ-अशुभ मानने की प्रवृत्ति प्रायः सभी देशों में है। इनका उल्लेख करते हुए लिखा है कि प्रकृति में अनेक प्रकार की विचित्र घटनाएँ घटित होती हैं। इन घटनाओं की अद्भुतता तथा ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रों में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तनों को शुभ-अशुभ मानने की प्रवृत्ति समूचे संसार में रही है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वृष्टियों, आकाशगत अनेक दृश्यों एवं बिजली से सम्बन्धित घटनाओं से ही शुभ-अशुभ की कल्पनाएँ होती हैं।

ग्रीस तथा रोम में भूकम्प, रक्तवर्षा, पाषाणवर्षा तथा दुग्धवर्षा को अत्यन्त अशुभ माना गया है।

जापान में भूकम्प, बाढ़ तथा आंधी को युद्ध का सूचक माना जाता रहा है।

बेबीलोन में वर्ष के प्रथम मास में नगर पर धूलि का गिरना तथा भूकम्प अशुभ माने जाते हैं।

ईरान में मेघ गर्जन, बिजली की चमक तथा धूलि मेघों को अशुभ माना जाता है।

दक्षिण पूर्वी अफ्रीका में अनावृष्टि, करकावृष्टि को अशुभ का द्योतक माना जाता रहा है।

इंगलैण्ड के देहातों में कड़क के साथ बिजली का चमकना ग्राम के प्रमुख व्यक्ति की मृत्यु का सूचक माना जाता है। अफ्रीका और पोलैण्ड तथा रोम एवं चीन में उल्कादर्शन को अशुभ माना जाता है।

इस्लाम धर्म में उल्का को भूत-पिशाच तथा दैत्य के रूप में माना गया है।

अथर्ववेदसंहिता में भूकम्प, भूमि का फटना, उल्का, धूमकेतू, सूर्यग्रहण आदि को अशुभ माना है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में धूलि, मांस, अस्थि एवं रुधिर की वर्षा, आकाश में गन्धर्व-नगरों का दर्शन अशुभ के द्योतक माने गए हैं।

वाल्मीकी रामायण में रुधिरवृष्टि को अत्यन्त अशुभ माना गया है।

इसी प्रकार उत्तरवर्ती संस्कृत काव्यों में भूप्रकम्पन, उल्कापात, रुधिरवृष्टि, करकवृष्टि, दिग्दाह, महावात, वज्रपात, धूलिवर्षा आदि-आदि को अशुभ माना गया है।

लगता है, इन लौकिक मान्यताओं के आधार पर जैन आगम साहित्य में अस्वाध्यायिक की मान्यता का प्रचलन हुआ है।

जैन परम्परा में अस्वाध्यायिक वातावरण में स्वाध्याय न करने के कारण दिए गए हैं। वे कारण निम्न हैं (1) श्रुत ज्ञान की अभक्ति (2) लोक विरुद्ध व्यवहार (3) प्रमत्त चलना (4) विद्या साधन का वैगुण्य (5) श्रुतज्ञान के आचार की विराधना (6) अहिंसा (7) उददार (8) अप्राति।

उपर्युक्त कारणों से निम्न अवस्था में स्वाध्याय नहीं करनी चाहिए। (1) उल्कापात (2) दिग्दाह (3) गर्जन (4) विद्युत (5) निर्घात (6) यूपक (7) यक्षदिप्त (8) धूमिका (9) ओस (10) रजोघात। इसके अतिरिक्त भी चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण अथवा शरीर के रक्त, मल-मूत्र संग्रह के स्थान, श्मशान, राज-विग्रह, राज्य पतन आदि अनेक अस्वाध्याय के कारण दिए हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक धारणा में जिन्हें अशुभ माना गया है वहाँ स्वाध्याय का निषेध हुआ है।

11. कल्पवृक्ष

कल्पवृक्ष के संबंध में यह सामान्य या रूढ़ धारणा रही है कि कल्पवृक्ष मन-इच्छित वस्तुओं की संपूर्ति करते हैं। कल्पना करने मात्र से वे पदार्थ

प्रस्तुत हो जाते हैं। यह भी मान्यता रही है कि यौगलिक परम्परा के साथ-साथ ये कल्पवृक्ष भी लुप्त हो जाते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संबंध में नई व्यवस्था देते हुए लिखा है कि उपर्युक्त रूढ़ मान्यता का कोई आधार नहीं है। समवायांग और स्थानांग सूत्र में, यौगलिक युग में दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों का उल्लेख हुआ है। इस संबंध में वृत्तिकार अभयदेव सूरि ने इन वृक्षों को यौगलिकों की अल्प आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र माना है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है कि यौगलिक मनुष्य की आवश्यकताएं बहुत कम थीं और वह सब इन वृक्षों से सहजता से पूरी हो जाती थी। वृक्षों के वर्णन में बताया है कि मधुर और मनोज्ञ रस, मदिरा देने वाले, आवास आकार वाले वृक्ष आदि जीवन की सुविधाएं इन वृक्षों से प्राप्त हो जाती थीं। इसलिये इन्हें कल्पवृक्ष कह दिया। इन विभिन्न प्रकार के वृक्षों के भिन्न भिन्न प्रयोग होते थे परन्तु ऐसा नहीं था कि किसी कल्पवृक्ष के नीचे खड़े होकर सप्तभौम की कल्पना करने मात्र से सप्तभौम प्रासाद तैयार हो जाता अथवा खीर-पूरी की इच्छा करने मात्र से वह मिल जाती। ये सारी बातें उपचार से कह दी जाती है।

भारतीय सहित्य में इच्छापूर्ति के साधन स्वरूप तीन चीजें बहुचर्चित हैं — कामधेनु, चिन्तामणि और कल्पवृक्ष। कामना करने मात्र से, चिन्तन करने मात्र से और कल्पना करने मात्र से वस्तु की प्राप्ति हो जाना क्रमशः इन तीनों का कार्य माना जाता है। वास्तव में तीनों एक हैं और आवश्यकता पूर्ति के जो जो साधन हैं वे सब इनके वाचक बन जाते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ का यह विश्लेषण, कल्पवृक्ष में किसी दैवीय वृत्ति को स्वीकार नहीं करता जो चाहे जो वस्तु प्रदान कर दे। वृक्ष के व्यवहार को, वृक्ष के रूप में ही माना है। वृक्षों से अनेक प्रकार की वस्तुएं प्राप्त होती हैं, वे सीमित इच्छाओं वाले यौगलिकों की आवश्यकता पूरी कर देते हैं। इससे अधिक वृक्षों से किसी युग में चमत्कारिक प्रभाव की आशा नहीं की जा सकती।

12. आगमों का रचना काल

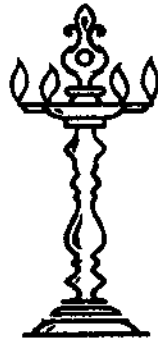
कुछ विदेशी विद्वानों का स्वर रहा है कि आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध भाषा और शैली की दृष्टि में सबसे प्राचीन है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आचारांग को योजना की दृष्टि से प्रथम माना है न कि रचना काल की दृष्टि से क्योंकि आगमों की रचना के पहले, पूर्वों की रचना हो चुकी थी। इस स्थापना के कारण उन सभी भ्रान्तिओं

का निराकरण हो गया जो विभिन्न विषयों के विभिन्न आगमों में होने के कारण हुई हैं। कोई विषय, किसी आगम में विस्तार से है तो कहीं सांकेतिक रूप से वर्णित हुआ है। आचार्य महाप्रज्ञ इस संदर्भ में मीमांसा करते हुए समवायांग और नन्दी सूत्र में उपलब्ध द्वादशांगी के विवरण से इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि—

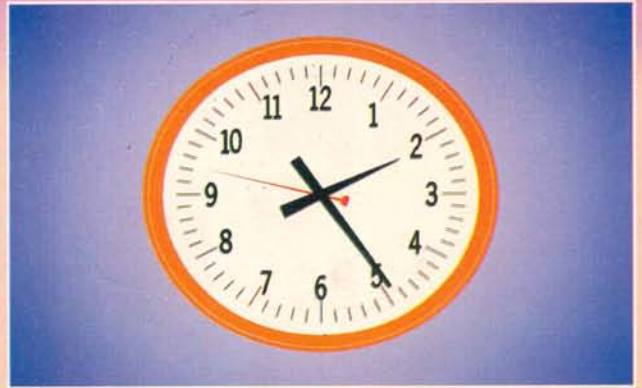
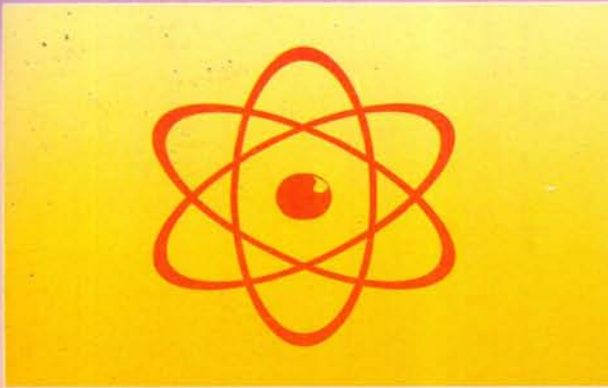
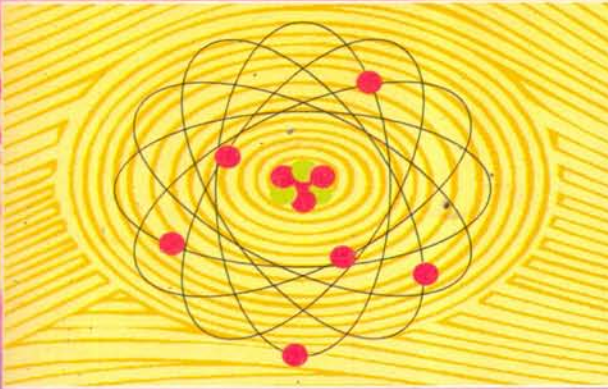
- (i) आचारांग में निर्ग्रथों के आचार-गोचर, विनय-वैनयिक शिक्षा-भाषा आदि आख्यात हैं।
- (ii) सूत्रकृतांग में लोक-अलोक, जीव-अजीव, स्वसमय-परसमय की सूत्र रूप में सूचना है।
- (iii) स्थानांग में स्वसमय-परसमय, जीव-अजीव, लोक-अलोक की स्थापना या प्रज्ञापना है।
- (iv) समवायांग में जीव-अजीव, लोक-अलोक, स्वसमय-परसमय की समस्थिति का निरूपण है अथवा संक्षिप्त विमर्श है।
- (v) व्याख्या प्रज्ञप्ति में जीव-अजीव, लोक-अलोक, स्वसमय-परसमय की व्याख्या है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि सभी आगमों में मौलिक तत्त्वों की चर्चा हुई है लेकिन वह कहीं प्रासंगिक मात्र है तो कहीं संक्षिप्त वर्णन है तो कहीं विस्तार दिया गया है अतः सभी के समन्वय से ही विषय का ज्ञान पूर्ण होता है। अतः परस्पर में एक आगम से दूसरे आगम के किसी विषय के वर्णन में अन्तर प्रकट करना अभीष्ट नहीं है। यह पूर्व में ही आचार्य महाप्रज्ञ ने स्पष्ट कर दिया था कि आगमों की रचना को ऐतिहासिक काल की दृष्टि से अलग-अलग अंकन करना सार्थक नहीं है क्योंकि रचनाएं योजनाबद्ध ढंग से हुई हैं।

□□□



द्रव्य मीमांसा



द्रव्य मीमांसा और दर्शन

परिणामी नित्यत्ववाद	82
लोकवाद	85
आकाश और दिशाएं	96
काल	102
पुद्गल	110
आत्म-तत्त्व	123
अनेकान्त का वैज्ञानिक पक्ष	133

द्रव्य मीमांसा और दर्शन

“आचार्य महाप्रज्ञ का रचना संसार”, पुस्तक के आत्म कथ्य में आचार्य महाप्रज्ञ ने उल्लेख किया है कि “वि. सं. 2000 से 2005 इन पाँच वर्षों में दर्शन के अनेक ग्रन्थों का मैं अध्ययन कर चुका था। छापार चातुर्मास में एक विकल्प उठा – मैं जैन दर्शन के विषय पर कोई ग्रन्थ लिखूँ। संकल्प जल्दी ही क्रियान्विति में बदल गया। मैंने जैन दर्शन पर एक ग्रन्थ लिखना शुरू किया। इस ग्रन्थ का नाम रखा गया – जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व। कुछ वर्षों बाद उसका नाम परिवर्तन किया गया। उसका परिवर्तित नाम है – जैन दर्शन मनन और मीमांसा। इसके लेखन में अनेकान्त दृष्टि का प्रयोग किया गया इसलिए इसमें विरोध का सूत्र नहीं खोजा जा सकता। समन्वय का सूत्र यत्र-तत्र-सर्वत्र खोजा जा सकता है। जैन दर्शन का समग्रता से अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ सर्वमान्य हो गया है।

आचार्य महाप्रज्ञ का दर्शन पर यह पहला ग्रन्थ है। उनकी साहित्य-साधना को समझने से पूर्व इस प्रथम ग्रन्थ के कुछ अध्याय अवलोकनीय हैं। बीसवीं सदी के आठवें दशक के इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें जैन दर्शन के तत्त्वों के विवेचन में, आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान के निष्कर्षों से तुलना व्यवस्थित रूप से की गई है। आवश्यकतानुसार विज्ञान की सहायता से नई व्याख्याएँ भी दी हैं। विज्ञान के साथ इस निकटता का यह प्रभाव हुआ कि आधुनिक विज्ञान में रुचि रखने वालों पाठकों का ध्यान जैन दर्शन की ओर आकर्षित हुआ। आचार्य महाप्रज्ञ की यह मौलिक घोषणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि ‘जगत को जानना भी बहुत जरूरी है। जगत को जाने बिना अपने आप को नहीं जाना जा सकता। जगत को क्यों जानें ? जगत के स्वभाव को जानें और जगत में हमारा स्थान क्या है, इसे भी जानें।’ इस संदर्भ में पाठकों के लिए जैन दर्शन मनन और मीमांसा पुस्तक में से कुछ महत्त्वपूर्ण विषय प्रस्तुत हैं। विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए कहीं कहीं वैज्ञानिक विवेचन विस्तार में किया गया है।

परिणामी नित्यत्ववाद

न सर्वथा नित्य, न सर्वथा अनित्य

परिणामी नित्यत्ववाद जैन दर्शन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके अनुसार कोई भी द्रव्य (वस्तु) न सर्वथा नित्य हैं और न सर्वथा अनित्य, किन्तु परिणामी-नित्य है। द्रव्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि वह उत्पाद, व्यय और धौव्य-युक्त है अर्थात् द्रव्य में परिणमन होता है — उत्पाद और व्यय होता है, फिर भी उसकी स्वरूप-हानि नहीं होती। परिणाम के बाद भी जो समानता, पूर्व और उत्तर परिणाम में रहती है — वह द्रव्यत्व है और जो असमानता प्रकट होती है, वह पर्याय है। इस रूप में द्रव्य न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। वस्तुदृष्ट्या संसार में जितने द्रव्य हैं, उतने ही थे और उतने ही रहेंगे। उनमें से न कोई घटता है और न कोई बढ़ता है।

परिभाषा

परिणामी नित्यत्ववाद को परिभाषित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने भगवती भाष्य में लिखा है कि द्रव्य का अस्तित्व समाप्त नहीं होता, इस अर्थ में वह नित्यवादी है। द्रव्य में परिणमन होता रहता है, इस अर्थ में वह परिणामवादी है। द्रव्य और परिणमन को पृथक नहीं किया जा सकता अतः उसे परिणामी नित्यत्ववाद का सिद्धान्त कहा है।

किंशरीरत्व

इस सिद्धान्त को समझाने के लिए 'किंशरीरत्व' का पाठ एक निदर्शन है। चावल वनस्पति-जीव का शरीर है। अग्नि पर पका लेने के पश्चात् वह अग्नि-जीव का शरीर हो जाता है। पूर्ण परिणाम में वह वनस्पति-जीव शरीर था, उत्तर परिणाम में वह अग्नि-जीव-शरीर हो गया। उत्तर परिणाम में पूर्व परिणाम नहीं रहता। परिणाम का फल है — भावान्तर हो जाना। लोहा पृथ्वी-जीव का शरीर है। हड्डी त्रस जीव का शरीर है। अग्निस्नात होने पर वे अग्नि-शरीर हो जाते हैं। उनकी दृष्टि में परिणामी नित्यत्ववाद की भांति, रसायन विज्ञान का 'द्रव्याक्षरत्ववाद' भी यही व्याख्या करता है कि द्रव्य सर्वथा कभी विनाश नहीं होता और न कभी सर्वथा नए द्रव्य की उत्पत्ति होती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने द्रव्याक्षरत्ववाद का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है।

द्रव्याक्षरत्ववाद

द्रव्याक्षरत्ववाद की स्थापना सन् 1789 में लीवाजिए (Lavoisier) नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने की थी। संक्षेप में इस सिद्धान्त का आशय यह है कि इस अनन्त विश्व में द्रव्य का परिणाम सदा समान रहता है, इसमें कोई न्यूनाधिकता नहीं होती। न किसी वर्तमान द्रव्य का सर्वथा नाश होता है और न किसी सर्वथा नए द्रव्य की उत्पत्ति होती है। साधारण दृष्टि से जिसे द्रव्य का नाश होना समझा जाता है, वह उसका रूपान्तरण में परिणमन मात्र है। उदाहरण के लिए कोयला जलकर राख हो जाता है, साधारणतः उसे नाश हो गया कहा जाता है। परन्तु वस्तुतः वह नष्ट नहीं होता, वायुमंडल के आक्सीजन अंश के साथ मिल कर कार्बोनिक एसिड गैस के रूप में परिवर्तित होता है।

इसी प्रकार जहाँ कहीं कोई नवीन वस्तु उत्पन्न होती प्रतीत होती है, वह भी वस्तुतः किसी पूर्ववर्ती वस्तु का रूपान्तर मात्र है। लोहे पर जंग का लगना कोई नया द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ अपितु धातु की ऊपरी सतह, जल और वायुमंडल के आक्सीजन के संयोग से लोहे के आक्सीहाइड्रेट के रूप में परिणत हो गई। भौतिकवाद पदार्थों के गुणात्मक अन्तर को परिमाणात्मक अन्तर में बदल देता है। शक्ति परिमाण में परिवर्तन नहीं, गुण की अपेक्षा परिवर्तनशील है। प्रकाश, तापमान, चुम्बकीय आकर्षण आदि का ह्रास नहीं होता, सिर्फ एक दूसरे में परिवर्तित होते हैं।

द्रव्य और शक्ति का परस्पर में रूपान्तरण

पर्याय परिवर्तन के द्वारा वस्तुओं में बहुत सारी बातें घटित होती हैं। इसमें ऊर्जा की वृद्धि और हानि भी है। ऊर्जा परिणमन के द्वारा ही प्रकट होती है। आइंस्टीन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि द्रव्य (matter) को शक्ति (energy) में और शक्ति को द्रव्य में बदला जा सकता है। इस द्रव्यमान, द्रव्य संहति और शक्ति के समीकरण के सिद्धान्त की व्याख्या परिणामी नित्यत्ववाद के द्वारा ही की जा सकती है। आइंस्टीन से पहले वैज्ञानिक जगत में यह माना जाता था कि द्रव्य को शक्ति में और शक्ति को द्रव्य में नहीं बदला जा सकता। दोनों स्वतन्त्र हैं। किन्तु आइंस्टीन के समय से यह सिद्धान्त बदल गया। यह माना जाने लगा कि द्रव्य और शक्ति ये दोनों भिन्न नहीं, किन्तु एक ही वस्तु के रूपान्तरण हैं। इस संबंध में आइंस्टीन का समीकरण उल्लेखनीय है।

$$E = mc^2$$

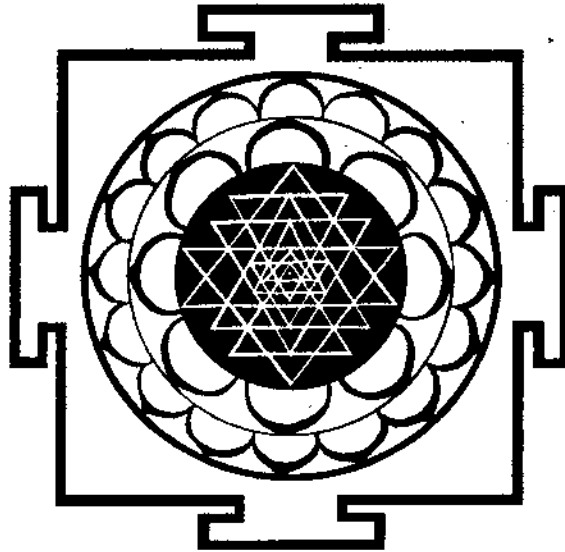
E = एनर्जी (Energy)

m = द्रव्यमान (mass)

c = प्रकाश की गति (Velocity of Light)

उपर्युक्त समीकरण के अनुसार अगर एक पौंड कोयला लें और उसकी द्रव्य संहति को शक्ति में बदलें तो दो अरब किलोवाट की विद्युत शक्ति प्राप्त हो सकती है।

जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य में अनन्त शक्ति है। वह द्रव्य चाहे जीव हो या पुद्गल। काल की अनन्त धारा में वही द्रव्य अपना अस्तित्व रख सकता है जिसमें अनन्त शक्ति होती है। वह शक्ति परिणमन के द्वारा प्रकट होती रहती है। आज के वैज्ञानिक जगत में जितने प्रयोग हो रहे हैं, उनका क्षेत्र पौद्गलिक है। पौद्गलिक वस्तु को उस स्थिति में ले जाया जा सकता है, जहाँ उसकी स्थूलता समाप्त हो जाए, उसका द्रव्यमान या द्रव्य-संहति समाप्त हो जाए और इसे शक्ति के रूप में बदल दिया जाए। जैन दर्शन ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयों से विश्व की व्याख्या की है तथा द्रव्य में होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट किया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने परिणामी नित्यत्ववाद और द्रव्याक्षरत्ववाद की व्याख्याओं में सामंजस्य प्रस्तुत कर, अपनी वैज्ञानिक सोच को उजागर किया है।



लोकवाद

जैन दृष्टि से ब्रह्माण्ड (लोक) छः द्रव्यों में वर्गीकृत है। ये द्रव्य हैं: —

1. धर्मास्तिकाय
2. अधर्मास्तिकाय
3. आकाशास्तिकाय
4. पुद्गलास्तिकाय
5. जीवास्तिकाय
6. काल

सामान्य रूप से इन्हें धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव कहा जाता है। इन छः द्रव्यों की सहस्थिति लोक है। जैन साहित्य में ब्रह्माण्ड को लोक (विश्व) कहा है। इस लोक के बाहर केवल अनन्त आकाश है, उसे अलोक कहा है। जैनों ने सर्वप्रथम लोक-अलोक को जाना फिर अन्य द्रव्यों की मीमांसा की। लोक का आकार, उसके मध्य बिन्दु (रुचक प्रदेश), लोक की सीमाएँ, लोक-अलोक की व्यवस्था, अस्तित्व के मौलिक द्रव्य आदि संबंधित तथ्यों पर विमर्श कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह ब्रह्माण्ड किसी के द्वारा निर्मित नहीं है और न ही इसका कभी अंत होने वाला है। जैन दृष्टि से विश्व-संरचना, ज्यामिती के सार्वभौम नियमों का पालन करती हुई शाश्वत तथा स्थायी है यद्यपि इसमें स्थित द्रव्य परिवर्तनशील है।

वैज्ञानिक आइंस्टीन और हाकिंग के मन्तव्य

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार सृष्टि और सृष्टि संचालन के लिए जैन दर्शन ने किसी ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं किया इसलिए उन्हें सार्वभौम और सामयिक नियमों की खोज की। जैन दृष्टि के समान ही आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस ब्रह्माण्ड की संरचना में ईश्वर को नहीं माना है। आइंस्टीन का यह वाक्य जैन दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक है कि 'ईश्वर के लिए कुछ भी करने को नहीं बचा है क्योंकि प्रकृति अपने नियमों से कार्य कर रही है।' वर्तमान के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री प्रोफेसर हाकिंग के अनुसार भी यह सृष्टि अनादि अनन्त है। वर्तमान में विज्ञान के क्षेत्र में ऐस्ट्रो-भौतिकी (Astro-physics) का विषय अत्यन्त विकसित हो रहा है। विज्ञान दीर्घ से दीर्घतम और सूक्ष्म से सूक्ष्मतम की खोज में लगा है। एक ओर जहां बृहदतम

ब्लैक होल के व्यवहार को जानने का प्रयत्न हो रहा है तो दूसरी ओर सूक्ष्मतरंग क्वार्क और ग्लूऑन की खोज कर रहा है। ऐसे में जैन दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। किन्तु इस तुलना के पूर्व हम पाठकों के लिए विज्ञान में ब्रह्माण्डीय अध्ययन की ऐतिहासिक प्रगति गाथा को प्रस्तुत करेंगे।

ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक अध्ययन

- (i) ऐतिहासिक दृष्टि से ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ कोपरनिकस से माना जाता है जब उसने 1514 में सूर्य को ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना। 1609 में गैलिलियो ने दूरबीन के प्रयोग से इसकी पुष्टि की। 1687 में न्यूटन ने ब्रह्माण्डीय गोलों की कक्षाओं का गणितीय स्वरूप तैयार किया और उसके साथ ही गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इससे यह निश्चित हो गया कि ब्रह्माण्ड किसी सीमा में नहीं बंधा है।
- (ii) "गुरुत्वाकर्षण हमेशा आकर्षण पैदा करता है" इस धारणा ने अनन्त ब्रह्माण्ड और अनन्त तारों का नमूना (Model) प्रस्तुत किया। इससे यह संदेह हुआ कि परस्पर आकर्षण से सभी तारे केन्द्र में खींच जाएंगे और विनष्ट हो जाएंगे। लेकिन अनन्त तारों की धारणा ने ब्रह्माण्ड को केन्द्र विहीन और स्थिर बताया। मगर न्यूटन ने स्थिर और अनन्त जगत की मान्यता को असत्य सिद्ध किया।
- (iii) न्यूटन और उसके बाद सन् 1823 में हेनरिच ओल्वर्स ने प्रश्न किया कि अगर ब्रह्माण्ड अनादि है तो अब तक समस्त आकाश अनन्त तारों के प्रकाश से पूर्णरूप से प्रकाशित हो चुका होता क्योंकि हर एक तारे का प्रकाश अपनी ऊर्जा से समस्त पदार्थ को प्रज्वलित कर चुका होता। इसका कारण यह है कि इतने लम्बे समय में प्रकाश किरण की ऊर्जा पदार्थ में कहीं न कहीं शोषित हो जाती। मगर ब्रह्माण्ड तो अंधकारमय है। ब्रह्माण्ड को अनादि नहीं माने जाने का यह सशक्त तार्किक प्रमाण दिया गया।
- (iv) इसके बाद इस विषय के अध्ययन में अचानक मोड़ आया जब 1929 में यह बताया गया कि निहारिकाएं एक दूसरे से दूर हो

रही हैं। ब्रह्माण्ड फैल रहा है। ब्रह्माण्ड के फैलने और सिकुड़ने की धारणा के कारण यह मत बना कि ये निहारिकाएं जो दूर जा रही हैं वे दस या बीस हजार मिलियन (दस लाख) वर्ष पूर्व, बहुत नजदीक रही होंगी। इतनी नजदीक कि उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म आकाश में अत्यधिक घनत्व एकत्रित कर रखी होगी और एक धमाके (Big Bang) के साथ ही ब्रह्माण्ड की रचना हुई होगी। बिग-बैंग के बाद, ब्रह्माण्ड के संबंध में जो नवीनतम जानकारी है वह पाठकों के लिए प्रेषित है।

- (v) हाल ही जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने कहा है कि ब्रह्माण्ड का आकार फ्रांस की एफिल टावर जैसा है। अब ब्रह्माण्ड को नापने की कोशिश कर रहे खगोल वैज्ञानिकों का कहना है कि यह 156 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी में फैला हुआ है। ब्रह्माण्ड की शुरुआत में हुए बिग बैंग यानी कॉस्मिक बैकग्राउंड रेडिएशन की प्रतिध्वनि के अध्ययन से प्राप्त डाटा के आधार पर इसके विस्तार का आकलन किया गया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रतिध्वनि से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि शुरुआती अवस्था में यह कैसा रहा होगा और इसका विकास कैसे हुआ।

हाल ही में यह भी पता चला है कि ब्रह्माण्ड 14.7 अरब वर्ष पुराना है। बिग बैंग के बाद से ब्रह्माण्ड का विस्तार लगातार जारी है। अमरीका के मोंटाना स्टेट यूनिवर्सिटी के नील कॉर्निश और उनके सहयोगियों ने फिजिक्स रिव्यू लेटर्स में लिखा है कि शुरुआती ब्रह्माण्ड में प्रकाश द्वारा तय की गई दूरी के आधार पर इसके विस्तार का आकलन सही नहीं है। उनके अनुसार बिग बैंग के दस लाख साल बाद के ब्रह्माण्ड का आकार अभी से एक हजार गुना कम होगा।

सापेक्षवाद और क्वांटम यांत्रिकी

निष्कर्ष के रूप में आज विज्ञान के क्षेत्र में यह बात मान ली गई है कि स्थूल स्तर पर हमारा समस्त व्यवहार न्यूटन के सिद्धान्तों के आधार पर चलता है और वह खरा भी उतरता है। आइंस्टीन का सापेक्षवाद का सामान्य सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण के बल की मीमांसा करता है तथा विशाल ब्रह्माण्ड के स्थायित्व को समझाता है। आधुनिक विज्ञान के पास ब्रह्माण्ड के विवेचन के लिए दो महत्त्वपूर्ण प्रमाणित सिद्धान्त उपलब्ध हैं।

- (i) सापेक्षवाद (Relativity) जो स्थूल द्रव्य की भौतिकी समझाता है।
- (ii) क्वांटम यांत्रिकी (Quantum Mechanics) जो सूक्ष्म द्रव्य को परिभाषित करता है।

ब्रह्माण्ड संबंधी कुछ निरीक्षणों में गुरुत्वाकर्षण के नियम सत्य प्रतीत होते हैं। जैसे ग्रहों की कक्षा, ग्रहण आदि। जबकि तारों की संरचना, प्रकाश की गति, सूक्ष्मतम कणों आदि को क्वांटम यांत्रिकी से समझाया जा सकता है। अभी तक ये दोनों सिद्धान्त परस्पर में विरोधी हैं तथा ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ और अन्त को नहीं समझा पाए हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि बिग-बैंग के पहले समय का क्या स्वभाव था ? अनेक प्रश्न अभी निरुत्तरित हैं।

आकाश-काल की युति

उपर्युक्त इन दोनों सिद्धान्तों के समन्वय से एक नई स्थिति उत्पन्न हुई है जो पहले कभी नहीं थी। इस स्थिति में आकाश काल की युति चार आयामी हो जाती है जो आकाश काल को सीमित कर देती है। ऐसे में यह जानना अत्यन्त रुचिकर है कि जैन दर्शन ने इन प्रश्नों का क्या उत्तर दिया है? इस संबंध में सर्वप्रथम हम लोक-अलोक के विभाजन तत्त्व की धारणा को पाठकों के लिए प्रस्तुत करेंगे।

(i) लोक-अलोक का विभाजक तत्त्व

जैन दर्शन में लोक-अलोक की मान्यता सर्वथा मौलिक है। लोक-अलोक के विभाजक तत्त्व की मीमांसा में कहा गया है कि धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दो द्रव्य आकाश को दो भागों में बांटते हैं अर्थात् जिस आकाश खण्ड में ये द्रव्य होते हैं, वहीं लोक की प्राकृतिक सीमा है। शेष आकाश अलोक है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी पुष्टि में अन्य द्रव्यों की विवेचना करते हुए बताया है कि आकाश, काल, जीव और पुद्गल लोक-अलोक के विभाजन के आधार नहीं बन सकते। इसके निम्न कारण प्रस्तुत किये हैं -

- (1) आकाश स्वयं विभाज्यमान है, इसलिए वह विभाजन का हेतु नहीं बन सकता।
- (2) काल परिणामन का हेतु है। उसमें आकाश को दिग्‍रूप करने की क्षमता नहीं है।
- (3) काल वास्तविक तत्त्व नहीं है। यह विभाजक तत्त्व नहीं बन सकता।

- (4) जीव और पुद्गल गतिशील और मध्यम परिणाम वाले तत्त्व हैं।
अतः इनसे विभाजन संभव नहीं।

अतः पाठकों को धर्म और अधर्म द्रव्यों के गुण और व्यवहार को समझना आवश्यक है जो लोक और अलोक में विभाजन के कारण हैं।

(ii) धर्मस्तिकाय, अधर्मास्तिकाय

यह द्रव्यद्वयी, अर्थात् धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय अभौतिक द्रव्य है जो स्थिर और लोक में व्यापक है। ये द्रव्य जहां तक है वहीं तक जीव और पुद्गल की गति और स्थिति संभव है। धर्म गति में केवल निमित्त कारण है, उपादान कारण तो जीव और पुद्गल ही है। मछली का पानी में गति करने का उदाहरण इस संबंध में दिया जाता है वह अत्यंत स्थूल है, क्योंकि पानी स्वयं गति करता है, धर्मास्तिकाय स्वयं गति नहीं करता। जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय — गति तत्त्व को अभौतिक माना गया है अतः उसे आंखों से देखना संभव नहीं है और यह पुद्गल-पदार्थ की गति में किसी प्रकार बाधक नहीं है। धर्मास्तिकाय के महत्त्व को बताते हुए भगवान महावीर ने कहा है कि, सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पंदन मात्र है, वे सब धर्मास्तिकाय की सहायता से प्रवृत्त होते हैं। धर्मास्तिकाय के अभाव में न ध्वनि की तरंग गति कर सकती है, न प्रकाश की किरण गति करती है, और न पलक झपक सकती है। हमारा चलना, फिरना, सोना या श्वासोच्छ्वास लेना इन सब क्रियाओं में यह द्रव्य सहायक है।

अधर्म, धर्म का प्रतिपक्षी द्रव्य है जो वस्तु और जीव को स्थिति (rest) देने में निमित्त कारण है। जर्मन विद्वान शूब्रिंग ने जैन दर्शन के अध्ययन के बाद अधर्म को ठहराव (Stop) का निमित्त कारण माना है अर्थात् जब पुद्गल गति करता हुआ, ठहरता है तो उस समय अधर्म-द्रव्य उपयोगी है। इस ब्रह्माण्ड में अनेक पुद्गल पदार्थ आकाश में लम्बे समय से ठहरे हुए हैं। अधर्मास्तिकाय, पुद्गल और अन्य सभी द्रव्यों की स्थिति में निमित्त कारण माना गया है।

यह आश्चर्य की बात है कि धर्म और अधर्म द्रव्यों को जैन दर्शन के अतिरिक्त किसी भी अन्य दर्शन ने स्वीकार नहीं किया है। लेकिन यह महत्त्वपूर्ण है कि वर्तमान में वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड को जानने में विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं कि यह ब्रह्माण्ड सीमित है या असीमित। संभवतः ब्रह्माण्ड को सीमित मानने के कारणों में विज्ञान को भी अन्य द्रव्यों की सत्ता को स्वीकार

करना पड़े। इस दृष्टि से जैन दर्शन के लोक-अलोक की मान्यता को वैज्ञानिक पुष्टि का आधार निर्मित हो रहा है। ऐसा माना जा सकता है।

(iii) गति तत्त्व

आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान के संदर्भ में धर्मास्तिकाय की तुलना गति तत्त्व के साथ करने पर पाया कि वैज्ञानिकों में सबसे पहले व्यवस्थित ज्ञान गैलिलीयो ने और बाद में न्यूटन ने गति तत्त्व (medium of motion) को स्वीकार किया और इसके नियम प्रस्तुत किए। न्यूटन के बाद प्रसिद्ध गणितज्ञ अलबर्ट आइंस्टीन ने भी गति तत्त्व की स्थापना करते हुए कहा — “लोक परिमित है लोक के परे अलोक अपरिमित है। लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस शक्ति का — द्रव्य का अभाव है, जो गति में सहायक होता है।” विज्ञान के इस निष्कर्ष पर आचार्य महाप्रज्ञ ने सार्थक टिप्पणी करते हुए लिखा है कि जहां विज्ञान के अध्यापक अपने छात्रों को गति तत्त्व का उपर्युक्त अर्थ समझाते हैं वहां ऐसा लगता है मानो कोई जैन गुरु अपने शिष्यों के सामने धर्म-द्रव्य की व्याख्या कर रहा हो।

(iv) विज्ञान जगत में ‘इथर’ तत्त्व की अमान्यता

विज्ञान जगत में यह माना गया था कि प्रकाश की गति के लिए ‘इथर’ द्रव्य समूचे आकाश में विस्तार लिए हुए है। जिस प्रकार शब्द की तरंगों को गति के लिए वायु की आवश्यकता है, उसी प्रकार प्रकाश तरंगों को ‘इथर’ की आवश्यकता है किंतु यह धारणा अधिक दिनों तक मान्य नहीं रही क्योंकि 1905 में आइंस्टीन ने ‘इथर’ द्रव्य को अनावश्यक बताया। माईकलसन और मोर्ले के प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ कि प्रकाश की गति को अगर मापा जाए तो वह प्रत्येक निरीक्षणकर्ता के लिए चाहे वह स्वयं स्थिर हो या गतिशील — एक समान पाई जाएगी। आइंस्टीन का यह तर्क रहा कि भौतिक ‘इथर’ की उपस्थिति में प्रकाश की गति बाधित होनी चाहिए थी अर्थात् गति में कुछ कमी आनी चाहिए थी, जो विभिन्न प्रयोगों में प्रदर्शित नहीं हुई। अतः विज्ञान के क्षेत्र से ‘इथर’ तत्त्व को विदा कर दिया गया क्योंकि यह गवेषणा इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी कि ‘इथर’ भौतिक है या अभौतिक। यह तो स्वीकार कर लिया गया कि इथर ठोस, द्रव, गैस रूप नहीं अर्थात् पदार्थ नहीं, किंतु इसके प्रमाण भी उपलब्ध नहीं हुए कि ‘इथर’ अभौतिक है। इस स्थिति में इथर की मान्यता वैज्ञानिक जगत में नहीं रही।

(v) सीमित विश्व – विज्ञान के संदर्भ में

पिछले पचास वर्षों में कॉस्मोलॉजी के क्षेत्र में अत्यन्त विकास हुआ है। सीमित विश्व की मान्यता प्रबल होती जा रही है। सर्वप्रथम न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के आधार पर इस विश्व को सीमित स्वीकार किया था क्योंकि सभी वस्तुएं परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करती हैं। परस्पर आकर्षण के कारण वस्तुएं अनन्त आकाश में नहीं जा सकती। इस मान्यता को वर्तमान में प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री स्टीफन हॉकिंग भी स्वीकार करते हैं कि इतने बड़े विश्व के आकार का नियन्ता गुरुत्वाकर्षण ही है। सापेक्षता के सिद्धान्त ने तथा समरूपता (Entropy) की अवधारणा ने विश्व को सीमित बताया है। सापेक्षता सिद्धान्त और यांत्रिकी क्वांटम (Quantum mechanism) दोनों से इस विश्व को देखते हैं तो आकाश और काल चतुष्भायामी बन जाते हैं। इन आयामों में तीन आकाश के और एक काल का आयाम होता है जो सीमित विश्व को निर्धारित करता है।

लोक-आकाश सीमित है, सान्त है। गणित-विज्ञान के विद्वान एच. वार्ड कहते हैं – “सम्पूर्ण पदार्थ, सम्पूर्ण आकाश की एक सीमा में रहते हैं, इसलिए विश्व सान्त है। यह सम्पूर्ण आकाश इस प्रकार घुमावदार (कवर्ड) है कि प्रकाश की एक किरण आकाश की एक सीधी रेखा में लम्बे समय तक यात्रा करने के बाद पुनः अपने बिंदु पर आ जाएगी। गणितज्ञों का अनुमान है कि प्रकाश की एक किरण को आकाश में इस चक्कर को पूरा करने में दस ट्रिलियन वर्ष से कम नहीं लगता। इससे यह प्रमाणित होता है कि आकाश ससीम है, सान्त है।”

(vi) सीमित विश्व की सीमाएं

आइंस्टीन ने लोक का व्यास एक करोड़ अस्सी लाख प्रकाश वर्ष माना है। एक प्रकाश वर्ष उस दूरी को कहते हैं जो प्रकाश की एक किरण एक लाख छियासी हजार (1,86000) मील प्रति सैकण्ड के हिसाब से एक वर्ष में तय करती है यह गणना संख्यातीत अर्थात् असंख्यात हो जाती है।

जैनों की धारणा

जैन आगमिक भाषा में लोक की परिधि एक रूपक के द्वारा समझाई है। अगर छः देवता शीघ्रतम गति से लोक का अन्त लेने के लिए छहों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची नीची) में चले। ठीक उसी समय एक सेठ के घर में एक हजार वर्ष की आयु वाला एक पुत्र जन्मा----- उसकी आयु

समाप्त हो गई। उसके बेटे पोते हुए। इस प्रकार सात पीढ़ियां बीत गईं। तब तक वे देवता चलते रहे, फिर भी लोक के अन्त तक नहीं पहुंचे। हां, वे चलते-चलते अधिक भाग पार कर गए। बाकी रहा वह भाग कम है — वे चले उसका असंख्यावां भाग बाकी रहा है उससे असंख्यात गुणा भाग पार कर चुके हैं। इस गणित से यह प्रतीत होता है कि यह लोक बहुत बड़ा है और इससे यह ज्ञात होता है कि उन दिनों गणित किस तरह विकास कर रहा था।

विज्ञान की धारणा

विज्ञान जगत के समक्ष यह ज्वलंत समस्या है कि यद्यपि विश्व सीमित है लेकिन सीमित विश्व की सीमाएं किससे निर्धारित करें। क्योंकि आकाश में, आकाश द्वारा सीमाएं कैसे निर्धारित हो ? अर्थर एडिंगटन ने इस सीमित विश्व को बिना सीमा (boundary) का माना है। इस अवधारणा से इस मान्यता को बल मिला है कि इस सीमित विश्व के बाहर कुछ और है। अगर 'कुछ और' है तो वह क्या है ? वह विश्व के बाहर कैसे है ? वह भौतिक है या अभौतिक है ? अगर भौतिक है तो वह सीमाओं को प्रभावित करता रहेगा। इस सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि 'इस ब्रह्माण्ड की बाऊण्ड्री स्थिति यह है कि इसकी कोई बाऊण्ड्री नहीं है।' यह ब्रह्माण्ड अपनी संरचना में अंदर से ही पूर्ण है और अन्य किसी बाहरी प्रभाव से प्रभावित नहीं है। इस कारण न तो ब्रह्माण्ड की कभी रचना का होना माना जा सकता है और न ही इसका कभी पूर्ण विनाश हो सकता है। यह केवल 'है'। यह कहना न्यायसंगत है।

विज्ञान की इस उलझन भरी स्थिति की तुलना में जैन दर्शन के लोकवाद की स्थिति स्पष्ट है जहां धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दो द्रव्य मान्य हैं।

जैन कॉस्मोलोजी

जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को मानने के तीन लाभ हुए।

1. गति और स्थिति के नियामक तत्त्व निर्धारित हो सके।
2. लोक और अलोक के बीच की सीमाएं निर्धारित हो सकी।
3. अलोक में केवल अभौतिक आकाश होने के कारण, लोक की सीमाएं बाहर से प्रभाव मुक्त हो गईं। गणित की भाषा में लोक की सीमाओं पर अलोक का प्रभाव शून्य हो गया।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों की मान्यता ने जैन कॉस्मोलॉजी की लोक-अलोक की अवधारणा को पूर्णता प्रदान की है। वैज्ञानिक अभी तक ब्रह्माण्ड की सीमा के संबंध में अन्तिम सत्य तक नहीं पहुंच पाए हैं।

गति और स्थिति

उपर्युक्त विवेचन में केवल गति तत्त्व का उल्लेख हुआ है जब कि जैन दर्शन में गति और स्थिति के दोनों द्रव्य आकाश में समान रूप से व्याप्त हैं। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि गति और स्थिति दोनों सापेक्ष हैं। एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व अत्यन्त अपेक्षित है। विज्ञान से तुलना करने पर हम पाते हैं कि भौतिक शास्त्र में कार्य करने की क्षमता को शक्ति कहा है। यह दो प्रकार की होती है :

- (1) गति शक्ति
- (2) अधिष्ठान-शक्ति।

पदार्थ में गति के कारण जो शक्ति आ जाती है उसे गति-शक्ति कहते हैं तथा पदार्थ में उसकी स्थिति, विन्यास के कारण जो शक्ति होती है उसे अधिष्ठान शक्ति कहते हैं। यद्यपि विज्ञान ने गति और स्थिति के नियामक तत्त्व नहीं माने हैं क्योंकि 'इथर' तत्त्व को अस्वीकृत कर दिया गया है किंतु जैन दर्शन में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को गति और स्थिति का नियामक माना है। अतः यह माना जा सकता है कि पदार्थ की गति-शक्ति का सम्बन्ध धर्मास्तिकाय से है और अधिष्ठान-शक्ति का सम्बन्ध अधर्मास्तिकाय से है।

(vii) बिग-बैंग — सृष्टि की उत्पत्ति

विज्ञान ने सृष्टि का आरम्भ बिग-बैंग (Big-Bang) अर्थात् एक धमाके से माना और बिग क्रंच (Big Crunch) से सृष्टि का अन्त स्वीकार किया है किंतु वैज्ञानिकों को यह भी संदेह है कि अगर बिग-बैंग की अवधारणा सही है तो उससे पूर्व आकाश और काल की क्या सत्ता थी? ऐसे प्रश्न इस तथ्य के साक्षी हैं कि सृष्टि के शाश्वत प्रश्नों के संबंध में वैज्ञानिक सोच और दार्शनिक सोच निकट आ रही है। आज वैज्ञानिक जीवन और जगत के उन प्रश्नों का उत्तर ढूढ़ रहे हैं जिनका चिंतन दार्शनिक किया करते थे।

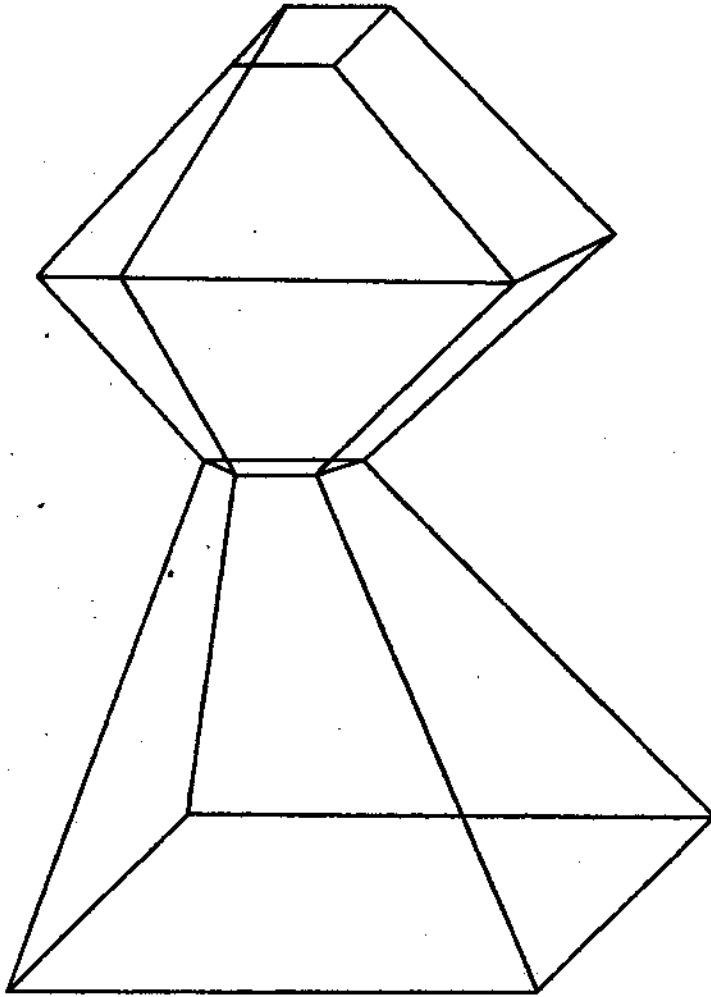
डॉ. हॉकिंग का कहना है कि सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्र के नियम इस आधार पर बने हैं कि आकाश काल स्निग्ध तथा चौरस हैं अतः बिग-बैंग की

अपूर्व घटना के समय वे टूट जाते हैं क्योंकि उस समय आकाश काल की वक्रता अनन्त होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि बिग-बैंग के पूर्व की सभी घटनाएं बिग-बैंग के समय नष्ट हो चुकी होती हैं। इस कारण यह जानना महत्वपूर्ण नहीं है कि बिग-बैंग के पूर्व आकाश-काल की घटनाओं का क्या हुआ ? निष्कर्ष की भाषा में सृष्टि के मॉडल में बिग-बैंग के पूर्व के किसी प्रश्न का, वर्तमान में महत्व नहीं है।

जैन दृष्टि से प्रलय का अभिप्राय

यहूदी, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों ने सृष्टि के प्रारम्भ होने की मान्यता को स्वीकार किया है लेकिन यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने सृष्टि को अनादि-अनन्त कहा है। आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है कि जैन दर्शन में सृष्टि का आरम्भ और प्रलय दोनों मान्य नहीं है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी की सृष्टि और प्रलय से आंशिक रूप से तुलना की जा सकती है। अवसर्पिणी का छठा अर (भाग) प्रलयकार जैसा है। उत्सर्पिणी के दूसरे अर (भाग) से विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। यह उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का क्रम कालचक्र कहलाता है। अवसर्पिणी के पश्चात् उत्सर्पिणी और उत्सर्पिणी के पश्चात् अवसर्पिणी होती रहती है। यह कालचक्रगत परिवर्तन केवल पांच भरत और पांच ऐरावत में होता है। इस दृष्टि से जैन दर्शन के अनुसार काल-द्रव्य वर्तुलीय है। इसमें विकास ह्रास की निश्चित परम्परा है लेकिन यह सृष्टि पूर्ण रूप से कभी नष्ट नहीं होती। ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में विज्ञान द्वारा हो रही शोध प्रगति पर है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः हम पाते हैं कि जैन दर्शन और विज्ञान ब्रह्माण्ड के अनादि-अनन्त होने की धारणा पर एकरूपता लिए हुए हैं।





FOUR SIDE FIGURE OF UNIVERSE

आकाश और दिशाएं

ताप दिशा

सामान्य व्यक्ति इस तथ्य से परिचित है कि जिस क्षेत्र में जिस ओर सूर्य उदित है, वह उस क्षेत्र के लिए पूर्व दिशा है और जिस ओर सूर्य अस्त होता है वह अपर-दिशा—पश्चिम दिशा है। पूर्व दिशा की ओर मुंह करके अगर व्यक्ति खड़ा होता है तो उसके दाहिने हाथ की ओर अर्थात् दक्षिण पार्श्व में दक्षिण दिशा और बाएं हाथ की ओर अर्थात् उत्तर पार्श्व में उत्तर दिशा है। ये चारों दिशाएं सूर्य के आधार पर ताप दिशा कहलाती हैं। आचारांग निर्युक्ति में दिशा शब्द के सात निक्षेप बताए हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, ताप, प्रज्ञापक तथा भाव।

प्राचीन मान्यता

जैन प्राच्य साहित्य में दिशाओं और आकाश के संबंध में गहन चिन्तन हुआ है। इसके प्रमुख दो कारण रहे हैं।

- (i) कुछ दार्शनिक आकाश और दिशा को पृथक द्रव्य मानते हैं।
- (ii) न्याय और वैशेषिक दर्शन आकाश का गुण शब्द मानते हैं तथा जो बाह्य जगत को देशस्थ करता है उसे दिशा मानते हैं।

जैन दर्शन को ये दोनों तथ्य स्वीकार नहीं है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आकाश और दिशा के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि —

आकाश स्वतंत्र द्रव्य है और दिशा उसका काल्पनिक विभाग है। आकाश अनन्त प्रदेशात्मक है, लोक-अलोकमय है, अनादि-अनन्त है और अमूर्त है। आकाश के जिस भाग से वस्तु व्यपदेश या निरूपण किया जाता है, वह दिशा कहलाती है। जैन आगमों में महादिशा, विदिशा, अनुदिशा, ऊर्ध्व दिशा, अधोदिशा, तिर्यक दिशा आदि नामों का प्रयोग हुआ है।

दिशाओं की वक्राकार आकृति

भगवती सूत्र में दिशाओं को मृदंगाकार कहा है, अर्थात् वे वक्राकार हैं। वहां आकाश और दिशा में अंतर बताते हुए कहा है कि आकाश की श्रेणियां सरल रेखा में हैं लेकिन दिशाएं मृदंगाकार हैं अर्थात् वे वक्र हैं। वक्रता के सम्बन्ध में विज्ञान ने माना है कि आकाश काल जहां भी वक्राकार है वहां,

अनन्त द्रव्यमान का समावेश हो जाता है। जैन दर्शन के पाठकों के लिए आकाश का वक्र होना और उसमें अनन्त द्रव्यमान (पुद्गल) का समावेश होना, जिज्ञासा का विषय है अतः वक्राकार के सम्बन्ध में विज्ञान सम्मत संदर्भ प्रस्तुत करेंगे। विज्ञान के अनुसार आकाश और काल की संयुक्त युति वक्र होती है जब थोड़े आयतन में अधिक द्रव्यमान (mass) भरता है। जैसे -

- (i) ब्लैक होल में द्रव्य का घनत्व बहुत अधिक होता है इसलिए वहां आकाश-काल वक्र हो जाता है।
- (ii) सूर्य के चारों ओर का आकाश-काल भी वक्र होता है क्योंकि वहां भी अधिक द्रव्यमान होता है।
- (iii) यह माना जाता है कि बिग-बैंग के समय आकाश काल की वक्रता अनन्त थी क्योंकि अनन्त द्रव्यमान, सूक्ष्मतम आयतन में था।

भौतिक शास्त्री हाकिंग के अनुसार जब हम चतुष्आयामी को तीन आयाम में, त्रिआयामी वस्तु को दो आयामों में देखने का प्रयास करते हैं, या द्विआयामी वस्तु को एक आयाम में देखते हैं तो वह वक्रीय प्रतीत होती है।

वर्तमान में वैज्ञानिक, तारों तक पहुंचने के लिए, इसी प्रयत्न में है कि अगर आकाश-काल को किसी प्रयोग से वक्र बना लिया जाए तो उस क्षेत्र से तारों तक की यात्रा बहुत आसान हो जाएगी क्योंकि वक्रता के कारण दूरी कम हो जाएगी।

पृथ्वी से निकटतम तारा भी 4.2 प्रकाश वर्ष दूर है। तारों की दूरी अत्यधिक होने के कारण, वैज्ञानिक आकाश-काल को वक्र बनाकर, दूरी को सिमेटना चाहते हैं अन्यथा तारों तक जाने की यात्रा सम्भव नहीं हो सकेगी। इस सिमटी हुई दूरी को, 'वार्म होल' का नाम दिया गया है। अगर वैज्ञानिक इसमें सफल हो जाते हैं तो इससे महाद्वीपों के बीच की दूरियां भी 'वार्म-होल' से तय की जा सकेगी जिससे यात्रा शीघ्र हो सकेगी।

इस संबंध में जैन दर्शन में वर्णित दिशाओं की वक्रता का अध्ययन, शोध दृष्टि से करने की आवश्यकता है। आकाश काल की वक्रता की तुलना दिशाओं से की जा सकती है। जैन धारणा के अनुसार आकाश के सूक्ष्मतम प्रदेश में अनन्त अनन्त प्रदेशी पुद्गल ठहर सकता है। इसे समझने के लिए हम दिशाओं की वक्रता का आधार लेंगे क्योंकि दिशाएं वक्र हैं और वक्रता अनन्त द्रव्यमान को समेट लेती हैं।

शब्द की पौद्गलिकता

जैन दर्शन ने शब्द को आकाश का गुण नहीं माना है। इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है कि शब्द पौद्गलिक है, वह पुद्गल पदार्थ के संघात और भेद का कार्य है। हमें यह ध्यान में रखना है कि शब्द के पुद्गल अष्टस्पर्शी हैं, चतुष्स्पर्शी नहीं। अर्थात् शब्द के पुद्गल भारहीन नहीं हैं, वे भारसहित हैं। अतः पौद्गलिक शब्द, अमूर्त आकाश का गुण नहीं हो सकता। आकाश का गुण अवगाहन है। वह स्वयं अनालम्ब है, शेष सब द्रव्यों का आलम्बन है। स्वरूप की दृष्टि से सभी द्रव्य स्व-प्रतिष्ठ है किंतु क्षेत्र या आयतन की दृष्टि से वे आकाश प्रतिष्ठ हैं।

दर्शन और विज्ञान

पाश्चात्य दार्शनिकों का मत आकाश के संबंध में जैन दर्शन से भिन्न रहा है। प्लेटो ने कहा है कि 'कोरा आकाश' का अस्तित्व सदैव भौतिक पदार्थों के साथ जुड़ा हुआ होता है, स्वतंत्र रूप से उसका कोई महत्त्व नहीं है।

विज्ञान के क्षेत्र में आइंस्टीन के सापेक्षवाद सिद्धांत ने आकाश और काल को समन्वित मान कर, दर्शनों के समक्ष नया सैद्धान्तिक तथ्य प्रस्तुत कर दिया है। अतः आकाश और दिशाओं का अध्ययन रुचिकर विषय बन गया है। इस संदर्भ में हम पाठकों के लिए जैन आगम साहित्य में वर्णित दिशाओं का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

आगमिक स्वरूप

आचारांग सूत्र में पुनर्जन्म की स्थापना के वर्णन में दिशाओं का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है -

मैं पूर्व दिशा से आया हूँ
 अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ
 अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ
 अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ
 अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ
 अथवा अधः दिशा से आया हूँ
 अथवा किसी अन्य दिशा से आया हूँ
 अथवा अनुदिशा से आया हूँ।

उपर्युक्त प्रकरण में छह दिशाओं का वर्णन हुआ है। वे हैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊर्ध्व और अधः। इसके अतिरिक्त अनुदिशा और अन्य दिशा

का भी कथन हुआ है। हम इन दिशाओं के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व, आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों का अध्ययन करेंगे।

आचार्य महाप्रज्ञ ने दिशाओं के आगमिक स्वरूप के संबंध में लिखा है कि दिशा और अनुदिशा की उत्पत्ति तिर्यक् लोक से होती है। दिशा का प्रारम्भ तिर्यक् लोक की लम्बाई के मध्य स्थित आठ रुचक प्रदेशों से होता है जो कि घन रूप में है। घन के चारों कोनों से, दो-दो प्रदेशों से दिशा का प्रारम्भ होता है और उनमें दो-दो प्रदेशों की वृद्धि होते-होते वे असंख्य प्रदेशात्मक बन जाती है। लोक आश्रयी यह मृदंग के आकार की है और अलोक आश्रयी यह ऊर्ध्व शकटाकार है। अनुदिशा केवल एक देशात्मक होती है। ऊर्ध्व और अधोदिशा का प्रारम्भ चार प्रदेशों से होता है फिर उनमें वृद्धि नहीं होती।

दिशा के सम्बन्ध में आचारांग निर्युक्ति में विशेष विस्तार से वर्णन हुआ है वहां दिशाओं के अतिरिक्त चार विदिशाओं का उल्लेख है जिन्हें एक प्रदेशात्मक मानी है वह अन्त तक एक प्रदेश वाली है और उन्हें वृद्धि रहित कहा है। ग्रह टूटी हुई मोतियों की माला के आकार है। इसी प्रकार ऊर्ध्व और अधो दिशाओं को चार प्रदेशी माना है और वे भी वृद्धि रहित हैं।

दिशाओं के इस अध्ययन के निम्न निष्कर्ष निकलते हैं।

- (i) चार महादिशाएं, उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण मुख्य दिशाएं हैं जो असंख्य प्रदेशात्मक हैं। उत्तर और दक्षिण तथा पूर्व और पश्चिम दिशाएं संयुक्त रूप से आकाश के दो आयामों का प्रतिनिधित्व करती हैं।
- (ii) रुचक प्रदेशों के ऊपर से ऊर्ध्वमुखी वृद्धि होती है और नीचे के प्रतर से लोक की अधोमुखी वृद्धि होती है। किंतु मूल में चार प्रदेशी हैं और अंत तक चार प्रदेशी ही रहते हैं अर्थात् इनमें वृद्धि नहीं होती।
- (iii) अनुदिशा, रुचक प्रदेशों से प्रारम्भ होती है।

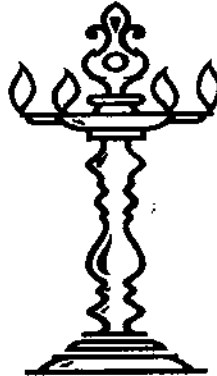
समस्याएं

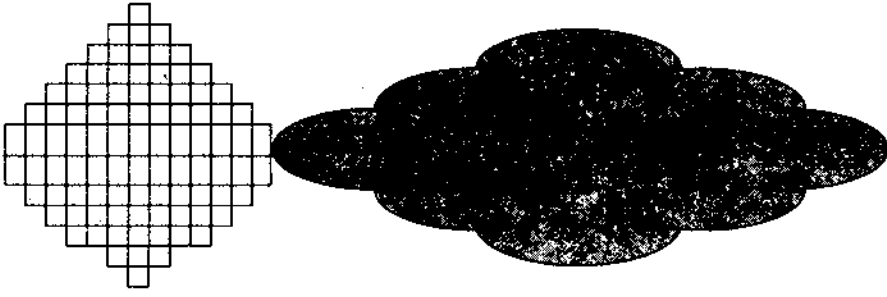
उपर्युक्त वर्णन से यह फलित होता है कि

- (i) चार महादिशाएं आकार में असंख्य प्रदेशात्मक है लेकिन ऊर्ध्व और अधो दिशाओं का आकार केवल चार प्रदेशों तक ही सीमित है। अतः इन छः दिशाओं से आकाश के तीन समान आयाम नहीं माने जा सकते।

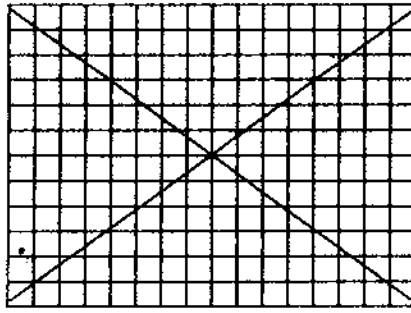
- (ii) ऊर्ध्व और अधो दिशाएं केवल चार प्रदेशी हैं, ऐसे में जीव, पुनर्जन्म के समय इन दिशाओं में कैसे गति कर पाएगा ? क्योंकि जीव असंख्यात प्रदेशी है और उसे गमन करते समय असंख्यात प्रदेशी आकाश की आवश्यकता रहती है। आत्मा, पुद्गल की भांति इतना संकोच नहीं कर सकती कि वह आकाश के एक प्रदेश में समा जाए। यह पुद्गल की विशेषता है कि अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, एक आकाश प्रदेश में समा जाता है।
- (iii) अनुदिशा क्या है ? एक देशात्मक है या एक प्रदेशात्मक है ? आचार्य महाप्रज्ञ ने विदिशा और अनुदिशा को एक ही कहा है। विदिशा केवल एक प्रदेशात्मक है, इस दृष्टि से अनुदिशा भी एक प्रदेशात्मक मान ली गई है। एक प्रदेशात्मक दिशा से असंख्य प्रदेशी जीव की गति नहीं होती। जबकि आचारांग सूत्र में अनुदिशा से जीव की गति मानी है, इस संभावना के लिए अनुदिशा को एक देशात्मक मानना उचित है। अनुदिशा को आकाश का तीसरा आयाम माना जा सकेगा।
- (iv) यह जानना भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है कि अलोक में दिशा के स्वरूप को निर्धारित करने का क्या कारण रहा है ? भगवती सूत्र में वर्णन है कि दिशाएं लोक के साथ अलोक में भी चली गई हैं। अलोक में भी दिशाएं हैं तथा उनके आकार हैं।

दिशाओं के सम्बन्ध का यह समूचा वर्णन, निश्चित करता है कि जैन दर्शन में दिशाओं का प्रकरण स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है। इसकी समस्याएं भी हैं और समाधान भी हैं। इसी खण्ड के, 'काल' प्रकरण में इसका विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है।

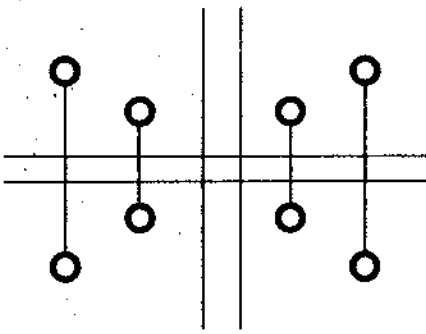




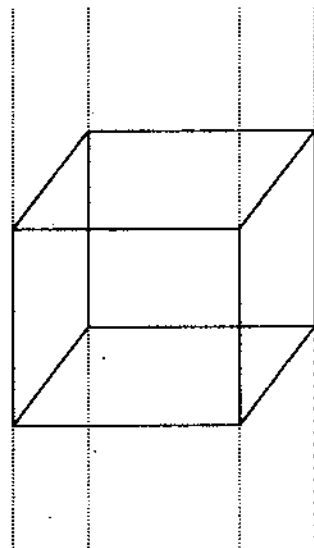
मृदंगाकार दिशाएं



विदिशा



आठ रुचक प्रदेश



घन आकार

काल

जैन तत्त्व-चिन्तन में काल की अवधारणा को लेकर दो मत प्रचलित हैं।

- (i) दिगम्बर परम्परा में काल को स्वतंत्र द्रव्य कहा है।
- (ii) श्वेताम्बर परम्परा ने काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं माना है, औपचारिक द्रव्य माना है तथा उसे जीव और अजीव द्रव्यों की पर्याय मात्र कहा है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी मीमांसा अनेकान्त दृष्टि से करते हुए कहा है कि काल एक स्वतन्त्र द्रव्य भी है और जीव और अजीव का पर्याय भी है। ये दोनों कथन सापेक्ष है, विरोधी नहीं। निश्चय दृष्टि से काल जीव-अजीव की पर्याय है और व्यवहार की दृष्टि से वह द्रव्य है। इसे द्रव्य मानने का कारण उसकी उपयोगिता है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व काल के भेद हैं। इन्हीं कारण से द्रव्य माना जाता है।

जैन दिगम्बर परम्परा में काल का स्वरूप निम्न प्रकार से दर्शाया गया है।

- (1) काल अणु रूप हैं।
- (2) आकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु अवस्थित है।
- (3) काल शक्ति और व्यक्ति की अपेक्षा एक प्रदेश वाला है। इसलिए इसमें तिर्यक्-प्रचय (त्रि-आयामी) नहीं होता।

दोनों परम्पराओं में एक समानता है कि वे काल को अस्तिकाय नहीं मानती।

विज्ञान का मत

आइंस्टीन के अनुसार आकाश और काल कोई स्वतन्त्र तथ्य नहीं है। ये द्रव्य या पदार्थ के धर्म-मात्र हैं। इस दृष्टि से विज्ञान की काल संबंधी मान्यता, श्वेताम्बर परम्परा से मिलती-जुलती है लेकिन यह अपने आप में पूर्ण नहीं है।

आइंस्टीन से पूर्व, किसी भी वस्तु का अस्तित्व पहले तीन दिशाओं — लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में माना जाता था। आइंस्टीन ने वस्तु का अस्तित्व

चार दिशाओं में माना। वस्तु का रेखा गणित में प्रसार आकाश है और उसका क्रमानुगत प्रसार काल है। काल और आकाश दो भिन्न तथ्य नहीं है। इस दृष्टि से दिगम्बर परम्परा की यह मान्यता की आकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु अवस्थित है, विज्ञान के निकट जान पड़ती है आइंस्टीन की आकाश-काल की धारणा ने भौतिक जगत में एक क्रांति पैदा की है। यह अब निश्चित मत बन गया है कि किसी भी घटना को यथार्थ रूप से जानने के लिए आकाश और काल दोनों के सापेक्ष जानना आवश्यक है। उपर्युक्त विवेचन से हमें आचार्य महाप्रज्ञ के इस कथन को मान लेना चाहिए कि काल के संबंध में श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा की मान्यताएं एक-दूसरे की पूरक हैं।

सापेक्षता

आज विज्ञान की यह महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि सापेक्षता के बिना किसी घटना की व्याख्या नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक आइंस्टीन का देश-काल की सापेक्षता का सिद्धान्त प्रत्येक घटना की व्याख्या करता है। इस संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हमने काल को तीन भागों में विभाजित किया — भूतकाल, भविष्य काल और वर्तमान काल। काल कभी विभक्त होता नहीं। आज विज्ञान के सहारे अतीत को वर्तमान के रूप में रूपायित किया जा सकता है, क्योंकि दिग् और काल को सापेक्ष मानने वाले वैज्ञानिकों के लिए कोई भी घटना अतीत की नहीं रही है।

आइंस्टीन के अनुसार देश और काल मिलकर एक तत्त्व है जो स्थैतिक (Static) है। इस स्थैतिक देश काल के पटल पर कुछ नया घटित नहीं होता, अपितु कुछ पहले से ही चित्र लिखित हैं। जब हम उसे देखते हैं तो वह केवल अभिव्यक्त होता है। आकाश में सूक्ष्म पदार्थ द्वारा निर्मित अनेक और विभिन्न प्रकार के तंत्र (Systems) भरे पड़े हैं। ये तंत्र अतीत की घटनाओं को समेटे हुए हैं। अतीत की सभी घटनाएं, विनष्ट नहीं होती और उन्हें ग्रहण किया जा सकता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस सम्बन्ध में कहा है कि हमारा मन और वाणी पौद्गलिक है। हम पुद्गलों के माध्यम से चिंतन करते हैं या बोलते हैं। ये पुद्गल आकाश में व्याप्त हो जाते हैं। आकाश इन पुद्गलों से ठसाठस भरा है जैसे लोक की समूची व्यवस्था का अखूट भंडार हो। निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति के अतीत और वर्तमान, अभी और यही मिलते हैं।

केवलज्ञान का अभिप्राय

उपर्युक्त तथ्य को आगमिक दृष्टि से प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि यदि हमारी चेतना देश और काल की सीमा को तोड़कर अनन्त में चली जाए, विराट हो जाए तो भूतकाल समाप्त हो जाएगा, भविष्य काल समाप्त हो जाएगा, केवल वर्तमान काल रह जायेगा। यह स्पष्ट है कि केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) के लिए न भूतकाल होता है और न भविष्य काल होता है। जब भूत और भविष्य नहीं रहते तो वर्तमान भी नहीं रहता। ये तीनों शब्द समाप्त हो जाते हैं। केवल घटना रहती है। जैन तत्त्व ज्ञान के एक महत्त्वपूर्ण परिभाषिक शब्द 'केवलज्ञान' (सर्वज्ञता) को काल दृष्टि से जिस सरलता से आचार्य महाप्रज्ञ ने उपर्युक्त व्याख्या की है, यह उनकी प्रज्ञा की विशेषता है।

सर्वज्ञता

जैन परम्परा में सर्वज्ञता का सिद्धान्त मान्य रहा है। सर्वज्ञ को केवलज्ञानी कहा जाता है। जैन आगम साहित्य में केवलज्ञानी के ज्ञान को अनन्त कहा है, सम्पूर्ण कहा है, शुद्ध कहा है, अतीन्द्रिय कहा है अर्थात् जो इन्द्रियगत ज्ञान न होकर आत्मगत ज्ञान है। ऐसा माना जाता रहा है कि सर्वज्ञ समस्त लोक और अलोक को जानता है। वह सब द्रव्यों और सब पर्यायों को जानता है। यह प्रश्न सदैव बना रहा है कि केवलज्ञानी (सर्वत्र) एक साथ अनेक विषयों को कैसे ग्रहण करता होगा क्योंकि द्रव्य के सभी पर्यायों को जानने का अभिप्राय यह होगा कि उसके भूत और भविष्य को भी जानता होगा क्योंकि सर्वज्ञ को त्रैकालिक कहा गया है। त्रैकालिक को आधुनिक परिभाषा में यह कहा जाता है कि जो द्रव्य शाश्वत् है अर्थात् तीनों कालों में रहते हैं, सर्वज्ञ उन्हें जानता है लेकिन आचार्य महाप्रज्ञ ने उपर्युक्त समस्या को गहराई से पकड़ा है और इसकी नई व्याख्या करते हुए कहा है कि एक क्षण में अनेक विषयों का ग्रहण नहीं होता किन्तु ग्रहण का काल इतना सूक्ष्म होता है कि वहाँ काल का क्रम नहीं निकाला जा सकता। उसे केवल घटना मानना चाहिए।

गणितीय दृष्टि से अनन्त और शून्य का अति गहरा सम्बन्ध है। कोई इकाई जब अनन्त होने लगती है तो उससे जुड़ी दूसरी इकाई स्वतः शून्य हो जाती है। सर्वज्ञ का ज्ञान अनन्त होता है, इस अनन्त के कारण समय की इकाई शून्य हो जाती है, अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान का अंतर नहीं रहता। आचार्य महाप्रज्ञ ने केवलज्ञान की काल-सापेक्ष जो अवधारणा प्रस्तुत की है यह उनका नया चिंतन है। यह चिंतन वैज्ञानिक

धारणा के बहुत निकट है। सर्वज्ञता की सम्भावना केवल जब ही बनती है जब आत्मा में क्षायिक भाव उत्पन्न होता है। क्षायिक भाव में मुक्त हुए कर्म पुनः आत्मा से नहीं बंधते। यह महत्त्वपूर्ण विचार है।

समय

काल की सूक्ष्मतम इकाई को 'एक समय' कहा है जो अविभाज्य है। व्यावहारिक दृष्टि से यह जानना चाहिए कि एक बार पलक झपकने में ऐसे असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। समय के बाद आगे की समय मापक इकाई को आवलिका कहा है जो असंख्य समयों के समान है। यह आश्चर्य की बात है कि समय और आवलिका के बीच काल-माप की कोई इकाई नहीं है और इन दोनों के बीच में असंख्यात का गुणांक है। इसका क्या रहस्य होना चाहिए? साधारण रूप में यह माना जा सकता है कि सूक्ष्म जगत के लिए 'समय' को इकाई माना गया है और स्थूल जगत में 'आवलिका' को छोटी से छोटी इकाई माना है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कोई भी स्थूल कार्य 'समय' की इकाई में संभव नहीं है। उसे कम से कम असंख्य समय लगने चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि निश्चय नय के अनुसार 'समय' काल की इकाई है और व्यवहार नय के अनुसार 'आवलिका' काल की सूक्ष्मतम इकाई है। गणितीय दृष्टि से एक 'समय' इतना सूक्ष्म है कि वह काल-माप का अंश नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से 'समय' को जीव और अजीव की सूक्ष्म पर्याय या परिवर्तन मानना उचित है। व्यवहार में काल को द्रव्य मानने से इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि जगत की सभी क्रियाएँ काल-समय पर आधारित हैं।

'समय' के दो अर्थ

इस विश्लेषण से हम निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि जैन दर्शन में 'समय' को दो अर्थों में लिया गया है -

- (i) काल की सूक्ष्मतम इकाई।
- (ii) काल की शून्य अवस्था, जब वह समस्त आकाश में विद्यमान रहता है। जब समय शून्य हो जाता है तो पदार्थ दो स्थानों पर या अनेक स्थानों पर एक साथ एक समय उपस्थित रह सकता है।

जैन साहित्य के अनेक प्रकरण 'शून्य समय' की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। अस्पृशद गति जिसे आकाश-काल निरपेक्ष कहा गया है वहां भी

समय शून्य हो जाता है। इस जगत में कुछ ऐसा है जो हमें यह सोचने को बाध्य करता है कि सूक्ष्म जगत का व्यवहार समझना इतना सरल नहीं है। सर्वज्ञ के लिए जहां काल ठहरा हुआ सा है वहां व्यवहार में साधारण व्यक्ति के लिए अतीत, वर्तमान और भविष्य की वर्तना हो रही है। पाठकगण जैन गणित में वर्णित शून्य और अनन्त का परस्पर संबंध का अध्ययन कर, काल की अवधारणा को समझने का प्रयत्न करेंगे।

आकाश-काल-धर्म-अधर्म

आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धान्त के बाद प्रत्येक घटना पर विमर्श आकाश-काल के संयुक्त रूप से किया जाता है। जैन दृष्टि पर इस संबंध में विचार करें तो हमें केवल आकाश-काल की युति को मानने में कठिनाई आएगी क्योंकि आकाश की भांति ही धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के द्रव्य इसी आकाश में, प्रत्येक आकाश प्रदेश के साथ अवस्थित हैं। ऐसे में हमें आकाश-काल की युति की भांति ही दो और युतियां स्वीकार करनी होंगी। वे हैं — धर्म-काल की युति और अधर्म-काल की युति। इसका कारण यह है कि पुद्गल और जीव की गति और स्थिति में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य सहायक है तथा ये द्रव्य लोकाकाश के आकाश के समान ही त्रिआयामी क्षेत्र में व्याप्त हैं। आकाश, धर्म और अधर्म की क्षेत्रीय समतुल्यता देखते हुए गणितीय समीकरणों में किसी ब्रह्माण्ड स्थिरांक (Cosmological Constant) का प्रयोग होना सही प्रतीत होता है। आइंस्टीन ने ब्रह्माण्ड स्थिरांक का प्रयोग किया था जो बाद में उपयोगी प्रतीत नहीं हुआ। ऐसा संभवतः इसलिए हुआ है कि विज्ञान की दृष्टि में आकाश काल वास्तविक द्रव्य नहीं है।

जैन दृष्टि से काल को द्रव्य न मानने का अर्थात् पंचास्तिकाय से अलग रखने का यह ठोस कारण रहा होगा कि उसकी युति काल के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों से भी स्वतन्त्र रूप से होती है। जैनों की यह दृष्टि रही होगी कि अगर आकाश-काल की युति मानी जाए तो धर्म-काल तथा अधर्म-काल की युति को भी स्वीकार करना होगा। धर्म, अधर्म और आकाश तीनों ही द्रव्य रूप से लोक में व्याप्त हैं, समान प्रदेश वाले हैं अतः काल की आकाश-धर्म-अधर्म की युति एक साथ किसी ब्रह्माण्ड स्थिरांक के द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है। यहां इस चर्चा को इसलिए महत्त्व दिया गया है कि आकाश जिस प्रकार अवगाहन देता है, धर्म और अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल को गति और स्थिति देने में सहायक हैं अतः काल के साथ उनका संयुक्त होना आकाश से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

दिशाओं की ज्यामिति

आइंस्टीन ने देश और काल को समन्वित रूप से स्वीकार किया है। यह माना जाता रहा है कि इस संबंध का प्रमाण जैन दर्शन में नहीं है। इसके एक कारण का हमने उपर अध्ययन किया है कि आकाश के अतिरिक्त धर्म और अधर्म द्रव्यों के होने के कारण केवल आकाश-काल की युति का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं हुआ है। इस तथ्य की गवेषणा के लिए हम दिशाओं का ज्यामिती के आधार से जानने का प्रयत्न करेंगे। 'आकाश और दिशाएं' के अध्याय में हमने दिशाओं की समस्या पर विचार किया है। काल के सन्दर्भ में हम दिशाओं के वर्णन को दोहरायेंगे, जिससे हम काल और दिशा के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

हम पाते हैं कि आचारांग सूत्र में पुनर्जन्म की स्थापना के वर्णन में दिशाओं का उल्लेख हुआ है। आचारांग निर्युक्ति में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है। उसमें चार महादिशाओं अर्थात् उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम बताई गई हैं जिन्हें हम ज्यामिती की भाषा में त्रिआयामी आकाश के दो आयाम मानते हैं क्योंकि उत्तर-दक्षिण दोनों को मिलाने पर एक आयाम (अक्ष) और पूर्व-पश्चिम दोनों को मिलाने पर एक और आयाम (अक्ष) बन जाएगा। ये दो आयाम लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई में कोई दो हो सकते हैं। इन महादिशाओं के वर्णन के बाद ऊर्ध्व और अधो दो दिशाएं और बताई गई हैं जिसे हम आकाश का तीसरा आयाम मानते रहे हैं इसकी मीमांसा आवश्यक है, क्योंकि रुचक-प्रदेशों से निकलने वाली इन महादिशाओं के वर्णन में बताया है कि महादिशाओं का प्रारम्भ आकाश के दो प्रदेशों से शुरू होता है और उनमें दो-दो प्रदेशों की वृद्धि होते-होते वे असंख्य प्रदेशात्मक बन जाती है। लेकिन ऊर्ध्व और अधो दिशा का प्रारम्भ चार प्रदेशों से होता है, फिर उनमें वृद्धि नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि ऊर्ध्व और अधो दिशा से बनने वाला आयाम (अक्ष) महादिशाओं से बनने वाले दो आयामों से भिन्न है। जबकि त्रिआयामी आकाश में तीनों आयामों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता।

आगम साहित्य में छह ही दिशाओं को एक समान मानने के संबंध में यह कहा गया है कि इन छह ही दिशाओं में जीव की गति होती है। गति के अतिरिक्त जीव की अन्य प्रक्रियाएं भी होती हैं। इस संदर्भ में हमें जानना है कि अगर ऊर्ध्व और अधो दिशा केवल चार प्रदेश वाली ही हैं तो असंख्य प्रदेशी जीव उसमें कैसे गति कर सकेंगे? ऊर्ध्व और अधो दिशा से बनने वाले आयाम को तीसरा आयाम न माने तो फिर आकाश का तीसरा आयाम कैसे निर्धारित होगा?

अनुदिशा – तीसरा आयाम

उपर्युक्त संबंध में इन्हीं दिशाओं के वर्णन में उल्लेख हुआ है कि महादिशाओं के साथ अनुदिशा भी होती है जो केवल एक देशात्मक होती है। हम इस अनुदिशा का अगर घन की ज्यामिती के माध्यम से अध्ययन करें तो नए परिणाम मिलते हैं। हम आठ रुचक प्रदेशों का घन बनाएं तो उसके छह चौरस धरातल बनेंगे। इसके अतिरिक्त घन के प्रत्येक बिंदु पर तीन लम्बवत आयाम बनते हैं। घन की इस ज्यामिती में प्रत्येक चौरस धरातल के दो आयाम दूसरे चौरस धरातल के एक आयाम से जुड़ जाते हैं। ऐसे में घन के प्रत्येक बिंदु पर तीसरा आयाम एक देशीय ही बनेगा लेकिन यह तीनों आयाम समान होंगे। इस समानता के आधार पर कहीं-कहीं विपरीत दिशा को विदिशा कह दिया गया है इसे हमें समझना होगा।

हमने घन के चित्र में देखा है कि घन के प्रत्येक बिंदु पर तीन लम्बवत आयाम बनते हैं। उनमें दो आयाम प्रत्येक दिशा में दिखाई देते हैं क्योंकि हम सदैव चपटे धरातल से ही चित्र देखने को आदि हैं। इन दो आयामों के साथ तीसरा आयाम विपरीत दिशा में जाता हुआ दिखाई देता है। यह अनुदिशा का आयाम है। अतः अनुदिशा-विपरीत दिशा है लेकिन विदिशा नहीं। विदिशा वह दिशा है जो दो महादिशाओं के मध्य होती है। यह केवल एक प्रदेशी है अतः उपर्युक्त में वर्णित विपरीत दिशा को हम विदिशा नहीं कह सकते जो एक देशीय है। अतः हम निःसंदेह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनुदिशा ही आकाश का तीसरा आयाम है।

ऊर्ध्व और अधो दिशा के स्थिर आयाम

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद उस आयाम पर फिर चिन्तन करें जो ऊर्ध्व और अधो दिशाओं से बनता है। घन में आठ बिन्दु होते हैं – फिलहाल हम उन्हें रुचक प्रदेश कह रहे हैं। घन को किसी भी समतल चौरस से देखें उसके चार बिन्दु सामने और चार पीछे की ओर होंगे। इन बिन्दुओं से निर्मित दिशा चार प्रदेश की होगी और यह संख्या स्थाई रहेगी, जो त्रिआयामी आकाश के प्रत्येक आयाम के साथ रहेंगी। इस स्थिर आयाम का नाम जैन प्राच्य साहित्य में स्पष्ट रूप से नहीं है। इसे अगर हम काल की उस परिभाषा के संदर्भ में देखें जहाँ कहा गया है कि काल का तिर्यक-प्रचय (तिरछा फैलाव) नहीं होता और काल की पूर्व एवं अपर पर्याय में ऊर्ध्व प्रचय होता है। यह काल की अवधारणा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है क्योंकि आकाश की दिशाओं के प्रकरण में जो ऊर्ध्व-अधो आयाम की चर्चा हुई है, वह काल का ऊर्ध्व-अधो प्रचय ही हो सकता है। इस संभावना के अतिरिक्त अन्य कोई

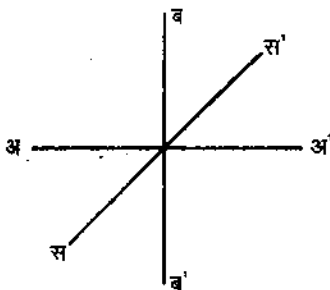
निष्कर्ष संभव प्रतीत नहीं होता। अतः यह संभावित है कि जैन दर्शन में आकाश के तीन आयामों के साथ में चौथा आयाम को स्वीकार किया है, जो ब्रह्माण्ड में स्थिर है। वह काल ही होना चाहिए।

काल की वैज्ञानिक अवधारणाएं

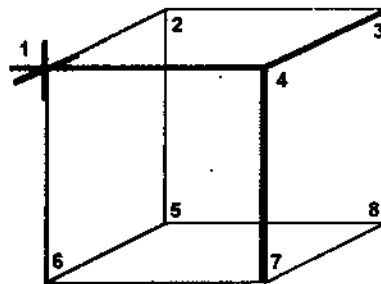
आधुनिक विज्ञान के अनुसार 'वास्तविक समय' निम्नलिखित तीन में से किसी भी एक दिशा-निर्देश से समझा जा सकता है।

- (i) उष्मागतिकी दिशा अर्थात् एन्ट्रॉपी (अव्यवस्था के कारण बढ़ता हुआ ताप) बढ़ रही है वही समय की दिशा है।
- (ii) मानसिक दिशा अर्थात् अतीत से भविष्य की ओर बढ़ती हुई दिशा, काल की दिशा है।
- (iii) ब्रह्माण्डीय समय की दिशा वह है जिधर ब्रह्माण्ड विस्तार ले रहा है।

ये तीनों परिभाषाएं काल के तीर को बढ़ाता हुआ बता रही हैं। ऐसा तर्क दिया जा सकता है कि उपर्युक्त परिभाषाओं में अगर एन्ट्रॉपी घटने लगे या ब्रह्माण्ड संकुचित होने लगे तो दिशा क्या होगी? इसका सीधा उत्तर यही हो सकता है कि इसमें काल उल्टा चलना शुरू करेगा अर्थात् मृत्यु पहले होगी और जन्म बाद में होगा। जैसाकि पुर्नजन्म के समय होता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने पुर्नजन्म की व्यवस्था में काल की वर्तुलीय दिशा कही है। जहां काल लौटता है। विज्ञान की दृष्टि में, काल केवल रेखाकार गति कर रहा है, एक ही दिशा में बढ़ रहा है। यहाँ काल से अवधारणा में जैन दृष्टि और विज्ञान में समानता नहीं है, लेकिन इस संबंध में प्रोफेसर हांकिंग का मत है कि काल्पनिक समय जो दिशा में बंधा नहीं है, उस काल को पॉजिटिव (+) तथा नेगेटिव (-) किया जा सकता है। अगर हांकिंग की गणितीय धारणा प्रकट हो जाती है तो भूत और भविष्य को जाना जा सकेगा।



तीन आयाम (Three dimension)



घन (Cube)

पुद्गल (Matter)

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार विज्ञान जिसको मैटर कहता है, उसे जैन दर्शन में पुद्गल संज्ञा दी है। पुद्गल का अर्थ है मूर्तिक द्रव्य। मूर्त्त वह होता है जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होता है, संस्थान होता है। पुद्गल अखण्ड द्रव्य नहीं है। उसका सबसे छोटा रूप एक परमाणु है और सबसे बड़ा रूप है विश्वव्यापी अचित्त महास्कन्ध। अचित्त महास्कन्ध जैनों का पारिभाषिक शब्द है अतः पाठकगण के लिए इसका विश्लेषण प्रेषित है।

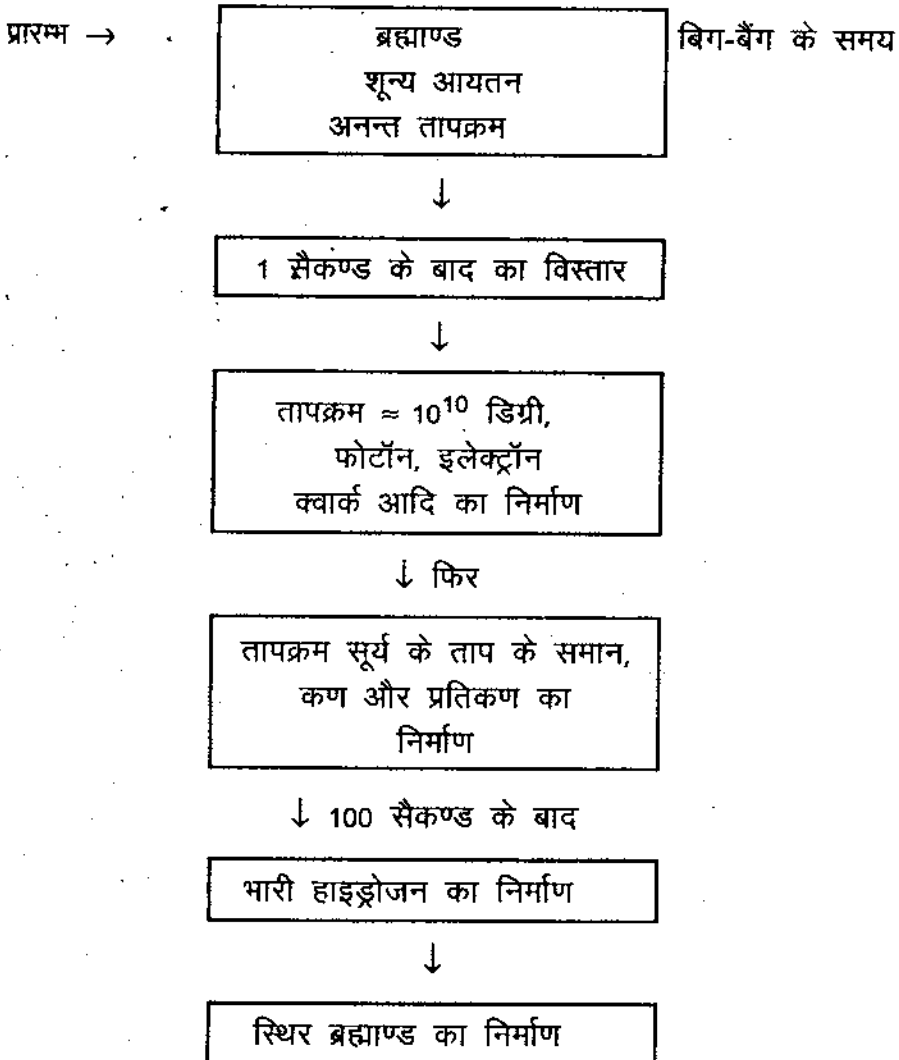
(i) अचित्त महास्कन्ध

अचित्त महास्कन्ध पुद्गलों का एक लोक-व्यापी स्वरूप है जिसका उल्लेख केवली समुद्घात के वर्णन में स्पष्टतया मिलता है। केवली-समुद्घात भी जैनों का पारिभाषिक शब्द है। वे केवल-ज्ञानी जीव जिनका आयुष्य कम रह जाता है लेकिन अन्य कर्म-पुद्गलों की स्थिति अधिक रह जाती है तब उनकी आत्मा का अपना विराट स्वरूप प्रकट होता है। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश (अंश) में आत्मा का प्रत्येक प्रदेश अवगाहित हो जाता है और आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से पदार्थमय-कर्मों से मुक्ति होती है। आत्मा से छूटते हुए कर्म-पुद्गल परस्पर में एकाकार होते हुए अचित्त महास्कन्ध का निर्माण करते हैं। इस प्रकार आत्मा का लोक-व्यापी स्वरूप तथा पुद्गल-पदार्थ का लोक-व्यापी स्वरूप एक ही प्रक्रिया में प्रकट होता है। यह जैन दर्शन की मौलिकता है कि इसमें जीव और अजीव अर्थात् आत्मा और पुद्गल के विराट स्वरूप को समान महत्व दिया है। अन्य दर्शनों में लोक-व्यापी आत्मा, को परमात्मा स्वीकार किया है लेकिन जैन दर्शन के अनुसार आत्मा, केवली समुद्घात के समय लोक-व्यापी होकर, पुनः सिमट कर अपने शरीर आकार में प्रवेश कर जाती है और अगले समय में सिद्ध स्थान को प्रस्थान करती है। यह जैन दर्शन की विशेषता है कि इसमें अनन्त व्यक्तिगत आत्माओं के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने केवली समुद्घात की प्रक्रिया का वर्णन किया है उसका उल्लेख गति प्रकरण के अस्पृशद् गति की व्याख्या में किया गया है। उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि केवली समुद्घात के समय अचित्त महास्कन्ध का निर्माण होता है, किया नहीं जाता

है। विज्ञान की भाषा में इसे विलक्षणता-अपवाद (Singularity) कहा जा सकता है।

विलक्षणता-अपवाद (Singularity)

इस ब्रह्माण्ड के निर्माण के संबंध में विज्ञान जगत में बिग-बैंग का सिद्धान्त प्रसिद्ध है। इसमें विलक्षणता को विज्ञान सम्मत माना गया है। यह आश्चर्यकारी है कि इस ब्रह्माण्ड के बनने के पूर्व या उस समय इसका प्रारम्भिक आकार शून्य समान माना गया है (क्योंकि परम शून्य होता ही नहीं



है) तथा तापक्रम को अनन्त स्वीकार किया गया है। बिग-बैंग के प्रारम्भ के कुछ ही क्षणों में तापक्रम लुढ़क कर 10^{10} डिग्री मात्र रह जाता है और अगले कुछ समय में ही यह ब्रह्माण्ड पदार्थमय बनकर स्थिर हो जाता है। आइंस्टीन के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही अपवाद परिस्थितियाँ हैं जिनका कोई भौतिक नियम नहीं हो सकता। उन्होंने इसे आकाश-काल की विलक्षणता (Singularity) बताया है।

विज्ञान की एक विचारधारा के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हॉट बिग-बैंग मॉडल (Hot Big-Bang Model) के द्वारा समझाई गई है जो कुछ ही सैकण्डों (क्षणों) में सम्पन्न हो जाती है।

केवली समुदघात की प्रक्रिया और ब्रह्माण्ड निर्माण की स्थितियों में यह समानता दिखाई देती है कि यहां कोई भौतिक नियम लागू नहीं होता है अतः दोनों को अपवाद मानना उचित प्रतीत होता है। केवली समुदघात में, काल के सूक्ष्मतम अंश में एक आत्मा समूचे लोक में व्याप्त हो जाती है। बिग-बैंग सिद्धान्त भी यही प्रतिपादित करता है कि कुछ सैकण्डों में शून्य आयतन से ब्रह्माण्ड के अनन्त आयतन का विस्तार हो जाता है। भौतिक शास्त्र का यह नियम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि बिग-बैंग के समय आकाश और काल दोनों शून्य हैं तो पदार्थ अनन्त है। हम जैन दर्शन में ऐसे प्रकरणों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे कि वस्तु का कोई गुण जब अनन्त हुआ है तो निश्चित रूप से उसका दूसरा गुण शून्य हुआ है। शून्य और अनन्त का सम्बन्ध अत्यंत रहस्यमय है और इसको जानने के बाद से हम अनन्त के सही अर्थ को समझ सकते हैं।

पुद्गल के इस विराट रूप को जानने के बाद हम पुद्गल के स्वरूप और उसके सूक्ष्मतम कण परमाणु पर चर्चा करेंगे।

(ii) पुद्गल के प्रकार

पुद्गल के कई प्रकार होते हैं। छोटा-बड़ा, सूक्ष्म-स्थूल, हल्का-भारी, लम्बा-चौड़ा, बन्ध-भेद, प्रकाश-अन्धकार, ताप-छाया, आकार,, आदि। इनको पौद्गलिक मानना जैन तत्त्व ज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। जैन दर्शन की विशेषता यह है कि इसने शब्द को भी पौद्गलिक माना है जबकि अन्य दर्शनों में शब्द को आकाश का गुण अथवा आकाश को शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न माना गया है। आधुनिक विज्ञान ने ध्वनि (Sound) पर विस्तार से कार्य किया है और अब निश्चित हो गया है कि शब्द पदार्थमय है।

शब्द

जैन दर्शन में शब्द को पुद्गल का प्रकार माना है। जैन दार्शनिकों ने शब्द को केवल पौद्गलिक कह कर ही विश्राम नहीं लिया किन्तु उसकी उत्पत्ति, शीघ्रगति, लोक व्यापित्व, स्थायित्व आदि विभिन्न पहलुओं पर पूरा प्रकाश डाला है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आगम साहित्य में वर्णित सुघोष घण्टे की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब वह बजने लगता है तो उसकी ध्वनि की तरंगों का विस्तार होता है। ये ध्वनि की तरंगें असंख्य योजन दूर तक पहुँच जाती हैं और अपनी अनुनादी तरंगों से दूसरे घंटों को भी बजाना शुरू कर देती हैं। इसे आश्चर्यकारी माना जाता रहा है कि शब्द क्षण मात्र में लोक-व्यापी कैसे बन जाता है ? लेकिन आज विज्ञान के द्वारा संभव हो सका है कि वैज्ञानिक साधनों से शब्द हजारों मील की दूरी पर पल भर में भेजा जा सकता है। शब्द की गति संबंधी अवधारणा जैन साहित्य में उस समय से है जब रेडियो, वायरलेस आदि का अनुसंधान नहीं हुआ था। उन्होंने ध्वनि को पुद्गल के कम्पन का परिणाम ही माना जैसा कि आज विज्ञान मान रहा है। विज्ञान ने तो स्पष्ट कर दिया है कि पदार्थ का कम्पन वायु में तरंग पैदा करता है और यही ध्वनि है जो आकाश में विस्तार लेती है।

(iii) परमाणुवाद

आचार्य महाप्रज्ञ ने परमाणुवाद पर टिप्पणी देते हुए लिखा है कि परमाणुवाद के प्रवर्तक के रूप में भारतीय दार्शनिकों में कणाद और पाश्चात्य दार्शनिकों में डेमोक्रीटस का नाम उल्लिखित होता है। डेमोक्रीटस का अस्तित्वकाल ईसा पूर्व 460-370 माना जाता है। कणाद के वैशेषिक सूत्रों की रचना का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है। भगवान महावीर का अस्तित्वकाल ईसा पूर्व 599-527 है। महावीर का परमाणुवाद अथवा पुद्गलवाद कणाद और डेमोक्रीटस से पूर्ववर्ती है, किंतु दर्शन-साहित्य के लेखकों ने इस सच्चाई की उपेक्षा की। इसका हेतु पक्षपातपूर्ण दृष्टि है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसका मूल हेतु जैन साहित्य की अनुपलब्धि अथवा उसका अध्ययन न होना ही है। परमाणु अविभाज्य है — इस सिद्धान्त में जैन दर्शन और वैशेषिक दर्शन एकमत हैं। परमाणु निरवयव है — इस विषय में उन दोनों में मतभेद है। जैन दर्शन में द्रव्य परमाणु को निरवयव और भाव परमाणु को सावयव माना गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणु निरवयव होता है।

वैशेषिक दर्शन में परमाणु के चार वर्गीकरण मिलते हैं — पार्थिव, जलीय, तैजस और वायवीय। जैन दर्शन में पुद्गल-स्कन्ध के आठ वर्गीकरण उपलब्ध हैं जिनका जीव से सम्बन्ध है —

1. औदारिक वर्गणा
2. वैक्रिय वर्गणा
3. आहारक वर्गणा
4. तैजस वर्गणा
5. कार्मण वर्गणा
6. मनो वर्गणा
7. वचन वर्गणा
8. श्वासोच्छ्वास वर्गणा।

परमाणुवाद पुद्गलवाद का एक भाग है। जैन दर्शन में जीव और पुद्गल के संबंध का व्यापक विवेचन है।

परमाणु समुदय

यह दृश्य जगत-पौद्गलिक जगत परमाणु संघटित है। परमाणुओं से स्कन्ध बनते हैं और स्कन्धों से स्थूल पदार्थ पुद्गल की परिणति दो प्रकार की होती है।

1. सूक्ष्म
2. बादर

आचार्य महाप्रज्ञ ने सूक्ष्म और बादर का स्पष्ट भेद बताया है कि सूक्ष्म भार-रहित पुद्गल है और बादर भार-सहित पुद्गल है। जैन दर्शन का पुद्गल संबंधी विश्लेषण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार सूक्ष्म पुद्गल चार स्पर्श वाला है जो चतुःस्पर्शी कहलाता है तथा बादर पुद्गल अष्टस्पर्शी है जो आठ स्पर्श वाला कहलाता है।

परमाणु के स्पर्श

जैन आगम साहित्य में परमाणु में केवल दो स्पर्श ही बताए हैं। परमाणु में स्निग्ध और रुक्ष में से एक गुण तथा शीत और उष्ण में से एक गुण होता है। इस कारण जैन दृष्टि से स्निग्ध, रुक्ष तथा शीत, उष्ण ये चार मौलिक स्पर्श हैं। लघु, गुरु तथा मृदु, कठोर ये द्वितीयक स्पर्श हैं। इसके वर्णन में उल्लेखित है कि रुक्ष स्पर्श की बहुलता से लघु स्पर्श प्रकट होता है और

स्निग्ध की बहुलता से गुरु स्पर्श, शीत और स्निग्ध स्पर्श की बहुलता से मृदु स्पर्श और उष्ण तथा रुक्ष की बहुलता से कठोर स्पर्श बनता है। लघु और गुरु के स्पर्श पुद्गल-पदार्थ में भार को उत्पन्न करते हैं। जैनों ने भार को पुद्गल का मौलिक गुण नहीं माना है, यह पुद्गल का द्वितीयक गुण माना गया है। आगम साहित्य का यह वर्णन चतुःस्पर्शी पुद्गल और अष्टस्पर्शी पुद्गलों के गुण और व्यवहार में अन्तर करता है।

विज्ञान के क्षेत्र में अब तक की मान्यता यह है कि पदार्थ का मौलिक गुण भार है। भौतिक शास्त्र की विकास यात्रा में कुछ ऐसे कणों का पता लगा है जो भारहीन हैं। जैसे फोटॉन, ग्रेविटॉन और ग्लूऑन। लेकिन पदार्थ की भारहीनता संबंधी ज्ञान अपनी प्रारम्भिक स्थिति में है। जब भारहीन कणों को मान्यता मिलेगी तब भौतिक शास्त्र की मान्यताओं में एक क्रान्ति आएगी और कई उलझे हुए प्रश्न सुलझ जाएंगे।

वैज्ञानिक हाइजनबर्ग ने स्थूल और सूक्ष्म के व्यवहार के भेद को महत्त्वपूर्ण कहा है। उनके अनुसार स्थूल पदार्थ के नियम, सूक्ष्म पदार्थ पर लागू नहीं होते क्योंकि सूक्ष्म पदार्थ के व्यवहार को मापने के लिए सूक्ष्म उपकरण होने चाहिए। उन्होंने इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया है कि किसी थर्मामीटर से पानी के गिलास में पानी का तापक्रम मापा जा सकता है लेकिन पानी की एक बूंद का तापक्रम थर्मामीटर से नहीं मापा जा सकता है क्योंकि वह बूंद थर्मामीटर पर ही लग जाएगी। इसका निष्कर्ष यह रहा कि सूक्ष्म पदार्थ के माप के लिए सूक्ष्म उपकरण होने चाहिए।

(iv) परमाणु का स्वरूप

परमाणु, पुद्गल का सूक्ष्मतम अंश है। जैन सिद्धान्त के अनुसार यह अछेद्य, अभेद्य, अगाह्य, अदाह्य और निर्विभागी है। आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थी को परमाणु के उपलक्षणों में संदेह हो सकता है, कारण कि विज्ञान के सूक्ष्म यन्त्रों में परमाणु की अविभाज्यता सुरक्षित नहीं है। विज्ञान सम्मत परमाणु टूटता है। इसकी तुलना में आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन सूत्र अनुयोग द्वार में वर्णित परमाणु-द्विविधता का उल्लेख किया है।

1. सूक्ष्म परमाणु
2. व्यावहारिक परमाणु

वे लिखते हैं कि सूक्ष्म परमाणु का स्वरूप वही है, जिसका सैद्धान्तिक वर्णन हुआ है लेकिन व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के समुदाय से बनता है। वस्तुवृत्त्या वह स्वयं परमाणु पिण्ड है, फिर भी साधारण दृष्टि

से ग्राह्य नहीं होता और साधारण अस्त्र-शस्त्र से तोड़ा नहीं जा सकता इसलिए उसकी परिणति सूक्ष्म ही मानी गई है। अतः विज्ञान सम्मत परमाणु की तुलना व्यावहारिक परमाणु से करने का औचित्य है क्योंकि व्यावहारिक परमाणु टूटने की बात एक सीमा तक जैन दृष्टि को स्वीकार्य है।

भौतिक शास्त्रियों ने पदार्थ के सूक्ष्मतम अंश को परमाणु कहा है। लेकिन यह परमाणु इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन कणों से संयुक्त माना गया है। नई खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि क्वार्क, पदार्थ का सूक्ष्मतम अंश है। अब तक ज्ञात विश्व के सभी पदार्थों के परमाणुओं में दो या तीन क्वार्क कण (Particle) ही पाए जाते हैं। इन पार्टिकल्सों में ज्यादातर या तो एक क्वार्क और एक एंटीक्वार्क वाले मेसॉन होते हैं या फिर तीन एंटीक्वार्क वाले बेरियान्स। वर्तमान में एक नए कण (Particle) की खोज हुई है जिसमें पांच क्वार्क मौजूद हैं। वर्तमान में यह कहा जा सकता है कि भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में पदार्थ के सूक्ष्मतम कण संबंधी खोज अभी अन्तिम स्थिति में नहीं है। अतः यह मानना उचित है कि विज्ञान सम्मत परमाणु की जैनों के व्यावहारिक परमाणु से ही तुलना की जा सकती है।

(v) परमाणु के गुण

सूक्ष्म परमाणु और व्यावहारिक परमाणु दोनों में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ये चार गुण और अनन्त पर्याय होते हैं। एक परमाणु में एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श (शीत-उष्ण, स्निग्ध-रुक्ष, इन युगलों में से एक-एक) होते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने पुद्गल में होने वाले परिवर्तनों की विशेषता बताते हुए लिखा है कि पर्याय की दृष्टि से एक गुण वाला परमाणु अनन्त गुण वाला हो जाता है और अनन्त गुणवाला परमाणु एक गुण वाला हो जाता है। एक परमाणु में वर्ण से वर्णान्तर, गन्ध से गन्धान्तर, रस से रसान्तर और स्पर्श से स्पर्शान्तर होना जैन-दृष्टि सम्मत है।

यहां यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि जब यह कहा जाता है कि परमाणु जो एक गुण काला है, वह स्वतः अनन्त गुण काला हो सकता है, तो इसका क्या मतलब है? स्वतः ही परिवर्तन होने का क्या अर्थ है, क्योंकि पदार्थ जगत में सभी परिवर्तन ऊर्जा के आदान-प्रदान से ही संभव है। अतः यह मानना उचित लगता है कि जब कभी वस्तु का एक गुणधर्म का गुणांश बढ़ता है तो उसके दूसरे गुण के गुणांश कम हो जाते हैं।

इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जाता है कि जब कभी वस्तु का कोई एक गुण-धर्म अनन्त होने लगता है तो उसका कोई दूसरा गुण-धर्म शून्य होने लगता है।

उपर्युक्त कथन को हमें ध्यानपूर्वक समझना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि पुद्गल-स्कन्ध के पांच वर्णों में अगर काले रंग का गुणांश बढ़ता है तो अन्य किसी वर्ण का गुणांश स्वतः ही घट जाता है। इसको हम गणित के निम्न समीकरण से भी समझ सकते हैं। किसी संख्या को जब शून्य से भाग (Divide) किया जाता है तो उसका फल अनन्त (Infinity) होता है।

$$\text{संख्या} / \text{शून्य} = \text{अनन्त}$$

$$\text{उदाहरणतः } 1/0 = \infty$$

उपर्युक्त नियम के आधार से पुद्गल के गुणों में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं -

(1) व्यावहारिक परमाणु अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं का समुदाय है। अतः इसमें पाँचों वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श होते हैं। इन गुणों में जो प्रमुख होते हैं वे प्रत्यक्ष हो जाते हैं, शेष गौण रूप में उपस्थित रहते हैं। अतः जब कोई एक वर्ण के गुण में वृद्धि होती है तो दूसरे वर्ण के गुणों की हानि हो जाती है। इसे ही वर्ण से वर्णान्तर कहना चाहिए। इसी प्रकार गंध, रस और स्पर्श में जब कोई एक गुण अनन्त की ओर जाता है तो उसका दूसरा गुण-धर्म शून्य होने लगता है। यह हमें सदैव ध्यान में रखना है कि कभी कोई गुण शून्य बनकर रहता नहीं अतः उसे शून्य समान कहना चाहिए। इसी प्रकार कोई भी गुण अन्तिम अनन्त बनता नहीं। आगमों में अनन्त के नौ भेदों में अन्तिम का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है।

(2) लेकिन सूक्ष्म परमाणु की स्थिति, व्यावहारिक परमाणु से भिन्न है। सूक्ष्म परमाणु में केवल एक गन्ध, एक वर्ण, एक रस और दो स्पर्श ही होते हैं। स्पर्श के संबंध में कठिनाई नहीं है क्योंकि इसमें जघन्यतः दो स्पर्श होते ही हैं अतः यह संभव है कि एक स्पर्श जब बढ़ता है तो दूसरे स्पर्श का गुण-धर्म कम होने लगता है। जैसे कोई परमाणु अगर शीत-स्निग्ध स्पर्श वाला है या उष्ण-स्निग्ध स्पर्श वाला है तो इनमें कोई एक गुण बढ़ेगा तो दूसरे गुण-धर्म के अंश कम हो जाएंगे। परम सूक्ष्म परमाणु में जहाँ एक वर्ण, एक गंध और एक रस ही होता है ऐसी स्थिति में यह मानना न्याय संगत है कि

अगर सूक्ष्म परमाणु का वर्ण संबंधी गुण, एक ही गुणांश हो और वह अनन्त गुण में परिवर्तित होता हो तो परमाणु का कोई दूसरा गुण-धर्म (गंध, रस या स्पर्श) शून्य की ओर परिवर्तित होना चाहिए। इसी प्रकार एक गुणांश रस वाला परमाणु अगर अनन्त गुणांश रस वाला बनता है तो उसका कोई दूसरा धर्म अर्थात् वर्ण, स्पर्श, गंध को शून्य गुण में परिवर्तित होना होगा। अतः इसका अभिप्राय यह हुआ कि वर्ण से वर्णान्तर ही हो, यह आवश्यक नहीं है अपितु गंध, रस और स्पर्श में भी गुणों का आदान-प्रदान परस्पर में संभव होना चाहिए।

इन्द्रिय ज्ञान और सीमाएं

हमें ज्ञात है कि सभी इन्द्रियां अपने अपने विषयों को ग्रहण करती हुई, अन्य इन्द्रियों के विषय को भी ग्रहण कर सकती हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार प्रकृति में ऐसी कोई व्यवस्था है कि मनुष्य का ज्ञान तो बहुत विशाल है परंतु इन्द्रियां इस ज्ञान में से थोड़े से ज्ञान को स्वीकार करती हैं। इन्द्रिय-ज्ञान में देखने, सुनने और सूंघने की सीमित शक्ति है, सीमा से आबद्ध है। प्रत्येक इन्द्रिय ने व्यवस्था कर ली है कि वह निश्चित आवृत्ति (frequency) पर ही अपना कार्य करेगी। हम जानते हैं कि आंख बहुत निकट की वस्तु को नहीं देख पाती तथा बहुत दूर की वस्तु भी स्पष्ट नहीं देख पाती। आंख एक निश्चित दायरे (range) में ही कार्य करती है। इसी प्रकार श्रोत इन्द्रिय की सुनने की शक्ति भी सीमित है। इस संबंध में वैज्ञानिक धारणा यह है कि वस्तु (विषय) की आवृत्ति संख्या के आधार से ही इन्द्रिय विषय को ग्रहण करती है। जैसे मनुष्य के कान द्वारा 20 से 20,000 आवृत्ति संख्या वाले स्वरों को सुना जा सकता है। इन्हें स्वरक (Tones) कहा जाता है। 20 से कम और 20,000 से अधिक आवृत्ति वाले संख्या स्वर कान द्वारा सुनाई नहीं पड़ते। इन्हे क्रमशः अधः स्वरक (Under Tones) और अधिक स्वरक (Over Tones) कहा जाता है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियों की शक्ति, न्यूनतम और अधिकतम आवृत्ति संख्या (तरंग गुण) के बीच विषय ग्रहण करने की होती है। अतः विषय ग्रहण के लिए पदार्थ की आवृत्ति संख्या महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिकों ने इन्द्रियों और उनके विषय ग्रहण के संबंध में नई जानकारी प्रदान की है। आचार्य महाप्रज्ञ इसी संबंध में उल्लेख करते हैं कि प्रकाश, शब्द और रंग के स्वरूप पर विज्ञान की दृष्टि से विचार करना चाहिए।

(vi) प्रकाश, शब्द और रंग

प्रकाश, शब्द और रंग — ये तीन हैं। हम प्रकाश को अलग मानते हैं, शब्द को अलग मानते हैं और रंग को अलग मानते हैं। किंतु कोई वैज्ञानिक इनको अलग नहीं मानता। शब्द अर्थात् ध्वनि और रंग अर्थात् वर्ण। ये दोनों प्रकाश के ही प्रकम्पन है। भिन्न-भिन्न आवृत्तियों (फ्रीक्वेंसी) पर ये प्रकम्पन बनते हैं और प्रकाश, ध्वनि या वर्ण के रूप में गृहीत होते हैं। वर्ण (रंग) प्रकाश का उनपचासवां प्रकम्पन है। ध्वनि भी प्रकाश की ही अमुक फ्रीक्वेंसी है, प्रकम्पन है। ध्वनि और रंग दो नहीं हैं। रंग को सुना जा सकता है, ध्वनि को देखा जा सकता है। रंग को सुनने का माध्यम है “ओरोड्राल” मशीन। आवृत्तियों का अंतर करने पर रंग सुनाई देने लगता है और ध्वनि दिखाई देने लगती है। भिन्न-भिन्न लगने वाली वस्तुएं एक बन जाती हैं। हमारी इन्द्रिय भिन्न-भिन्न प्रकार के विषयों को ग्रहण करती है। आंख देखती है, कान सुनता है, नाक सूंघती है, जीभ चखती है और त्वचा छूती है। यह बहुत स्थूल विभाजन है। यदि सूक्ष्म में जाए तो आंख का काम केवल देखना ही नहीं है, वह सुन भी सकती है, चख भी सकती है और सूंघ भी सकती है। जीभ का काम केवल चखना ही नहीं है, वह सुन भी सकती है और अन्य इन्द्रियों का कार्य भी कर सकती है।

आयुर्वेद का दृष्टिकोण

आयुर्वेद के महान आचार्य कश्यप कौमारभृत्य चिकित्सा के क्षेत्र में प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। उन्होंने एक बात लिखी है — जैसे हमारे हाथ दो होते हैं वैसे ही हमारी जीभ भी दो होती है। वह दो भागों में बंटी होती है। जीभ के एक भाग का काम है चखना और दूसरे भाग का काम है सुनना। उनका कहना है — कान सुनता नहीं है। वह तो केवल ध्वनि को ग्रहण करता है। वह तो केवल रिसेप्टिव है। ग्रहण का माध्यम मात्र है। वह ध्वनि को ग्रहण करता है और जीभ तक पहुंचा देता है। वास्तव में जीभ ही सुनती है। उन्होंने अपने मत के समर्थन में एक महत्त्वपूर्ण तर्क दिया। एक आदमी बहरा है, यह अनिवार्य नहीं है कि वह गूंगा भी हो। किंतु जो गूंगा है, उसका बहरा होना अनिवार्य है। जो जीभ से बोल नहीं सकता, वह गूंगा होता है और जो कान से सुन नहीं सकता, वह बहरा होता है। जो बहरा है वह बोल भी सकता है, किंतु जो गूंगा है, वह बोल नहीं सकता तो सुन भी नहीं सकता। जिसकी जीभ विकृत है, जो बोल नहीं सकता, गूंगा है, वह निश्चित ही बहरा होगा।

यह अटल नियम है। उन्होंने बताया — गूंगा व्यक्ति इसलिए बहरा होता है कि उसकी जीभ विकृत है, वह सुन नहीं पाती। कान ठीक हैं, वे ध्वनि को ग्रहण कर जीभ तक पहुंचा देते हैं, किंतु जीभ पकड़ नहीं पाती, इसलिए आदमी सुन नहीं पाता। इसलिए जो गूंगा है, उसका बहरा होना जरूरी है और जो गूंगा नहीं है, जीभ में सुनने की शक्ति है, पर जिसका कान विकृत हो जाता है, वह ध्वनि को जीभ तक पहुंच नहीं पाता, इसलिए वह सुन नहीं सकता।

आज के शरीर-शास्त्रियों ने भी यह माना है कि सुनने की क्षमता जितनी दांतों की हड्डियों में है, उतनी कान में नहीं है। कान की अपेक्षा दांत अच्छा सुन सकते हैं। आज तो यह भी प्रयत्न हो रहा है कि विश्व में कोई बहरा नहीं रहे। दांत की हड्डियों पर एक यंत्र फिट कर दिया जाएगा और बहरा आदमी सुनने लग जाएगा। जीभ सुन सकती है। दांत सुन सकते हैं यह बहुत निकट की बात है।

शरीर का 'करण' बनना

जैनाचार्यों ने एक यौगिक विभूति का उल्लेख किया है। उसकी संज्ञा है — 'संभिन्नस्रोतोलब्धि'। यह एक ऐसी विभूति है, जिससे सारा शरीर 'करण' बन जाता है, इन्द्रिय बन जाता है। फिर यह स्थूल विभाग की बात व्यर्थ हो जाती है कि आंख ही देख सकती है, कान ही सुन सकता है आदि-आदि। इस विभूति के प्रकट होने पर शरीर का प्रत्येक अवयव पांचों इन्द्रियों का काम करने लग जाता है। समूचा शरीर देख सकता है, समूचा शरीर सुन सकता है। कुछ लड़कियां हैं जो अंगुलियों से पढ़ सकती हैं। आंख का काम अंगुलियों से करती हैं। यह तथ्य अनेक वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाले हुए है। प्रत्यक्ष को नकार नहीं सकते। वे यह नहीं कह सकते कि अंगुलियों से नहीं पढ़ा जा सकता। किंतु क्यों और कैसे पढ़ा जाता है — इसकी व्याख्या नहीं कर सकते। यह विषय अभी विज्ञान से परे है। वैज्ञानिक इसे समझने का प्रयास कर रहे हैं। किंतु यह तथ्य हजारों वर्ष पूर्व स्वीकृत हो चुका है कि समूचा शरीर हर इन्द्रिय का काम कर सकता है। एक इन्द्रिय से पांचों इन्द्रियों का काम लिया जा सकता है या समूचे शरीर से किसी भी इन्द्रिय का काम लिया जा सकता है।

इससे लेखक की यह थ्योरी (धारणा) पुष्ट होती है कि वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के गुणांशों में परस्पर स्थानान्तरण होना सही प्रतीत होता है।

(vii) पुद्गल की काल-स्थिति

पुद्गल की काल-स्थिति के बारे में बताया गया है कि अपने स्वरूप में पुद्गल यदि उसी रूप में रहे तो जघन्यतः (minimum) एक समय और उत्कृष्टतः (maximum) असंख्य काल तक रह सकता है। इसी आगम वाक्य के अनुसार आचार्य महाप्रज्ञ का मानना है कि भगवान महावीर की वाणी के अंश आज भी कहीं सुरक्षित रूप में उपलब्ध हो सकते हैं क्योंकि शब्द पुद्गल हैं और पुद्गल अपने स्वरूप में असंख्य काल तक रह सकता है। वैज्ञानिक भी ऐसे उपकरणों की खोज में व्यस्त हैं जिसकी सहायता से आकाश में व्याप्त शब्दों में से प्राचीन संगीत व ध्वनियों को दूँढ़ पाने व उसका पुनः निर्माण करने में सफल हो सके।

(viii) परमाणु की अतीन्द्रियता

परमाणु इन्द्रिय का विषय नहीं है अतः वह अतीन्द्रिय है। परमाणु मूर्त होते हुए भी दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि वह सूक्ष्म है। केवल पारमार्थिक प्रत्यक्ष से देखा जा सकता है।

परमाणु के अतिरिक्त भी अनेक चतुःस्पर्शी स्कन्ध हैं जिनको देखा नहीं जा सकता। इस संबंध में वैज्ञानिक निष्कर्ष हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। विज्ञान के अनुसार हम उसी पदार्थ को देख पाते हैं जिसका आकार दृश्यमान किरणों (Visible rays) की तरंग-लम्बाई से बड़ा होता है। परमाणु का आकार, दृश्यमान किरणों की तरंग लम्बाई से छोटा है अतः हम इसे कभी नहीं देख पायेंगे।

"Since the wavelength of light is much larger than the size of an atom we can not hope to "look" at the parts of an atom in the ordinary way.

हम जानते हैं कि बिल्ली जैसे कुछ जानवर रात के अंधेरे में भी देख लेते हैं, ऐसा क्यों होता है ? अंधेरे में दृश्यमान किरणें नहीं होती किन्तु दृश्यमान किरणों से कम तरंग लम्बाई की अल्ट्रा-वायलेट किरणें होती हैं। इन किरणों को बिल्ली की आँख ग्रहण कर लेती है और उससे देख पाती है। अतः इन्द्रिय संवेदन में तरंगों की आवृत्ति संख्या का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

पाठकों के लिए दृश्य किरणों की तरंग दैर्घ्य को जानना महत्त्वपूर्ण है। हम वे ही पदार्थ देख पाते हैं जिनका आकार दृश्य किरणों की तरंग दैर्घ्य से बड़ा होता है।

प्रकाश की तरंगों की स्थिति निम्न प्रकार से दर्शाई गई है।

रेडियो तरंगे	इन्फ्रा रेड	दृश्य किरणें 4×10^{-5} to 10×10^{-5} तक	अल्ट्रा वायलेट	एक्स रे और गामा किरणें	कास्मिक तरंगे
--------------	-------------	---	----------------	------------------------	---------------

10^6 से.मी. 10^{-10} से.मी.

पुद्गल-पदार्थ का विषय अत्यन्त विस्तार वाला है। यहां केवल वे ही विषय चर्चित किए गए हैं जो आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्य में विज्ञान के संदर्भ में उपलब्ध हैं।



आत्म-तत्त्व

भारतीय दर्शन में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण दिए हैं। यद्यपि आत्मा, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है फिर भी उसका चिन्तन मनन, मन्थन और दर्शन इतना हुआ है कि आत्मवाद भारतीय दर्शन का प्रधान अंग बन गया। जैन धर्म का प्रथम सत्य, आत्मा है और उसका प्रारम्भ बिन्दु आत्मा का साक्षात्कार है। इस कारण जैन दर्शन आत्मवादी कहलाता है। मैं हूँ, मैं शरीर से भिन्न हूँ, इस सत्य को स्वीकार कर, तीन अन्य वादों को स्वीकार किया है। वे हैं — कर्मवाद, लोकवाद और क्रियावाद। आचारांग सूत्र के प्रारम्भ में चारों महत्त्वपूर्ण वादों का प्रतिपादन हुआ है जो परस्पर में आत्मवाद के पूरक है। आचार्य महाप्रज्ञ ने क्रियावाद की चर्चा करते हुए लिखा है कि क्रियावादी का निरूपण यह रहा है कि आत्मा के अस्तित्व में सन्देह मत करो। आत्मा अमूर्त है, इसलिए इन्द्रिय-ग्राही नहीं है।

आधुनिक चिन्तन

महाप्रज्ञजी ने आधुनिक चिन्तन प्रेषित करते हुए लिखा है कि आत्मा और परलोक की अन्वेषक परिषद के सदस्य सर ओलिवर लॉज ने आत्म-अन्वेषण का मूल्यांकन करते हुए बताया है कि "हमें भौतिक ज्ञान के पीछे पड़ कर पारभौतिक विषयों को नहीं भूल जाना चाहिए। चेतन जड़ का कोई गुण नहीं परन्तु उसमें समाई हुई अपने को प्रदर्शित करने वाली एक स्वतन्त्र सत्ता है। प्राणीमात्र के अन्तर्गत एक ऐसी वस्तु अवश्य है जिसका शरीर के नाश के साथ अन्त नहीं हो जाता। भौतिक और पारभौतिक संज्ञाओं के पारस्परिक नियम क्या हैं, इस बात का पता लगाना अब अत्यन्त आवश्यक हो गया है।"

वैज्ञानिक प्रयोग

इस सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक प्रयोग का उद्धरण देते हुए कहा है कि वैज्ञानिकों ने आज ऐसे उपकरण बनाए हैं जिनके माध्यम से मृत्यु के समय स्थूल शरीर से निकलनी वाली आत्मा का फोटो लिया जा सकता है। उस समय आत्मा अकेली नहीं होती। जैन दृष्टि से संसारी आत्मा, सूक्ष्म शरीर के साथ होती है। वैज्ञानिक मानते हैं कि वह आत्मा का फोटो है लेकिन आत्मा का सूक्ष्म फोटो नहीं लिया जा सकता। यह फोटो सूक्ष्म शरीर के हो

सकते हैं। जैन दृष्टि से आत्मा का लक्षण चैतन्य है, उपयोग है। आत्मा अभौतिक है लेकिन संसारी आत्मा भौतिक कर्मों से बंधी है। इसे यों भी कहा जाता है कि जीव स्वरूप से अमूर्त और चैतन्यमय है, किंतु प्रत्येक संसारी जीव शरीरधारी है। शरीरधारी होने के कारण वह मूर्त है, उसका चैतन्य अदृश्य है। कर्म मुक्त होने पर आत्मा, सिद्ध हो जाती है। आत्म तत्व का दार्शनिक विवेचन जैन साहित्य में उपलब्ध है।

प्राचीन दार्शनिक प्रश्न

एक प्राचीन प्रश्न है कि आत्मा और कर्म का संबंध कैसे हो सकता है, जब कि आत्मा चेतन और अरूप है और कर्म-शरीर अचेतन और सरूप। इसके उत्तर में कहा गया है कि सूक्ष्म शरीर और आत्मा का संबंध अपश्चानुपूर्वी है। अपश्चानुपूर्वी उसे कहा जाता है जहाँ पहले पीछे का कोई विभाग नहीं होता—पौर्वापर्य नहीं निकाला जा सकता। तात्पर्य यह हुआ कि उनका संबंध अनादि है। आचार्य महाप्रज्ञ ने एक अन्य स्पष्टकीरण में कहा है कि 'अमूर्त के साथ मूर्त का संबंध नहीं हो सकता।' वे कहते हैं कि यह तर्क प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है, कि अमूर्त आत्मा का मूर्त शरीर के साथ संबंध की स्थिति जैन दर्शन के सामने उलझन भरी है किन्तु वस्तुवृत्त्या वह उससे भिन्न है। जैन दृष्टि के अनुसार अरूप का रूप-प्रणयन नहीं हो सकता, लेकिन संसारी आत्माएं अरूप नहीं होती। आत्मा का विशुद्ध रूप अमूर्त होता है किन्तु संसार दशा में उसकी प्राप्ति नहीं होती। उनकी अरूप-स्थिति मुक्त दशा में बनती है। उसके बाद उनका सरूप के घात-प्रत्याघातों से कोई लगाव नहीं होता।

विविध प्रयोग

आत्मा, मन, मस्तिष्क और इन्द्रिय के संबंध में विज्ञान मत को प्रस्तुत करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने विविध प्रयोगों का उल्लेख किया है कि -

(i) मस्तिष्क और आत्मा

(अ) वैज्ञानिक मत - बहुत से पश्चिमी वैज्ञानिक आत्मा को मन से अलग नहीं मानते। उनकी दृष्टि में मन और मस्तिष्क क्रिया एक है। दूसरे शब्दों में मन और मस्तिष्क पर्यायवाची शब्द हैं। पावलोफ ने इसका समर्थन किया है कि स्मृति मस्तिष्क (सेरेब्रम) के करोड़ों सेलों (cells) की क्रिया है। बर्गसां जिस युक्ति के बल पर आत्मा के अस्तित्व की आवश्यकता अनुभव करता है, उसके मूलभूत तथ्य स्मृति को 'पावलोफ' मस्तिष्क के सेलों (cells) की क्रिया बतलाता है। फोटो के निगेटिव प्लेट में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब

खींचे हुए होते हैं, उसी प्रकार मस्तिष्क में अतीत के चित्र प्रतिबिम्बित रहते हैं। जब उन्हें तदनुरूप सामग्री द्वारा नई प्रेरणा मिलती है तब वे जागृत हो जाते हैं, या निम्न स्तर से ऊपरी स्तर में आ जाते हैं, इसी का नाम स्मृति है। इसके लिए भौतिक तत्त्वों में पृथक अन्वयी आत्मा मानने की कोई आवश्यकता नहीं।

(ब) **दार्शनिक मत** — आचार्य महाप्रज्ञ ने इस वैज्ञानिक मान्यता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि वैज्ञानिक, मन के विषय में ही नहीं, मस्तिष्क के बारे में भी अभी संदिग्ध है। मस्तिष्क को अतीत के प्रतिबिम्बों का वाहक और स्मृति का साधन मानकर स्वतन्त्र चेतना का लोप नहीं किया जा सकता। मस्तिष्क फोटो के नेगेटिव प्लेट की भांति वर्तमान के चित्रों को खींच सकता है, सुरक्षित रख सकता है, इस कल्पना के आधार पर उसे स्मृति का साधन भले ही माना जाए किन्तु उस स्थिति में वह भविष्य की कल्पना नहीं कर सकता। उसमें केवल घटनाएं अंकित हो सकती हैं, पर उनके पीछे छिपे हुए कारण स्वतन्त्र चेतनात्मक व्यक्ति का अस्तित्व माने बिना नहीं जाने जा सकते। प्लेट की चित्रावली में नियमन होता है। प्रतिबिम्बित चित्र के अतिरिक्त उसमें और कुछ भी नहीं होता। यह नियमन मानव मन पर लागू नहीं होता। वह अतीत की धारणाओं के आधार पर बड़े-बड़े निष्कर्ष निकालता है, भविष्य का मार्ग निर्णीत करता है। इसलिए इस दृष्टान्त की भी मानस क्रिया में संगति नहीं होती।

मस्तिष्क और आत्मा का वैज्ञानिक मत और दार्शनिक मत इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि विज्ञान मस्तिष्क को आत्मा मानता है लेकिन दर्शन पक्ष इसे स्वीकार नहीं करता।

(ii) इन्द्रिय और आत्मा

(अ) **वैज्ञानिक मत** — रूस के जीव विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान पावलोक ने एक कुत्ते का दिमाग निकाल लिया। उससे वह शून्यवत हो गया। उसकी चेष्टाएं स्तब्ध हो गईं। वह अपने मालिक और खाद्य तक को नहीं पहचान पाता। इस प्रयोग पर उन्होंने यह बताया कि दिमाग ही चेतना है। उसके निकल जाने पर प्राणी में कुछ भी चैतन्य नहीं रहता।

(ब) **दार्शनिक मत** — उपर्युक्त प्रयोग के सम्बन्ध में आचार्य महाप्रज्ञ ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि यहाँ सिर्फ इतना समझना ही पर्याप्त होगा कि दिमाग चेतना का उत्पादक नहीं, किन्तु वह मानस प्रवृत्तियों के उपयोग का साधन है। इस विषय में इतना जान लेना पर्याप्त है कि बहुत सारे ऐसे भी प्राणी हैं जिनके मस्तिष्क होता ही नहीं। वनस्पति भी आत्मा है पर उसके दिमाग नहीं होता। उसमें शोक, हर्ष, भय, आदि प्रवृत्तियाँ हैं। जैन दृष्टि से चेतना का सामान्य लक्षण स्वानुभव है। आज के वैज्ञानिक अगर चेतना का आनुमानिक एवं स्वसंवेदनात्मक अन्वेषण करे तो इस गुत्थी को अधिक सरलता से सुलझा सकते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हमारा पूरा शरीर चुम्बकीय क्षेत्र है जो पांच इंद्रियों के केन्द्रों में अधिक चुम्बकीय बन सकता है। जब वह पूरा चुम्बकीय बन जाता है तब अतीन्द्रिय चेतना प्राप्त होती है — अवधि ज्ञान आदि ज्ञान प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्कीय प्रक्रिया को समझाते हुए कहते हैं कि मस्तिष्क का संबंध है विद्युत के आवेशों से और रसायन से। रसायन बनते हैं आहार से। जैसा आहार वैसा रसायन, जैसा रसायन वैसी मस्तिष्कीय क्रिया। यह एक पूरा चक्र है। अतः **अध्यात्म केवल धर्म का ही विज्ञान नहीं है वह प्रकृति की सूक्ष्मतम गुत्थियों को सुलझाने वाला विज्ञान है।**

जैन दृष्टि को स्पष्ट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि मन और मस्तिष्क की भांति इन्द्रिय भी आत्मा नहीं है। आंख, कान आदि नष्ट होने पर भी उनके द्वारा विज्ञान विषय की स्मृति रहती है इसका कारण यही है कि आत्मा देह और इन्द्रिय से भिन्न है। यदि ऐसा न होता तो इन्द्रिय के नष्ट होने पर उनके द्वारा किया हुआ ज्ञान भी चला जाता। इससे प्रमाणित होता है कि ज्ञान का अधिष्ठान इन्द्रिय से भिन्न है।

(iii) **आहार और जीव — विज्ञान के प्रयोग**

(अ) लुई पास्चर ने निम्न परीक्षण किया, एक कांच के गोले में उन्होंने कुछ विशुद्ध पदार्थ रख दिया और उसके बाद धीरे-धीरे उसके भीतर से समस्त हवा निकाल दी। इस अवस्था में रखे जाने पर देखा गया कि चाहे जितने दिन भी रखा जाये, उसके भीतर इस प्रकार की अवस्था में किसी प्रकार की जीव-सत्ता प्रकट नहीं होती, उसी पदार्थ को बाहर निकाल कर रख देने पर कुछ दिनों

में ही उनमें कीड़े, मकोड़े या क्षुद्राकार बीजाणु दिखाई देने लगते हैं। इससे यह सिद्ध किया गया कि बाहर की हवा में रहकर ही बीजाणु या प्राणी का अण्डा इस पदार्थ में जाकर उपस्थित होते हैं।

- (ब) इसी प्रकार मिलर ने भी डा. यूरे के अनुसार जीवन की उत्पत्ति के समय जो परिस्थितियां थी, वे ही उत्पन्न कर दी। एक सप्ताह के बाद उसने अपने रासायनिक मिश्रण की परीक्षा की। उसमें तीन प्रकार के प्रोटीन मिले परन्तु एक भी प्रोटीन जीवित नहीं मिला।

निष्कर्ष

आचार्य महाप्रज्ञ ने वैज्ञानिकों के इन प्रयोगों को अधूरा माना है जब तक भौतिकता चरम बिन्दु पर पहुँच कर चेतना के रूप में परिवर्तित न हो जाय। वैज्ञानिकों द्वारा असंख्य सेल्स (Cells) - जीव कोषों के द्वारा प्राणी शरीर और चेतन का निर्माण होना बतलाते हैं वह भी जैन दृष्टि से सही नहीं हैं क्योंकि आत्मा असंख्य प्रदेशों का समुदाय है, वह असंख्य जीव कोषों का पिण्ड नहीं हैं।

आहार-पर्याप्ति

आहार और जीव के संबंध में हम जानते हैं कि - प्राणी सजीव और अजीव दोनों तरह का आहार लेते हैं किन्तु उसे लेने के बाद वह सब अजीव हो जाता है। अजीव पदार्थों का जीव स्वरूप में कैसे परिवर्तित करते हैं, यह आज भी विज्ञान के लिए रहस्य है। वैज्ञानिकों के अनुसार वृक्ष निर्जीव पदार्थों से बना, आहार लेते हैं। वह उसमें पहुँच कर सजीव कोष्ठों का रूपधारण कर लेता है। वे निर्जीव पदार्थ सजीव बन गए इसका श्रेय क्लोरोफिल को है। वे इस रहस्यमय पद्धति को नहीं जान सके हैं, जिसके द्वारा 'क्लोरोफिल' निर्जीव को सजीव में परिवर्तित कर देता है। जैन दृष्टि के अनुसार निर्जीव आहार को सजीव में परिणित करने वाली शक्ति आहार पर्याप्ति है। वह जीवन शक्ति की आधार शिला होती है और उसी के सहकार से शरीर आदि का निर्माण होता है।

(iv) वनस्पति का चैतन्य

जैन दृष्टि से प्राणी दो प्रकार के हैं - चर और अचर। चर प्राणी प्रत्यक्ष होने के कारण, उसमें जीवन का संदेह नहीं होता लेकिन अचर प्राणीयों में प्रत्यक्ष गति न होने के कारण, उन्हें स्थावर कहा है। वे पांच प्रकार के हैं-

- पृथ्वीकाय
- अपकाय
- तेजस्काय
- वायुकाय
- वनस्पतिकाय

वनस्पति का चैतन्य, विज्ञान जगत में मान्य हो चुका है। अन्य स्थावर जीवों में प्राण होने संबंधी कुछ परीक्षण हुवे हैं। बेतार की तरंगों के बारे में (Wireless Waves) अन्वेषण करते हुए जगदीश चन्द्र बसु को यह अनुभव हुआ कि धातुओं के परमाणु पर भी अधिक दबाव डालने से रूकावट आती है और उन्हें फिर उत्तेजित करने पर वह दूर हो जाती है। उन्होंने सूक्ष्म छान-बीन के बाद बताया कि धान्य आदि पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं, विष से मुरझाते हैं, नशे से मस्त होते हैं और मरते हैं। अन्त में उन्होंने प्रमाणित किया कि संसार के सभी पदार्थ सचेतन हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने उपर्युक्त प्रकरण को जैन मान्यता के लिए सहयोगी माना है। वनस्पति की सचेतनता सिद्ध करते हुए उसकी मनुष्य के साथ तुलना की गई है। जैसे मनुष्य शरीर जाति (जन्म) धर्मक है, वैसे वनस्पति भी जाति-धर्मक है। जैसे मनुष्य सचेतन है, वैसे वनस्पति भी। जैसे मनुष्य आहार खाता है, बालक, युवा और वृद्ध अवस्था को पार करता है, छेदन करने से मलिन होता है, रोग सम्पर्क से प्रभावित होता है वैसे ही वनस्पति को संवेदन होता है। वनस्पति के जीवों में अव्यक्त रूप से संज्ञाए होती है जिसका विवेचन विज्ञान में होने लगा है।

जगदीश चन्द्र बोस के वैज्ञानिक प्रयोग

आचार्य जगदीश चन्द्र बोस ने सिद्ध किया था कि वनस्पति भी जीव है और मनुष्य तथा पशु-पक्षियों के समान वे भी खुश होते हैं और विषाद में मुरझा जाते हैं। मधुर स्वर सुनकर वृक्षों के "प्रोटोप्लाजम" के कोष में स्थित "कोरोप्लाट" विचलित और गतिमान हो उठता है। प्रोफेसर वोगल ने प्रयोगों में पाया कि पौधे की आन्तरिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों को कंपन के रूप में अंकित किया जा सकता है। उसने पाया कि यंत्र ने कागज पर एक ग्राफ खींचा है। वह इस नतीजे पर पहुंचा कि वनस्पति में संवेदनशीलता होती है। पेड़-पौधे सर्दी-गर्मी महसूस करते हैं, उन्हें प्यास भी लगती है। अब तक तो यही सोचा जाता था कि पेड़-पौधों में कोई संवेदन तंत्र नहीं होता क्योंकि

जानवरों की तरह उनमें कोई स्नायु (नर्व) नहीं होते लेकिन एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि जब टमाटर के पत्ते को कीड़े काटते हैं, तो पत्ता तुरंत बिजली के चेतावनी-संदेश पूरे पौधे में भेज देता है। पौधे बिजली के संदेश उसी तरह प्रयोग करते हैं जैसे स्नायु-कोशिकाओं में पशु-पक्षी करते हैं। जानवरों में संदेश तरंगे बहुत तेजी से मस्तिष्क और शरीर के बीच आती-जाती हैं, जबकि पौधों में संदेश बिल्कुल कछुआ चाल से चलते हैं। वनस्पति विज्ञान की शाखा, आज विज्ञान की विकसित शाखा है जिसने वनस्पति में जीवन स्वीकार किया है।

दो प्रकार की वनस्पति

जैन दृष्टि से वनस्पति दो प्रकार की है —

- साधारण वनस्पति
- प्रत्येक वनस्पति

जैन आंगमिक ज्ञान के अनुसार साधारण वनस्पति के जीव इतने सूक्ष्म हैं कि एक सूई के अग्रभाग जितने से छोटे शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं। यह प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण आस्थामय विषय रहा था लेकिन वर्तमान युग में विज्ञान ने सूक्ष्म के क्षेत्र में विशेष जानकारी प्राप्त की है। रसायन शास्त्र के पंडित कहते हैं कि आल्पीन के सिर के बराबर बर्फ के टुकड़े में 10^{18} अणु है। इसी प्रकार सुई की नोक टिके उतने 'लक्ष्यपाक', तेल में एक लाख औषधियों का अस्तित्व होता है। ये सूक्ष्मता के उदाहरण साधारण वनस्पति के जीवों की सूक्ष्मता को संदेह से परे करते हैं।

जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान के साथ जीव की जैन धारणा से तुलना कर आचार्य महाप्रज्ञ ने नए चिन्तन के द्वार खोले हैं।

(v) विकास वाद

विज्ञान का सृष्टि-क्रम असत् से सत् है। यह विश्व कब, क्यों और कैसे उत्पन्न हुआ इसका आनुमानिक कल्पनाओं के अतिरिक्त कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। डार्विन के अनुसार यह विश्व क्रमशः विकास की ओर बढ़ रहा है। वैज्ञानिक विकासवाद बाह्य स्थितियों का आकलन है। डार्विन ने सिर्फ शारीरिक विवर्तन के आधार पर क्रम-विकास का सिद्धान्त स्थिर किया। वैज्ञानिकों का विकासवाद का प्रेरक अतीत काल है। जैन दृष्टि से यह निश्चित सत्य नहीं है।

डार्विन के क्रम विकासवाद की जैन दर्शन से विस्तार में समीक्षा करते हुए महाप्रज्ञ जी लिखते हैं कि डार्विन का सिद्धान्त चार मान्यताओं पर आधारित है —

1. पितृ नियम
2. परिवर्तन का नियम
3. अधिक उत्पत्ति का नियम
4. योग्य-विजय

इसमें सत्यांश है। जैसे एक सन्तति में स्वतः बुद्धिगम्य कारणों के बिना भी परिवर्तन होता है। उस पर माता-पिता का भी प्रभाव पड़ता है। जीवन संग्राम में योग्यतम ही विजयी होता है किन्तु परिवर्तन की भी एक सीमा है। वह समान जातीय होता है, विजातीय नहीं। डार्विन के सिद्धान्त को नकारते हुए उन्होंने पशु-पक्षी आदि से मनुष्य जाति की उत्पत्ति नहीं मानी है। गर्भज प्राणियों की निश्चित मर्यादा है कि सजातीय से सजातीय उत्पन्न होता है।

(vi) आनुवंशिकता

विकासवाद के बाद विज्ञान जगत में— 'प्लूतसजचार' वाद को मान्य किया गया जिसका अर्थ है कि एक जाति से दूसरी उपजाति का जन्म आकस्मिक होता है। प्रिमरोज पेड़ का थोड़ा सा चारा हालैण्ड से लाया जाकर अन्य देशों की मिट्टी में लगाया गया। इससे अकस्मात् दो नई श्रेणियों का उदय हुआ। इसी प्रकार भेड़ों के झुण्ड में एक नई जाति उत्पन्न हो गई। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार बाहरी स्थितियों का प्राणियों पर प्रभाव होता है किन्तु उसकी आनुवंशिकता में वे परिवर्तन नहीं ला सकती। आनुवंशिकता के क्षेत्र में 'जेनेटिक्स का विज्ञान' आधुनिकतम है। जिस पर खोज विकसित हो रही है। विकासवाद की वैज्ञानिक धारणा पूर्ण नहीं है क्योंकि विकास के साथ शारीरिक परिवर्तन का हास भी देखा गया है। उदाहरणतः 'टरपन जाति के घोड़े' जो प्रागैतिहासिक काल में होते थे जिनकी नस्ल लुप्त हो गई थी, आज संक्रमण पद्धति से पुनः इनकी नस्ल पैदा कर ली गई है। इसमें जाना जाता है कि शरीर, संहनन, संस्थान और रंग का परिवर्तन होता है। उससे एक जाति के अनेक रूप बन जाते हैं, किन्तु मूलभूत जाति नहीं बदलती।

आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दृष्टि से आनुवंशिकता की समानता के चार कारण बतलाए हैं।

- (i) वर्गणा का साम्य-जन्म के आरम्भ काल में जीव जो आहार लेता है, वह उसके जीवन का मूल आधार होता है। माता-पिता के गुण-दोषों का सन्तान के स्वास्थ्य पर जितना प्रभाव पड़ता है, उतना बुद्धि पर नहीं पड़ता।
 - (ii) पौद्गलिकता – अगर शरीर, भाषा और मन की वर्गणाएं वातावरण की वर्गणाओं के अनुकूल या प्रतिकूल होती हैं तब उसी के अनुसार अच्छे और बुरे प्रभाव होते हैं।
 - (iii) खान-पान और औषधि के प्रभाव
 - (iv) ग्रह-उपग्रह की रश्मियों का प्रभाव
- इससे विकास और ह्रास की परम्परा निरन्तर चलती है।

(vii) क्लोनिंग

कुछ वर्षों से क्लोनिंग एक बहुचर्चित विषय हो रहा है। विशेषकर जब से वैज्ञानिकों ने एक भेड़ का क्लोन तैयार करने में सफलता प्राप्त कर ली है तब से नाना प्रकार के अनुमान लगाए जा रहे हैं। अब यह प्रयास हो रहा है कि मानव जाति के भी नए क्लोन तैयार हो जाएं। क्लोन का अभिप्राय है कि किसी जीव विशेष का जैनेटिक प्रतिरूप पैदा होना। विभिन्न विकसित प्राणी लैंगिक प्रजनन की विधि द्वारा अपनी संतानों को उत्पन्न करते हैं जिसमें नर एवं मादा की जनन कोशिकाओं के आधे-आधे गुणसूत्र मिलकर एक नई रचना करते हैं जिसमें जनक माता-पिता के गुण मिले रहते हैं।

यह विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य बात है कि क्लोनिंग में नर अथवा मादा की सामान्य दैहिक कोशिकाओं के गुणसूत्र के द्वारा संतान उत्पन्न की जाती है जो कि स्वाभाविक रूप से अपने दाता (जनक) जैसी ही होती है। अविकसित जीवों, पेड़-पौधों आदि में तो यह प्रक्रिया कायिक प्रजनन, अलैंगिक प्रजनन आदि के रूप में प्राकृतिक रूप से पाई ही जाती है। परंतु आधुनिक वैज्ञानिकों ने विकसित जीवों, चूहों, भेड़ों एवं अब मनुष्यों तक को इस विधि से उत्पन्न करना शुरू कर दिया है। यह विषय विज्ञान के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण माना गया है और क्लोनिंग के संबंध के प्रयोग आज विश्व में प्रत्येक स्थान पर हो रहे हैं। भारत भी इस क्षेत्र में पिछड़ा हुआ नहीं है।

दाता-क्लोन

क्लोनिंग की क्रिया में प्राणी की सामान्य कोशिकाओं को ही विभिन्न वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के द्वारा एक पूर्ण जीव में विकसित किया जाता है अतः

नया बना जीव एक तरह से उसी का एक हिस्सा कहा जा सकता है। शारीरिक उम्र के लम्बे अंतर के बाद भी उनकी (दाता एवं क्लोन) जीव वैज्ञानिक/ आनुवंशकीय आयु भी एक समान ही मानी जा रही है। इसी कारण इनके आपसी संबंध को माता-पिता से उत्पन्न पुत्र-पुत्री के स्थान पर दाता-क्लोन कहा जाता है।

क्लोनिंग की उपयोगिता

इस तकनीक के द्वारा मानव के विभिन्न अंगों को प्रयोगशाला में ही विकसित किया जा सकता है जिससे कई असाध्य रोगों को दूर करने में आसानी होगी। इसके अलावा इस तकनीक से विभिन्न बेकार जीनों को बदला जा सकेगा तथा बुढ़ापा भी रोका जा सकेगा। इसी संदर्भ में मानव क्लोनिंग के प्रयास हो रहे हैं।

क्लोनिंग के दुष्परिणाम

क्लोनित प्राणियों में यकृत, फेफड़े और हृदय सम्बन्धी बीमारियां बहुत जल्दी पनपती हैं। साढ़े छह वर्ष की आयु में डॉली नामक क्लोन भेड़ असमय बुढ़ापे एवं बीमारी के चपेट में आकर काल कवलित हो गई। जबकि आम तौर पर भेड़ें इससे दुगुनी उम्र तक जीती हैं।

क्लोनिंग ने वैज्ञानिक एवं बुद्धिजीवियों को तो प्रभावित किया ही है साथ में दार्शनिक एवं धार्मिक नेताओं को भी चिंतित किया है। यह विषय चुनौती भरा होता जा रहा है क्योंकि जीव विशेष का जैनेटिकल प्रतिरूप अगर पैदा होंगे तो सामाजिक जीवन में कठिनाईयां बढ़ेंगी। कारण यह है कि क्लोन, जीव की कार्बन कॉपी के रूप में विकसित होगा। संतोष की बात यह है कि इनके व्यक्तित्व में एक समानता नहीं होगी क्योंकि व्यक्तित्व का निर्माण वातावरण और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्म तत्त्व और उससे संबंधित विकासवाद की वैज्ञानिक धारणाओं का जैन मान्यताओं से तुलना कर एक नया अध्याय प्रारम्भ किया है।

अनेकान्त का वैज्ञानिक पक्ष

अनेकान्त

जैन विद्या के अध्येता और अनुसंधानकर्ताओं के लिए अनेकान्त शब्द नया नहीं है। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उनके उपदेश, ज्ञान और वाणी को कंठस्थ परम्परा से आचार्य, उपाध्याय अपने शिष्यों को अध्ययन कराते रहे। समय के प्रभाव से स्मृति दुर्बलता के कारण आगमों की सुविस्तृत धारा उत्तरोत्तर क्षीण होने लगी। वीर निर्वाण के एक हजार वर्ष पश्चात् देवर्द्धिगणी क्षमाक्षमण ने उपलब्ध आगम साहित्य को लिपिबद्ध कर उस निधि को नष्ट होने से उबारा। आगमों के लिपिकरण के पश्चात् उनके पठन-पाठन का व्यवस्थित क्रम चलने लगा। आचार्यों ने अपनी असाधारण विद्वता का उपयोग करते हुए जैन विद्या के उच्च स्तरीय अध्ययन-अध्यापन के लिए अनेक शिक्षण शैलियों को प्रतिष्ठित किया। उनमें, अनेकान्त शैली सर्वाधिक प्रचलित हुई।

वस्तु अनन्त धर्मात्मक

प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक होती है। वस्तु के अनेक विरोधी धर्मों को सापेक्षता से समझने की ज्ञानमय तकनीक को अनेकान्त दृष्टि कही गई थी लेकिन कालान्तर में यह जैन दर्शन के सिद्धान्त के रूप में विख्यात हो गई। जैन दर्शन अनेकान्ती दर्शन कहलाने लगा। अनेकान्त सिद्धान्त को विकसित करने के लिए स्याद्वाद नयवाद, सप्तमंगी, अनुयोगद्वार, त्रिमंगी, चूर्तमंगी, निक्षेप आदि अन्य सहयोगी सिद्धान्त प्रचलित हुए। सभी सिद्धान्तों ने अपनी ऊँचाइयां पाई और जैन दर्शन की विकास यात्रा में प्रभावी देन दी हैं।

शैक्षणिक विधा

द्रव्य अनन्त धर्मात्मक होता है। एक द्रव्य के अनन्त धर्मों को समझने और समझाने के लिए जो विविध विधाएं जैन आचार्यों ने प्रस्तावित की उसके संबंध में जर्मन विद्वानों ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है — "एक विशेष रुचि की बात यह है कि जैन आचार्यों द्वारा वस्तु के विभिन्न गुणों की व्याख्या करते समय जो विविध प्रक्रियाएं अपनाई उनका कई बार विषय से कोई सम्बन्ध नहीं

होता है लेकिन शिक्षण कार्य को और अधिक भरपूर व फलदायक बनाने के लिए अध्यापन योजना में उनका सम्मिलित करना आवश्यक या वांछनीय समझा गया ----- अतः जैन आचार्यों को अध्यापन कला में श्रेष्ठ माना जाना चाहिए।"

"It is of special interest that the various methodologies applied by Jain Acharayas in explaining the different attributes of substance, sometimes have nothing to do with the text to be explained but the inclusion of which in the teaching programme seemed essential or desirable to make the instruction richer and more rewarding for teaching the pupils, ... Jain Acharayas should therefore be considered as the best teachers"

जर्मन विद्वान हरमन जकोबी ने माना है कि अनेकान्त ने सत्य के अर्थ को पाने के लिए सारे द्वार सभी स्तरों पर खोल दिए हैं। अनेकान्त सिद्धान्त ने आत्मा और शरीर के सापेक्ष संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। जैनों की मान्यता है कि वस्तु शाश्वत है लेकिन पर्याय परिवर्तनशील हैं। आत्मा शाश्वत है और शरीर परिवर्तनशील हैं।

सापेक्षता

आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त के बाद सापेक्षता की चर्चा अत्यन्त व्यावहारिक हो गई है। यद्यपि सापेक्षता पर विचार भारतीय दर्शनों में हुआ है किन्तु जैन परम्परा में सर्वाधिक हुआ प्रतीत होता है। हम इसके दार्शनिक और वैज्ञानिक पक्ष पर तुलनात्मक विचार करेंगे। वर्तमान में जैनाचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य अनेकात्मिक दृष्टि से ओत-प्रोत है तथा आइंस्टीन के सापेक्षवाद से तुलना कर, स्याद्वाद सप्तभंगी आदि सहयोगी सिद्धान्तों को उन्हींने विकसित किया है। इसके कुछ उद्धरण पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक जैन दर्शन मनन और मीमांसा में कहा है कि जैन दर्शन में अनेकान्त, चिन्तन की शैली के रूप में प्रसिद्ध है तथा स्याद्वाद प्रतिपादन करने का साधन है। जानना ज्ञान का काम है, तो बोलना वाणी का। ज्ञान से अनन्त जाना जा सकता है लेकिन वाणी से अनन्त कहा नहीं जा सकता। अतः ज्ञान की शक्ति अपरिमित है और वाणी की शक्ति परिमित।

अनेकान्त का दूसरा नाम – सापेक्षवाद

जैन आगमों के अनुसार अनेकान्त का विवेचन करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है कि सत्य की उपलब्धि के दो उपाय हैं – अतीन्द्रिय

ज्ञान और इन्द्रिय ज्ञान। अतीन्द्रिय ज्ञान योगी को होता है या विशेष परिस्थितियों में होता है। वह सामान्य नहीं है। सर्वमान्य ज्ञान, इन्द्रिय-ज्ञान हैं। इसमें इन्द्रिय, मन और बुद्धि तीनों समन्वित हैं। इन्द्रिय ज्ञान के संबंध में निम्न टिप्पणियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं -

- (i) इन्द्रिय संवेदन न सत्य होता है और न असत्य होता है। सापेक्ष होकर वह सत्य होता है और निरपेक्ष रहकर वह असत्य हो जाता है।
- (ii) बुद्धि विकल्प न सत्य होता है और न असत्य होता है। सापेक्ष होकर वह सत्य होता है और निरपेक्ष रहकर वह असत्य हो जाता है।
- (iii) इन्द्रिय-ज्ञान और वचन-विकल्प की सत्यता सापेक्षता पर निर्भर है। इसलिए अनेकान्त का दूसरा नाम सापेक्षवाद है।

आइंस्टीन का उदाहरण

सापेक्षवाद के संबंध में आइंस्टीन का एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक आदमी जलती हुई भट्टी के पास बैठा है और तेज ऊष्मा आ रही है। उसे वहाँ केवल दस मिनट का समय भी दो घण्टे के समान लगेगा और अगर वही व्यक्ति अपनी प्रेमिका के साथ बात कर रहा होगा तो दो घण्टे दस मिनट के समान लगेंगे। यह काल का बोध, घटना सापेक्ष है। सापेक्षवाद के अनुसार जगत की कोई वस्तु अथवा घटना पूर्ण रूप से आकाश-काल सापेक्ष ही जानी जाती है। उपर्युक्त तुलना से सापेक्षवाद और अनेकान्त की समानता प्रतीत होती है।

सिद्धसेन दिवाकर का योगदान

भारतीय धर्मों के माध्यम से संसार व सत्य के शाश्वत दर्शन करने का जितना सार्थक एवं सांगोपांग प्रयत्न भारतीय संस्कृति में हुआ है उतना विश्व में और किसी भूभाग में नहीं हुआ है। दर्शन युग में वेदान्त ने पर्याय रहित द्रव्य को यथार्थ माना, और बौद्धों ने वस्तु को क्षण-क्षयी कहा तब द्रव्य के विविध धर्मों के प्रतिपादन के लिए एक से अधिक दृष्टि को स्वीकार करने के कारण, यह विधि अनेकान्त कहलाई। अनेकान्त अर्थ के रूप में जैन आगमों में उपलब्ध रहा है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार स्यादवाद के सप्तभंगों का वर्णन सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द (ई- की प्रथम शताब्दी) द्वारा विरचित 'प्रवचन सार' एवं 'पंचास्तिकाय' में मिलता है। आचार्य समन्तभद्र ने आत्म

मीमांसा में तथा आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने "न्यायावतर" में स्यादवाद का अभूतपूर्व ढंग से प्रतिपादन किया है। हम अनेकान्त का अध्ययन इसके तीन पक्षों के संदर्भ में करेंगे।

- सैद्धान्तिक पक्ष
- दार्शनिक पक्ष
- वैज्ञानिक पक्ष

(i) सैद्धान्तिक पक्ष

जैन आगम भगवती सूत्र में द्रव्य को परिभाषित करते हुए दो दृष्टियों के द्वारा समझाया गया है।

- (1) द्रव्य रूप
- (2) पर्याय रूप

अथवा

- (1) द्रव्यार्थिक नय
- (2) पर्यायार्थिक नय

नय का अभिप्राय वस्तु के एक धर्म का ज्ञान है और यह एक धर्म का वाचक शब्द है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय परस्पर में सापेक्ष है। द्रव्य के प्राधान्यकाल में पर्याय की प्रधानता नहीं होती और यही बात पर्यायार्थिक नय के लिए है। इस सापेक्षता को सिद्धसेन ने अनेकान्त कहा है अतः सत् का अस्तित्व द्रव्य और पर्याय दोनों के बिना संभव नहीं है। आचार्य उमास्वाति ने सत् की तत्त्वार्थ सूत्र में निम्न परिभाषा दी है — 'उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त सत्' उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अर्थात् उत्पन्न होना, नष्ट होना तथा ध्रुव रहना तीनों अवस्थाएँ समन्वित हैं। यह त्रिपदी, अनेकान्त का आधार है। भगवान महावीर और उनके प्रथम गणधर गौतम के बीच का संवाद उल्लेखनीय है:

गौतम : भगवन्! आत्मा शाश्वत है या अशाश्वत ?

महावीर : आत्मा शाश्वत भी है और अशाश्वत भी। आत्मा, द्रव्य के रूप में शाश्वत है तथा गुणों की पर्याय परिवर्तन के कारण अशाश्वत है। पुरानी पर्याय नष्ट होती है तो नई पर्याय उत्पन्न होती है। इस उदाहरण से आत्मा की शाश्वतता और अशाश्वतता अपेक्षा विशेष से प्रतिपादित है। आगम सहित्य में लोक को भी शाश्वत तथा अशाश्वत कहा है। इसी प्रकार स्कन्ध परिव्राजक के प्रश्न के समाधान में महावीर ने लोक को सान्त और अनन्त दोनों कहा है। द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा लोक को सान्त तथा काल एवं भाव की अपेक्षा

अनन्त प्रतिपादित किया है। इन सैद्धांतिक उदाहरणों के साथ पाठकों के लिए अनेकान्त के सरल उदाहरण भी निम्न प्रकार से प्रेषित हैं।

- 1- सोना (Gold) एक धातु है। इसके विविध प्रकार के आभूषण बनाए जाते हैं, एक आभूषण को नष्ट कर, नया आभूषण बनाया जाता है, नए के उत्पन्न और पूर्व आभूषण के नष्ट होने में, सोने का अस्तित्व ध्रुव रहता है।
2. गीली मिट्टी से घड़े का निर्माण किया जा सकता है तथा उस गीले घड़े को नष्ट कर, नया अन्य आकार का दूसरा घड़ा बनाया जा सकता है लेकिन इस पर्याय परिवर्तन में मिट्टी का अस्तित्व ध्रुव रहता है।

विज्ञान का संरक्षण का सिद्धान्त

आचार्य महाप्रज्ञ ने उपर्युक्त उदाहरणों की तुलना विज्ञान के सर्वमान्य सिद्धान्त — 'द्रव्यमान संरक्षण सिद्धान्त' और 'ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त' से की है। इसके अनुसार द्रव्यमान (Mass) को ऊर्जा (Energy) में और ऊर्जा को द्रव्य में बदला जा सकता है लेकिन कुल द्रव्यमान, द्रव्य-संहति और ऊर्जा निश्चित रहती है, जो न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है। अनेकान्त में भी दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं — ध्रुव और परिवर्तन। केवल अस्तित्व है वह ध्रुव है, किन्तु पर्याय पैदा होते हैं वे नष्ट भी होते हैं। सापेक्षता तथा अनेकान्त के उपर्युक्त विवरण से प्रतिभासित होता है कि दोनों में समानता है।

स्यादवाद

स्यादवाद का अभिप्राय है कि हम द्रव्य के एक धर्म का प्रतिपादन करते हैं या कर सकते हैं। पदार्थ में अनन्त धर्म रहते हैं जिसमें जब हम किसी एक धर्म को बताते हैं तो शेष धर्मों को गौण कर देते हैं जिसका यह अर्थ नहीं कि शेष धर्म है ही नहीं, यह केवल हमारी भाषा की सीमा है कि हम युगपद सभी धर्मों को नहीं कह सकते। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि जब हम एक धर्म का कथन करते हैं तब उस समय एक समस्या में उलझे होते हैं। हमारा बुद्धि विकल्प और वचन विकल्प द्रव्य के जिस स्वरूप का ग्रहण और प्रतिपादन कर रहा है, वह यदि वही हो तो वह एक धर्मवाला बन जाए और वह उसके अतिरिक्त हो तो हमारा ग्रहण और प्रतिपादन पूर्ण सत्य का ग्रहण और प्रतिपादन नहीं होता। इस समस्या को सुलझाने के लिए अनेकान्त

के आचार्यों ने एक मत सुझाया। उन्होंने कहा — प्रत्येक बुद्धि विकल्प के साथ हम अपेक्षा को जोड़े और प्रत्येक वचन विकल्प के साथ हम 'स्यात्' का प्रयोग करें। 'स्यात्' शब्द से युक्त वचन-विकल्प स्याद्वाद कहलाता है। हम सापेक्षवाद और स्याद्वाद के सहारे अनेकान्त को समझ सकते हैं और अनेकान्त के सहारे सत्य तक पहुँच सकते हैं।

(ii) दार्शनिक पक्ष

जैन दर्शन में वस्तु संबंधी ज्ञान को बुद्धिगम्य बनाने के लिए अनेक वर्गीकृत अपेक्षाएं प्रस्तुत की। अपेक्षा के बिना वस्तु का विवेचन नहीं किया जा सकता। वस्तु-भेद, आश्रय-भेद, काल-भेद और अवस्था-भेद के आधार से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की चतुर्भंगी का अनेक स्थलों पर उपयोग हुआ है। उपर्युक्त चिंतन में गुण, गुणी, आत्मा के असंख्य प्रदेश, आकाश के प्रदेश आदि सभी को ध्यान में रख कर चार दृष्टियां बनाई है। अपेक्षा-भेद समझने पर विरोध नहीं रहता। इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं। जैसे कथन शैली से आत्मा सान्त भी है और अनन्त भी। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और पुदगल की भी चतुर्भंगी बनती है। इस पद्धति के आधार पर दार्शनिक युग में स्याद्वाद का रूप चतुष्टय बना है जो निम्न प्रकार है।

1. वस्तु स्यात् नित्य है, स्यात् अनित्य है।
2. वस्तु स्यात् सामान्य है, स्यात् विशेष है।
3. वस्तु स्यात् सत् है, स्यात् असत् है।
4. वस्तु स्यात् वक्तव्य है, स्यात् अवक्तव्य है।

उक्त चर्चा में कहीं भी 'स्यात्' शब्द संदेह के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। शंकराचार्य की युक्ति के अनुसार — "स्याद्वाद की पद्धति से पदार्थों में निश्चय नहीं हो सकता। वे वैसे ही हैं या वैसे नहीं हैं, यह निश्चय हुए बिना उनकी प्रामाणिकता चली जाती है।" शंकराचार्य की आलोचना पर जैन विद्वानों और आचार्यों ने स्याद्वाद की गहरी मीमांसा की है। डा. राधाकृष्णन ने भी अपने जीवन के अंतिम वर्षों में यह स्वीकार किया था कि जैनों का साहित्य अंग्रेजी भाषा में पर्याप्त रूप से न मिलने के कारण, जैन साहित्य भी अन्य दर्शनों के माध्यम से पढ़ा गया इसी कारण स्याद्वाद को संशयवाद कहने में आधुनिक विद्वानों से भूल हुई है। पूर्व में भी जैन ग्रन्थों को न पढ़ने से ही कई अजैन विद्वान स्याद्वाद के अर्थ को ठीक नहीं समझ सके हैं।

स्यात् का अभिप्राय

आचार्य महाप्रज्ञ ने "स्यात्" शब्द को नए रूप में परिभाषित किया है— स्याद्वाद का उद्गम अनेकान्त वस्तु है। स्याद्वाद अनेकान्त दृष्टि को वाणी द्वारा व्यक्त करने की पद्धति है। दृष्टि की अपेक्षा, वाणी द्वारा कथन करने की सीमाएं हो जाती हैं। जानना तो अधिक संभव है मगर उतना उसी रूप में कहना संभव नहीं। जिस वस्तु के लिए कथन करना होता है। उसमें भी विभिन्न गुण होते हैं। स्थूल वस्तु का कथन करना कठिन नहीं है क्योंकि वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है लेकिन सूक्ष्म के बारे में कथन करना कठिन होता है क्योंकि उसका व्यवहार, पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं होता। इसी भेद के कारण जैन दर्शन में कथन करते समय 'स्यात्' शब्द के प्रयोग करने की बात कही गई। स्यात् शब्द इस बात का सूचक है कि प्रतिपाद्य भाव धर्म को मुख्यता देकर और शेष धर्मों की उपेक्षा की गई है, तभी वस्तु वाच्य होती है। इसमें शेष धर्मों की उपेक्षा करने की जो बात कही गई है, वह महत्त्वपूर्ण है। इससे वस्तु के मुख्य गुण के कथन में विधायकता और निश्चितता आ जाती है।

स्वचतुष्टय — परचतुष्टय

स्याद्वाद की दृष्टि से यह कहा जाता रहा है कि जो वस्तु सत् है, वह असत् भी है किन्तु जिस रूप में सत् है उसी रूप में असत् नहीं है। जैनाचार्यों का मानना रहा कि स्वरूप की दृष्टि में सत् है और पररूप की दृष्टि में असत्। जैसे घड़ा, घड़े के रूप में सत् है और द्रव्य की दृष्टि से यह उसका अस्ति भाव कहलाता है। घड़े का पररूप कोई अन्य पदार्थ हो सकता है जैसे पट, तब यह कहा जाता रहा है कि घड़े में पट का अभाव है, असत् भाव है, नास्ति भाव है। इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की चार दृष्टियों अर्थात् (स्वचतुष्टय) की अपेक्षा से घड़ा है किन्तु वह परचतुष्टय की अपेक्षा से नहीं है। इसी को एक अपेक्षा से होना 'स्यात् अस्ति' और दूसरी अपेक्षा से न होना 'स्यात् नास्ति' कहा जाता रहा है।

नई दृष्टि

इस संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि एक नई दिशा देती है। वे लिखते हैं "प्रत्येक व्यक्ति "पर" या परिस्थिति पर सारा दोषारोपण कर छुट्टी पा लेता है। अनेकान्त की व्यवस्था करने वाले आचार्यों ने भी ऐसी ही समस्या हमारे सामने उत्पन्न की है। उन्होंने अस्तित्व और नास्तित्व दोनों को मान्यता दी उन्होंने कहा — प्रत्येक तत्त्व का अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और

भाव की दृष्टि से अस्तित्व और पर द्रव्य की दृष्टि से नास्तित्व है। अध्यात्म की दृष्टि यहाँ कुछ गौण हो गई है। 'पर' से नास्तित्व क्यों माना जाए ? सापेक्षता की दृष्टि से विचार करें तो अस्तित्व और नास्तित्व दोनों स्वगत होते हैं, वस्तुगत होते हैं। 'पर द्रव्य' की अपेक्षा से नास्तित्व है, यह आवश्यक नहीं।"

अतः अस्तित्व व नास्तित्व स्वगत है, परगत नहीं। 'अस्ति-नास्ति' भाव का यह विश्लेषण अत्यन्त नया है और विज्ञान सम्मत है।

(iii) वैज्ञानिक पक्ष

'महाप्रज्ञ दर्शन' पुस्तक में इस संबंधी विज्ञान का एक उदाहरण दिया गया है। पुस्तक के लेखक डॉ. दयानन्द भार्गव ने लिखा है कि इधर-विज्ञान की खोजों ने सापेक्षता को कुछ नए आयाम दिए हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। पांच फुट लम्बा व्यक्ति चार फुट लम्बे व्यक्ति की अपेक्षा लम्बा है और छह फुट लम्बे व्यक्ति की अपेक्षा छोटा है — यह बात बहुत स्पष्ट है। इस उदाहरण में एक व्यक्ति की लम्बाई को दूसरे व्यक्ति की लम्बाई से तुलना की गई है अतः इसमें नास्ति भाव स्वगत प्रकट नहीं हुआ है किन्तु परगत प्रकट हुआ है। आइंस्टीन ने जिस सापेक्षता का वर्णन किया है वह सापेक्षता यह बिल्कुल नहीं है। आइंस्टीन का कहना है कि पांच फुट लम्बा व्यक्ति कभी सवा पांच फुट का हो जाता है और कभी पौने पांच फुट का ही रह जाता है। इतना ही नहीं वह व्यक्ति एक ही अवधि में कभी पचास वर्ष का हो जाता है और कभी दस वर्ष का रह जाता है। इसमें नास्ति भाव स्वगत प्रकट हुआ है परगत नहीं। यह अस्ति और नास्ति का उदाहरण दोनों स्थितियों में स्वगत है, परगत नहीं। उपर्युक्त उदाहरण की पुष्टि में आइंस्टीन ने तीन सिद्धान्त रखे —

1. कोई भी पदार्थ जैसे जैसे अपनी गति तेज करता है, उसका माप छोटा होता चला जाता है — यहां तक की यदि वह प्रकाश की प्रति सेकेण्ड 1,86,000 मील वाली गति से चले तो उसका माप शून्य हो जाएगा, और वह दिखना बंद हो जाता है।
2. जैसे-जैसे पदार्थ की गति तेज होती है उसका द्रव्यमान बढ़ता जाता है यहां तक की प्रकाश की गति पर उसका द्रव्यमान अनन्त हो जाता है।
3. जैसे-जैसे गति तीव्र होती है, समय की गति मंद हो जाती है और प्रकाश की गति पर समय की गति सर्वथा रुक जाती है।

4. आइंस्टीन का निम्नलिखित समीकरण उपर दिये गये सिद्धान्तों को स्पष्ट करता है।

$$m_1 = \frac{m}{\sqrt{1 - \left(\frac{u}{c}\right)^2}}$$

where m is mass in rest

u is velocity and

c is velocity of light

if $u = c$

$m_1 = \infty$

इस समीकरण के संबंध में निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए —

फोटोन का द्रव्यमान शून्य (Massless) कहा जाता है। इसका अभिप्राय है कि फोटोन गतिहीन है क्योंकि जब वह गति में होता है तो उसकी गति प्रकाश की गति के समान होती है, ऐसे में उसका द्रव्यमान ज्ञात नहीं किया जा सकता।

इस समीकरण में जब $m = \frac{0}{0}$ होता है तो यह किसी भी गणितीय विधा से समझाया नहीं जा सकता। अतः यह माना जाता है कि शून्य द्रव्यमान (Massless) सदैव नया द्रव्यमान ग्रहण करने की स्थिति में रहता है (tends to)। फोटोन कण का द्रव्यमान जब शून्य कहा जाता है तो वह केवल काल्पनिक होता है। इस मान्यता से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी कण का द्रव्यमान अगर शून्य से किंचित भी ज्यादा है तो वह प्रकाश के वेग से गति नहीं कर सकता। ऐसे कण की गति बढ़ती जाती है तो द्रव्यमान भी बढ़ता जाता है लेकिन उसकी लम्बाई घटती जाती है। आइंस्टीन के सापेक्षवाद का सार यही है कि 'समय' सापेक्ष है न कि लम्बाई में दिखाई देने वाला परिवर्तन।

अनेकान्त तथा स्यादवाद के विकास के लिए विज्ञान क्षेत्र के दो सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी हैं —

- > सापेक्षता का सिद्धान्त
- > अनिश्चितता का सिद्धान्त

सापेक्षता

- (i) आइंस्टीन ने आकाश-काल की अपेक्षा से जगत में होने वाली घटनाओं को समझाया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत की कोई भी घटना निरपेक्ष नहीं हैं। एक प्रचलित उदाहरण है कि अगर धरती पर खड़ा व्यक्ति सूर्य पर खड़े अन्य व्यक्ति से सिग्नल प्राप्त कर अपनी घड़ी में समय मिलाएगा तो क्या धरती के मनुष्य की घड़ी का समय, सूर्य पर खड़े व्यक्ति की घड़ी के समान होगा? आइंस्टीन के अनुसार ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि प्रकाश को सूर्य से धरती पर पहुँचने में जितना समय लगेगा उतना ही दोनों की घड़ियों में अन्तर रहेगा अर्थात् धरती पर खड़े व्यक्ति की घड़ी आठ मिनट पीछे रहेगी जो प्रकाश की गति करने का समय है।
- (ii) 'सापेक्षता का सिद्धान्त' एक अन्य उदाहरण से समझ सकते हैं। जब हम आकाश में तारों को देखते हैं तो प्रतीत होता है कि तारा चमक रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि हम तारों के हजारों वर्ष पूर्व के अस्तित्व को देख रहे हैं क्योंकि तारों की किरणों को धरती पर पहुँचने में हजारों वर्ष लगे हैं। समय के इस अन्तराल में संभवतः वे तारे ठण्डे हो गए हो और वे तारे ब्लैक होल बन चुके हों लेकिन हमें तारा चमकता दिखाई देगा। अतः आचार्य महाप्रज्ञ के यह कहने में सचाई है कि इन्द्रिय ज्ञान सापेक्ष होकर ही सत्य हो सकता है। एक कवि ने भावुकता में निम्न पंक्तियाँ प्रेषित की हैं जो उपर्युक्त वर्णित सापेक्षता को समझाती हैं।
- “मैं
एक तारे की तरह
दूर किसी आसमान में पैदा हुआ,
जब तक पहुँचेगी
मेरी रोशनी तुम तक
मैं विदा हो जाऊँगा”
- (iii) हम किसी भी इन्द्रिय के द्वारा जब वस्तु को जानने का प्रयत्न करते हैं तो किसी न किसी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है और जो ऊर्जा निरीक्षण में भाग लेती है, वह वस्तु के

द्रव्यमान में परिवर्तन कर देती है। यह परिवर्तन उस समय महत्वपूर्ण हो जाता है जब वस्तु सूक्ष्म हो। अगर हम आँख से किसी भी वस्तु को देखकर अनुभव करते हैं तो देखने के लिए ऊर्जा अर्थात् फोटॉन्स का व्यापार होना आवश्यक है। जब फोटॉन्स सूक्ष्म पदार्थ से टकराते हैं तो ऊर्जा का आदान-प्रदान होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हम जिस वस्तु का ज्ञान करना चाहते हैं उसके जानने के लिए साधन रूप में काम में ली गई ऊर्जा, उस वस्तु के द्रव्यमान को बदल देती है और हम उस वस्तु का केवल सापेक्ष ज्ञान कर पाते हैं।

अनिश्चितता का सिद्धान्त

'अनिश्चितता का सिद्धान्त' जर्मन वैज्ञानिक हाइजनबर्ग की उपज है। इसके अनुसार सूक्ष्म कणों की गति और स्थिति दोनों को एक साथ जानने में सदैव अनिश्चितता रहती है क्योंकि सूक्ष्म पदार्थ, कण तथा तरंग, दोनों रूपों में व्यवहार करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि सूक्ष्म पदार्थ जब कण रूप व्यवहार करता है तो लहर रूप नहीं करता तथा जब लहर रूप व्यवहार करता है तो कण रूप व्यवहार नहीं करता। यह ध्यान रहे कि अनिश्चितता, ज्ञाता-व्यक्ति को पदार्थ के वर्तमान स्वरूप और उसकी गति को जानने में हो रही है। इस सिद्धान्त की गणितीय सीमा है कि इसे केवल सूक्ष्म पदार्थ पर ही प्रभावी किया जा सकता है। पदार्थ सदैव कण रूप में व्यवहार नहीं करता। वह तरंग रूप अर्थात् लहर रूप में भी गति करता है। इसके दोहरे स्वरूप ने विज्ञान की प्रगति को कुछ समय तक रोके रखा। फिर यह स्वीकार किया गया कि जहाँ कण है वहाँ तरंग है और जहाँ तरंग है वहाँ कण है। विज्ञान के अनिश्चितता के सिद्धान्त की पाठको के लिए स्याद्वाद से तुलना प्रस्तुत है।

स्याद्वाद को हम तीन स्वतन्त्र अंगों से पहचानते हैं —

- (i) अस्ति
- (ii) नास्ति
- (iii) अवक्तव्य

कण और लहर के वैज्ञानिक उदाहरण की जब हम स्याद्वाद की दृष्टि से मीमांसा करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि गति करते समय दो स्थितियाँ बनती हैं।

- (i) कण का अस्तिभाव होता है तो तरंग का नास्ति भाव विद्यमान रहता है।
- (ii) तरंग का अस्ति भाव रहता है तब कण का नास्ति भाव विद्यमान रहता है। यह अस्ति नास्ति भाव स्वगत है, परगत नहीं।
- पदार्थ में दो या दो से अधिक विरोधी गुणों का होना ही अस्ति नास्ति के कथन को जन्म देता है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि स्थूल पदार्थ के स्थूल गुण जो हमारी इन्द्रिय और मस्तिष्क के ज्ञान की सीमाओं में स्पष्ट है वहां अस्ति-नास्ति का कथन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। जहां स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ के सूक्ष्म गुणों में होने वाले परिवर्तन हमारी ज्ञान की सीमाओं में स्पष्ट नहीं है और हम केवल उनके परिणाम ही जानते हैं, वहां परिणामों के आधार पर अस्ति और नास्ति के कथन महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अस्ति, नास्ति भाव के वैज्ञानिक विवेचन की तुलना आगम साहित्य के इस उद्धरण से समझी जा सकती है कि - 'परमाणु सकम्प भी होता है और अकम्प भी। उसमें न तो निरन्तर कम्प भाव रहता है और न ही निरन्तर अकम्प भाव।'

अवक्तव्य

स्यादवाद का तीसरा महत्त्वपूर्ण अंग 'अवक्तव्य' है। साधारणतः अवक्तव्य का अर्थ है कि किसी प्रसंग या घटना के संबंध में वक्तव्य नहीं दिया जा सके अर्थात् कहा न जा सके। जैनाचार्यों ने स्यादवाद की मीमांसा में यह माना है कि अस्ति अर्थात् 'होना' और नास्ति अर्थात् 'न होना' का युगपत कथन नहीं हो सकता उसे अवक्तव्य कहा है। किन्तु यह तो स्वयं सिद्ध है कि अस्ति और नास्ति का युगपत कथन कैसे हो सकता है ? उदाहरणतः जब हम घड़े के होने का कथन करते हैं उसी समय और उसी स्थिति में उसी को घड़े का न होना कैसे कह सकते हैं? यह तो स्वतः सिद्ध है। इसमें कोई दार्शनिक अभिव्यक्ति नहीं दिखाई देती।

भौतिक विज्ञान में अवक्तव्य शब्द का उपयोग हुआ है। हम इस शब्द के अर्थ को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में जानने का प्रयत्न करेंगे। सूक्ष्म पदार्थ के संबंध में वैज्ञानिक धारणा है कि वह कण रूप में व्यवहार करता है तथा लहर रूप में भी व्यवहार करता है इसलिए उसका किसी विशेष क्षण में व्यवहार सुनिश्चित करने में कठिनाई रहती है। इस स्थिति को अवक्तव्य (Unpredictible)

के रूप में लिया गया है। 'अनिश्चितता के सिद्धान्त' के अनुसार यह कहा जा सकता है कि सूक्ष्म पदार्थ की गति और स्थिति के बारे में एक साथ नहीं जाना जा सकता, इसे भी अवक्तव्य कहा गया है। गति और स्थिति दोनों विरोधी गुण होते हुए, एक ही पदार्थ में उपलब्ध होते हैं। विरोधी गुणों से संबंधी यह वैज्ञानिक चर्चा, स्यादवाद की चर्चा से भिन्न प्रतीत नहीं होती। एक विशेष तथ्य यह भी है कि 'गति-स्थिति' तथा 'कण-लहर' के उदाहरण स्वगत है, परगत नहीं। यहां हमें ध्यान रखना है कि 'अवक्तव्यता' सूक्ष्म पदार्थ के निश्चित व्यवहार तथा उसके गुणों को विशेष कालखण्ड में न जानने से सम्बन्धित है। केवल-ज्ञानी (अर्हत) सूक्ष्म के गुण और व्यवहार को जान लेते हैं तो उनके लिए 'अवक्तव्य' का कोई महत्व नहीं है लेकिन वे भी साधारण ज्ञानी को सूक्ष्म के बारे में समझायेंगे तो उन्हें भी अवक्तव्यता का उपयोग करना पड़ेगा। इससे प्रतीत होता है कि अवक्तव्यता पदार्थ के कारण नहीं है किन्तु ज्ञाता के सीमित ज्ञान के कारण है। गणित की दृष्टि से यह भी माना जा सकता है कि यदि किसी वस्तु की किसी भी अपेक्षा से अवक्तव्यता को संख्यात्मक रूप दे तो यह संख्यात्मक के रूप गणित का अनुपात (Proportion) और सांख्यिकी की प्रायिकता (Probability) भी बन सकता है। इस वैज्ञानिक विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि पदार्थ चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म हो उसके सूक्ष्म गुणों में होने वाले परिवर्तनों के कथन के लिए ही अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

□□□



आगम और विज्ञान



आगम और विज्ञान

गति विज्ञान	149
परमाणु की गति	155
भावितात्मा द्वारा नाना रूपों का निर्माण	160
भावितात्मा द्वारा आकाश गमन	165
कृष्णराजि, तमस्काय तथा ब्लैक होल	169
नींद का प्रकरण	179
आलू क्या अनन्त जीवी हैं?	181
मानसिक सम्प्रेषण का सिद्धान्त	183
चौदह पूर्वों का परावर्तन	185
अनाहारक अवस्था	187
आत्म-प्रदेशों की सघनता	192

गति विज्ञान

प्रकृति में सभी वस्तुएं गतिशील हैं। विषम ज्योतिर्पिण्ड हो या सूक्ष्म कण इलेक्ट्रॉन हो, सभी गति में संलग्न हैं। गति का अपना विज्ञान है।

जैन आगम साहित्य में गति संबंधी अनेक प्रकरण हैं। कुछ प्रकरण स्पष्टीकरण चाहते हैं। उनमें से एक रोचक प्रकरण को आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत किया है। भगवती सूत्र में अधोलोक के इन्द्र चमर और ऊर्ध्व लोक के इन्द्र शक्र का संघर्ष अत्यंत रोमांचक घटनाक्रम है। यह पाठकों के अध्ययन हेतु प्रेषित है।

घटना

एक बार अधोलोक के असुरों के इन्द्र (चमर), ऊर्ध्व लोक के इन्द्र (शक्र) के पास पहुंचकर उसकी निंदा-आशातना करने लगा क्योंकि चमर, शक्र के वैभव से ईर्ष्या करता था। इस घटना से क्रुद्ध होकर शक्र ने चमर को मारने के लिए अपना शस्त्र-वज्र फेंका। वज्र से भयभीत होकर चमर वापस अधोलोक की ओर भागा। इसी बीच शक्र ने सोचा कि चमर के ऊर्ध्व लोक में आने की परम्परा नहीं है और न ही उसका सामर्थ्य है। अवश्य ही वह किसी योगी-तपस्वी की शरण लेकर आया है। मेरे वज्र से किसी तपस्वी का अनिष्ट न हो जाए, यह सोचकर शक्र, वज्र को पकड़ने के लिए भागा। स्थिति यह बनी कि सबसे आगे चमर, उसके पीछे वज्र और उसके पीछे शक्र भागने लगे। ऊर्ध्वलोक से, अधोलोक जाने के लिए तिर्यक् लोक में से गुजरना पड़ता है। घटना के अनुसार चमर ने अपनी रक्षा हेतु तिर्यक् लोक में भगवान महावीर की शरण का उपयोग किया तथा उनके दोनों पांवों के अन्तराल में गिर गया। भगवान महावीर उन दिनों साधना-काल में थे। उन्होंने अनुभव किया कि वज्र उनके शरीर से केवल चार अंगुल ही दूर था कि समय रहते शक्र ने वज्र को पकड़ लिया। शक्र ने भगवान महावीर को वंदना की, मन में पश्चाताप किया लेकिन चमर को ललकारता हुआ वापस चला गया।

सुनने में यह घटना भगवान महावीर का महिमा-मंडन लग सकती है परंतु इसमें गति विज्ञान के बहुमूल्य सिद्धान्त छिपे हैं। यह घटना दर्शाती है कि सामान्यतः द्रव्य या प्राणी एक लोक से दूसरे लोक में स्वतः विचरण नहीं कर सकते। इसके लिए अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जैसे

एक अन्तरिक्ष यान को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से निकलने के लिए होती है। जैन साहित्य में वर्णन है कि देव जब भी ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक में आते हैं तो किसी उपपात पर्वत पर जाकर विशेष पुद्गल (ऊर्जा) ग्रहण करते हैं उसके बाद ही तिर्यक् लोक में गति करने में सक्षम होते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आधुनिक भौतिक विज्ञान के सापेक्षवाद सिद्धान्त (Theory of Relativity) के संदर्भ में शक्र, चमर और वज्र की सापेक्ष गति के अध्ययन की आवश्यकता बताई है। इस विषय का अध्ययन निम्न क्रम से करेंगे :

- आगमिक धारणा
- वैज्ञानिक धारणा

अतः इस संबंध में आगमिक तथ्यों को पहले प्रस्तुत करेंगे।

आगमिक धारणा

शक्र-चमर-वज्र की गति के संबंध में आगमिक चर्चा निम्न प्रकार से हुई है।

1. शक्र की गति और वज्र की गति ऊँचे लोक में शीघ्र-शीघ्र और त्वरित-त्वरित है तथा अधो लोक में गति मंद-मंद और अल्प-अल्प है। इसे हम निम्न प्रकार से दर्शा सकते हैं।

ऊर्ध्व गति > तिरछी गति > अधो गति।

2. चमर की गति नीचे लोक में शीघ्र-शीघ्र और त्वरित-त्वरित है तथा ऊँचे लोक में अथवा तिरछे लोक में मंद-मंद और अल्प-अल्प है। इसे हम निम्न प्रकार से दर्शा सकते हैं।

अधो गति > तिरछी गति > ऊर्ध्व गति।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि जो जीव या वस्तु जिस क्षेत्र की है, वहाँ उसकी गति अधिक है तथा लोक (क्षेत्र) परिवर्तन से गति में कमी आती है। इनकी गतियों की परस्पर में तुलना करने हेतु सारणी दी गई है जो निम्न प्रकार है।

लोक	शक्र	वज्र	चमर
ऊर्ध्व	24	12	8
तिर्यक्	18	10	16
अधो	12	8	24

ये गति के माप योजन के अंशों में हैं जिन्हें गव्यूत कहा गया है।

यहां हम केवल तिर्यक् लोक की गतियों की परस्पर में तुलना करेंगे क्योंकि घटना का संबंध तिर्यक् लोक से है। सारणी से विदित होता है कि—

1. तिर्यक् लोक में शक्र की गति (18), वज्र (10) और चमर (16) गव्यूत है, अर्थात् शक्र की गति सर्वाधिक है। अतः घटना के दौरान शक्र को वज्र पकड़ने में कोई कठिनाई नहीं आई।
2. वज्र (10), से चमर (16) की गति तेज होने के कारण, वज्र, चमर पर प्रहार नहीं कर सका।

आगमिक दृष्टि से इस घटना में गति सम्बन्धी प्रकरण स्पष्ट हो जाता है।

गति परिवर्तन

इस गति प्रकरण में गवेषणा योग्य तथ्य यह है कि सारिणी में गति-परिवर्तन दो कारणों से हो रही है।

(i) क्षेत्र परिवर्तन से

(ii) वस्तु परिवर्तन से

इसका क्या कारण होना चाहिए ?

इस संबंध में हम घटना का विश्लेषण निम्न प्रकार से करेंगे। इस घटना में —

- (i) पात्र — तीन। शक्र, वज्र और चमर हैं।
- (ii) क्षेत्र — तीन। ऊर्ध्व लोक, तिर्यक् लोक, अधो लोक हैं।
- (iii) गति — तीन। ऊर्ध्व गति, तिर्यक् गति, अधो गति। ये लोक आधारित है।
- (iv) तथ्य — तीनों पात्रों की गति, तीनों लोक में भिन्न-भिन्न हैं। एक जैसी नहीं हैं।

आगम मीमांसा करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि गति के तीन प्रकार हैं।

- (i) ऊर्ध्व गति
- (ii) अधो गति
- (iii) तिर्यक् गति

जैन कॉस्मोलॉजी के अनुसार ब्रह्माण्ड तीन भागों में अवस्थित है — ऊर्ध्व लोक, अधो लोक और तिर्यक् लोक। ऊर्ध्व लोक में जीव और वस्तु की गति को ऊर्ध्व गति कहा है। अधो लोक में होने वाली गति को अधो गति और तिर्यक् लोक में होने वाली गति को तिरछी गति कहा है। अतः ये गतियां लोक आधारित कही गई हैं।

गति विज्ञान के अध्ययन के लिए पाठकों हेतु जैन कॉस्मोलॉजी में वर्णित ब्रह्माण्ड का तीन आयामी मॉडल, इस अध्याय के प्रारम्भ में चित्रित किया गया है। इसके अध्ययन में हमें निम्न तथ्य उपलब्ध होते हैं —

1. ब्रह्माण्ड तीन पिरामिडों (Pyramids) से बना है। अधोलोक का आकार ओंघे किए हुए शराव (सकोरे) जैसा है जो पिरामिड की भांति दिखाई देता है। तिर्यक् लोक, बिना किनारे वाली झालर के समान है तथा ऊर्ध्व लोक का आकार ऊर्ध्व मृदंग (Cylinder) जैसा है जो दो जुड़े हुए पिरामिडों की भांति है। इन तीनों लोकों के आकार भिन्न-भिन्न हैं तथा तीनों लोकों के द्रव्यमान में अन्तर है अतः घनत्व में भी अन्तर है। अतः

अधो लोक > तिर्यक् लोक > ऊर्ध्व लोक

2. अधोलोक में सात पृथिवियों का होना बताया गया है जो वहां के द्रव्यमान और घनत्व को बढ़ाता है। ऊर्ध्व लोक में वैक्रिय पुद्गलों का बाहुल्य है जो प्रायः भारहीन हैं। तिर्यक् लोक का द्रव्यमान अधोलोक से कम और ऊर्ध्व लोक से अधिक है। इससे हम विज्ञान के संदर्भ में कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

- (i) तीनों लोकों के घनत्व में अंतर है।
- (ii) द्रव्यमान, आकार और घनत्व की भिन्नता के कारण तीनों लोकों का गुरुत्वाकर्षण भिन्न-भिन्न है।
- (iii) गुरुत्वाकर्षण की भिन्नता के कारण गतियों में भिन्नता है।
- (iv) समस्त लोक समांगी (Homogenous) नहीं है।

वैज्ञानिक धारणा

आगमिक निष्कर्षों की हम भौतिक विज्ञान से तुलना करेंगे।

घनत्व

- (i) भौतिक विज्ञान के अनुसार जब प्रकाश कि किरण हवा से जल या अन्य किसी द्रव्य से गुजरती है या पानी से हवा के माध्यम

में प्रवेश करती है तो वह सीधी रेखा में गमन नहीं करती। वह वक्र हो जाती है। भौतिक विज्ञान का यह सामान्य सिद्धान्त है कि प्रकाश की किरण किसी भी समांगी माध्यम से सीधी रेखा के मार्ग से गुजरती है; लेकिन एक समांगी माध्यम से दूसरे समांगी माध्यम में गुजरते समय वह अपने मार्ग से विचलित हो जाती है। अधिक घनत्व के माध्यम से कम घनत्व के माध्यम में जाने से गति बढ़ती है और कम घनत्व से अधिक घनत्व वाले माध्यम में जाने से गति में कमी आती है।

इसी प्रकार जब एक लोक से दूसरे लोक में वस्तु या प्राणी आते हैं अर्थात् क्षेत्र परिवर्तन करते हैं जिनके घनत्व में भिन्नता है तो गति परिवर्तन का होना वैज्ञानिक प्रतीत होता है। अब हम पूर्व में गतियों के संबंध में दी गई सारणी का अवलोकन करेंगे। वहां हम पाते हैं कि बढ़ते हुए घनत्व के कारण ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक में और तिर्यक् लोक से अधो लोक में शक्र की, वज्र की गतियां कम हो जाती हैं। इससे घटना स्पष्ट हो जाती है कि जब वज्र या इन्द्र ने ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक में प्रवेश किया होगा जो गति परिवर्तन का कारण बना है।

गुरुत्वाकर्षण

- (ii) दूसरा कारण यह माना जा सकता है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण एक ही स्थान पर एक प्रकार का द्रव्य त्वरित (accelerate) हुआ है और दूसरे प्रकार का मंद (decelerate) हुआ है। भौतिक विज्ञान आज मानने लगा है कि गुरुत्वाकर्षण के द्वारा आकर्षण और विकर्षण दोनों होता है। जो निहारिकाएं आकाश में समय के साथ दूर-दूर होती जा रही हैं वह गुरुत्वाकर्षण के विकर्षण गुण के कारण हो रही हैं। विज्ञान जगत में माना गया है कि काल ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है, आकाश भी विस्तार ले रहा है। विस्तार लेते हुए आकाश में निहारिकाएं दूर हो रही हैं इसका कारण गुरुत्वाकर्षण का विकर्षण गुण माना गया है। यही संभावना उपर्युक्त घटना में गति-विज्ञान में प्रदर्शित हुई प्रतीत होती है कि ऊर्ध्व लोक से तिर्यक् लोक में शक्र और वज्र की गति धीमी इसलिए हुई है कि दूसरे लोक की वस्तु के लिए गुरुत्वाकर्षण का विकर्षण गुण-धर्म प्रभावी हुआ है।

अतः शक्र, वज्र और चमर का विभिन्न लोकों में गतियों का अंतर, घनत्व और गुरुत्वाकर्षण की भिन्नता से हुआ है।

गति के इस प्रकरण से यह माना जा सकता है कि जैनों ने गुरुत्वाकर्षण में धन (+) और ऋण (-) दोनों गुणधर्म मानकर, अपनी वैज्ञानिक क्षमता का परिचय दिया है। विज्ञान के क्षेत्र में न्यूटन के समय से गुरुत्वाकर्षण का अर्थ केवल आकर्षण से ही लिया जाता रहा है लेकिन अब विकर्षण को भी गुरुत्वाकर्षण का ही गुणधर्म माना जाता है। जिस प्रकार विद्युत शक्ति धन (+) और ऋण (-) दो प्रकार की होती है वैसे ही गुरुत्वाकर्षण का धन (+) और ऋण (-) मानकर जैनों ने गति-विज्ञान के नियम निर्धारित किए हैं जो उनकी विकसित प्रज्ञा का परिणाम है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन के गणितीय प्रकरणों को विस्तार देते हुए विज्ञान सम्मत अध्ययन करने की जो प्रेरणा दी है, यह उनकी जैन दर्शन को बहुत बड़ी देन है।



परमाणु की गति

आचार्य महाप्रज्ञ गति प्रकरण को विस्तार देते हुए लिखते हैं कि जैन आगम साहित्य में परमाणु की मंदतम गति और तीव्रतम गति का उल्लेख आया है। वहां कहा गया है कि —

- (i) परमाणु अगर मंदतम गति से चले तो एक समय (काल का सूक्ष्मतम अंश) में एक आकाश प्रदेश से दूसरे निकटतम आकाश प्रदेश (Space) तक ही गति करता है।
- (ii) परमाणु अगर तीव्रतम गति से चले तो एक समय में लोक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गति करता है। लोक के दो सिरों की अधिकतम दूरी 14 रज्जु है जो असंख्य योजन के समान है।

यहां परमाणु की तीव्रतम गति का विषय चिन्तनीय है क्योंकि विज्ञान के अनुसार तीव्रतम गति केवल प्रकाश के कण की निर्वात (Vacuum) में होती है जो एक सैकण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की है। इस दृष्टि से जैन सम्मत परमाणु की गति, अवैज्ञानिक प्रतीत होती है। महाप्रज्ञ जी ने इसके समाधान में, पदार्थ की गति दो प्रकार की बताई है —

- (i) स्पृशद् गति
- (ii) अस्पृशद् गति

स्पृशद् गति परिणाम का अभिप्राय स्थूल पदार्थ की गति से है जो प्रयत्न विशेष से क्षेत्र प्रदेशों का स्पर्श करते हुए तथा अन्य परमाणु और पदार्थ के स्पर्श करते हुए किसी काल खण्ड में होती है। यह गति स्वाभाविक भी हो सकती है और प्रायोगिक भी। यह साधारण गति आकाश काल सापेक्ष होती है। इसमें देशन्तर और काल भेद का अनुपात गति की व्याख्या करता है।

अस्पृशद् गति की विशेषता यह है कि सूक्ष्म पदार्थ गति करता हुआ क्षेत्र प्रदेशों (आकाश) से और अन्य पदार्थों से अप्रभावित रहता है तथा उनको स्वयं भी प्रभावित नहीं करता।

अस्पृशद् गति, स्थूल पदार्थ में नहीं होती। इस गति में 'समय' शून्य हो जाता है ।

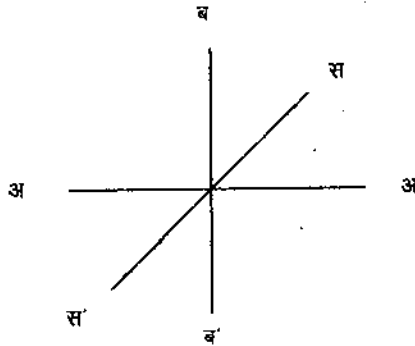
$$\text{गति} = \frac{\text{देशान्तर}}{\text{समय}} = \frac{\text{देशान्तर}}{0} = \infty \text{ अनन्त}$$

वैज्ञानिकों ने सैद्धान्तिक रूप से उपर्युक्त गणितीय समीकरण को माना है, लेकिन वास्तव में कोई कण अनन्त गति को प्राप्त नहीं करता।

गति का संबंध आकाश और काल से है अतः इस संबंध में हम आकाश के तीन आयाम की जानकारी देंगे।

आकाश के तीन आयाम

आकाश दिखाई नहीं देता लेकिन आकाश में पड़ी हुई वस्तु दिखाई देती है। अगर किसी कमरे में एक पुस्तक टेबल पर पड़ी हुई हो तो उसका स्थान का विवरण देते हुए यह कहा जा सकता है कि वह पुस्तक एक तरफ से (लम्बाई वाली) दीवार से 5 मीटर दूर है तथा दूसरी तरफ से (चौड़ाई वाली) दीवार से 3 मीटर दूर है और जमीन से 4 मीटर उपर टेबल पर है। इस प्रकार आकाश में वस्तु के स्थान का ज्ञान तीन आयामों से या गणित की भाषा में तीन अक्षों (Coordinates) से किया जाता है। इसी प्रकार आकाश में अवस्थित सूर्य, चन्द्र आदि की गति और स्थिति तीन आयामों से निर्धारित होती है। सच तो यह है कि तीन अक्षों के द्वारा हम समस्त जगत् की वस्तुओं के स्थान को बता सकते हैं।



इसी चित्र में दर्शाया गया है कि आकाश के तीन आयाम हैं, जो परस्पर में लम्बवत् हैं। वे हैं -

1. अ - अ'
2. ब - ब'
3. स - स'

आकाश की इस प्रारम्भिक जानकारी के बाद हम अस्पृशद् गति के बारे में विचार करेंगे।

अस्पृशद् गति के अध्ययन के अन्तर्गत हम जैन आगमों के तीन प्रचलित प्रकरणों को प्रस्तुत करेंगे।

- (1) पुनर्जन्म
- (2) केवली समुदघात
- (3) मुक्त जीव की गति

(1) पुनर्जन्म — मृत्यु के बाद जीव की दूसरे जन्म में जाते समय बीच में होने वाले गति अन्तराल गति कहलाती है। इसमें एक समय में ही समश्रेणी में एक बड़ी लम्बी दूरी की यात्रा हो जाती है। यह अस्पृशद् गति दो प्रकार की है —

- (1) ऋजु गति
- (2) वक्र गति

ऋजु गति एक समय की होती है जब मृत जीव का उत्पत्ति स्थान समश्रेणी होता है अर्थात् आकाश के एक ही आयाम में होता है, दूरी चाहे जो हो। इस गति में देश और समय के अनुपात का संबंध नहीं है अतः यह आकाश-काल निरपेक्ष गति है।

एक ही आयाम अर्थात् सरल रेखा में जब जीव का स्थानांतरण होता है तो उसे ऋजु गति बतलाया है, लेकिन जब आयाम बदलते हैं अर्थात् लम्बवत् गति होती है तो गति वक्र (विग्रह) कहलाती है। इस गति में दो, तीन, चार समय भी लग जाते हैं क्योंकि दो और तीन घुमाव आने संभव है। लोक की बनावट इसी प्रकार की है जिसके मध्य में शीर्षवृत्त त्रसनाड़ी है। त्रस नाड़ी से बाहर जीव की गति में एक घुमाव बढ़ जाता है। पुनर्जन्म के समय जीव की गति, परमाणु की तीव्रतम गति के अनुसार होती है। जीव लोक के एक भाग से दूसरे भाग में पहुंच जाता है। यह आकाश संबंधी स्थिति है।

(2) केवली समुदघात — जैन तत्व चिंतन में केवली समुदघात एक विशिष्ट प्रक्रिया है जिसमें आत्मा के प्रदेश, समस्त लोकाकाश के प्रदेशों में व्याप्त हो जाते हैं। व्याप्ति के समय जब आत्म प्रदेश विस्तार लेते हैं तो यह गति भी आकाश-काल निरपेक्ष होती है जिससे केवल चार समय में आत्म-प्रदेश लोक के अन्त तक व्याप्त हो जाते हैं।

- (i) पहले समय दण्डाकार रूप एक आयाम में बनता है।
- (ii) दूसरे समय कपाट स्वरूप बनता है अर्थात् दो आयामों में आत्म प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं।
- (iii) तीसरे समय मंथान करता है और तीन आयामों में आत्म प्रदेश व्याप्त हो जाते हैं।
- (iv) चौथे समय में आत्म प्रदेश लोक व्यापी हो जाते हैं।

इस गति में समय और स्थानान्तरण का कोई अनुपात नहीं रहता अतः गति निरपेक्ष होती है।

जर्मन विद्वानों ने जैन आगमों में वर्णित 'समय' के दो अर्थ लिए हैं। पहला काल का सूक्ष्मतम अंश, और दूसरे में समय का अर्थ, दुर्लभ अवसर लिया है। इस दृष्टि से केवली समुद्घात, परमाणु की तीव्रतम गति, अन्तराल गति आदि वर्णनों में जहां एक समय का उल्लेख है उसे दुर्लभ अवसर कहना उचित है।

(3) मुक्त जीव की गति — जब जीव मुक्त होता है तब आत्मा ऊर्ध्व गति से एक समय में ही लोक के अग्र भाग में ही पहुंच जाती है। यहां भी असंख्य योजन तक के स्थानांतरण में गति के लिए एक समय ही कहा गया है अतः यह गति भी आकाश काल निरपेक्ष गति है।

ये तीन दुर्लभ अवसर (Singularity) हैं जहां एक समय (काल की सूक्ष्मतम इकाई) में लोक के दूरतम स्थानों तक गति बताई गई है। गति का संबंध आकाश और काल दोनों से है। अतः इन प्रकरणों के संबंध में काल के स्वरूप को जानना भी उपयोगी रहेगा क्योंकि जैन आगमों में वर्णित 'एक समय' का विशेष अभिप्राय है और इसकी चर्चा इसी पुस्तक में 'काल' शीर्षक के अन्तर्गत की गई है।

निष्कर्ष

यहां इतना जानना पर्याप्त है कि उक्त उद्धरणों में जीव और सूक्ष्म पदार्थ के आकाश में समश्रेणी गति में केवल एक समय ही माना गया है, स्थानांतरण चाहे जितना हो। एक आकाश प्रदेश से निकटतम दूसरे आकाश प्रदेश तक जाने में एक समय लगता है वहां 14 रज्जु पर्यंत दूरी में गति करने पर भी एक ही समय लगता है। यह सूक्ष्म जगत की स्थूल जगत से भिन्नता है। जब जीव तथा सूक्ष्म पुद्गल लम्बवत होकर (विग्रह गति) किसी अन्य आयाम में स्थानान्तरित होते हैं तो वहां भी इसी प्रकार 'एक समय' बढ़ जाता है। जितने घुमाव होंगे उतने ही समय बताए गए हैं। इन्हें दुर्लभ घटना मानना

चाहिए जहां आकाश काल के भौतिक नियम लागू नहीं होते क्योंकि यहां 'समय' शून्य हो जाता है। सूक्ष्म जगत में काल के एक 'समय' का अभिप्राय शून्य समय से है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भौतिक विज्ञान में आकाश-काल की निरपेक्ष गति केवल प्रकाश के कणों में मानी गई है। गति विज्ञान के अध्याय में हमने यह वर्णन किया है कि वे ही कण प्रकाश-गति प्राप्त कर सकते हैं जिनका नैसर्गिक द्रव्यमान न हो अर्थात् वे द्रव्यमान रहित (Massless Particles) हो। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अभी द्रव्यमान रहित कणों के व्यवहार की मान्यता नहीं हुई है। यद्यपि ग्लूऑन, ग्रेविटॉन, फोटॉन द्रव्यमान रहित कण कहे गए हैं लेकिन विस्तारपूर्वक चर्चा अभी शेष है। अभी तक प्रकाश-गति से अधिक किसी की भी गति स्वीकार नहीं की गई है। यद्यपि कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों ने प्रकाश की गति से अधिक गति होना प्रमाणित किया है।

प्रयोग

कुछ वर्षों पूर्व न्यूजर्सी, प्रिंसटन में एक प्रयोग किया गया। लेसर किरणों को सीजियम (Caesium) की भाप में से गुजारा गया। वैज्ञानिकों ने पाया कि किरणें चेम्बर में प्रवेश होने से पहले ही बाहर निकल रही हैं। यह विज्ञान की भाषा है। इसका अभिप्राय है कि लेसर की किरणें प्रकाश की गति से तेज गति से निकल रही हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रकाश की गति से अधिक गति विद्यमान है। यह कहा जा सकता है कि विज्ञान जगत में गति के क्षेत्र में विकास की अभी संभावनाएं हैं। उनके निष्कर्षों से ही परमाणु की तीव्रतम गति के संबंध में निश्चित रूप से कहा जा सकेगा।

जैन आगम साहित्य में भौतिक विज्ञान के अनेक विषयों में अस्पृशद् गति का वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सूक्ष्म जगत में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी देती है। वर्तमान में भौतिक वैज्ञानिक भी क्वार्क की खोज के बाद सूक्ष्म जगत के व्यवहार की विशेषताओं को जानने में प्रयत्नशील हैं। इससे आशा की जा सकती है कि सूक्ष्म जगत के आवरणों, को प्रत्यक्ष रूप जाना जा सकेगा।

भावितात्मा द्वारा नाना रूपों का निर्माण

भारतीय प्राच्य साहित्य में ऐसे प्रकरण उपलब्ध हैं जिनमें स्वयं के अनेक अथवा नाना रूपों के निर्माण का वर्णन मिलता है। इसे चामत्कारिक शक्ति ही कहा जाता रहा है। जो व्यक्ति विशेष प्रकार की साधना कर लेता है वह अपने विविध रूप बना लेता है। जैन आगम भगवती में भगवान महावीर और उनके प्रथम गणधर गौतम के बीच के प्रश्नोत्तर में ऐसे प्रकरण उपलब्ध हैं जिसमें भावितात्मा अनगार की वैक्रिय शक्ति के विविध पक्षों पर विमर्श किया गया है। वैक्रिय लब्धि, नाना रूपों के निर्माण में सहायक बताई गई है।

विस्मृत विषय

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संबंध में विस्तृत टिप्पणी की है तथा लिखा है कि वैक्रिय शक्ति का विकास देवों में जन्मना होता है, मनुष्यों में साधना-कृत होता है। इसका संबंध अध्यात्म विद्या अथवा रहस्य विद्या (Occult Sciences) से है। वर्तमान में भावितात्मा और वैक्रिय शक्ति के साधना सूत्र विस्मृत हो गए हैं। इन शक्ति सूत्रों की संकलना भी भगवती सूत्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इस विस्मृत विषय के संबंध में हम पाठकों को जानकारी देने का प्रयत्न करेंगे।

भावितात्मा का सामर्थ्य

भावितात्मा शब्द जैन आगमों का महत्वपूर्ण शब्द है। इसके पीछे रहस्यमयी भावना छिपी हुई है। जो भावितात्मा होता है वह अपनी भावना के अनुसार काम करने में सक्षम होता है। भावना का अर्थ केवल कुछ सोच लेना मात्र नहीं है। इसका अर्थ है — हमारे ज्ञान तन्तुओं को तथा कोशिकाओं को अपने वशवर्ती कर लेना, उन पर अपनी भावना को अंकित कर देना। हमारे शरीर में अरबों-अरबों न्यूरोन्स हैं, जीव कोशिकाएँ हैं ये न्यूरोन हमारी अनेक पृवृत्तियों का नियमन करते हैं। ये नियामक हैं। जो संकल्प न्यूरोन तक पहुंच जाता है वह सफल हो जाता है।

भावितात्मा का अर्थ, संयम और तप इन दो भावनाओं से भावित आत्मा वाला बताया है। भावितात्मा प्रायः अवधिज्ञान तथा लब्धियों (शक्तियों) से भी सम्पन्न होते हैं। ये तपस्वी मुनि होते हैं। लब्धियाँ भी अनेक प्रकार की होती

हैं, जिनके भिन्न-भिन्न परिणाम होते हैं। रूप परिवर्तन और नाना रूपों का निर्माण, वैक्रिय लब्धि के द्वारा होता है। वीर्य लब्धि उसकी सहायक है। हम यह बता आए हैं कि इस शक्ति का विकास देवों में जन्मना होता है, क्योंकि उनके शरीर मूलतः वैक्रिय पुद्गलों से निर्मित है। वैक्रिय शरीर की विशेषता है कि उसमें मनुष्य शरीर अर्थात् औदारिक शरीर की भांति हाड, मांस और मज्जा नहीं होती। वैक्रिय शरीर के पुद्गल, औदारिक शरीर के पुद्गलों से सूक्ष्म होते हैं और घनीभूत होते हैं। अतः देवों के यह विक्रिया स्वभावगत हो जाती है। लेकिन मनुष्य के लिए वैक्रिय शक्ति को प्राप्त करना कठिन है। मनुष्यों को इसके लिए मंत्र, वशीकरण, योग आदि का सहयोग लेना होता है।

वैक्रिय शक्ति द्वारा निर्मित रूपों की सघन व्याप्ति बताने के लिए सूत्रकार ने दो दृष्टांत दिए हैं कि जैसे कोई युवक युवती का हाथ प्रगाढ़ता से पकड़ता है अथवा गाड़ी के चक्के की नाभि आरों से चारों ओर जकड़ी होती है वैसे ही वैक्रिय शक्ति निर्मित रूप वैक्रिय कर्ता से प्रतिबद्ध रहते हैं और अपने शरीर के प्रतिबद्ध रूपों से पूरे क्षेत्र को भर देते हैं। इस प्रक्रिया में भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुदघात से समवहत होता है तथा नाना रूपों का निर्माण करने में समर्थ होता है। सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कहा है कि वह अभियोजन शक्ति के द्वारा परकाय (दूसरे शरीर) में भी प्रवेश कर व्यापृत या संचालित करने में भी समर्थ होता है। वह बहिर्वर्ती पुद्गलों को ग्रहण कर एक स्त्री रूप निर्माण करने में समर्थ है। वह पताका, ढाल, तलवार आदि किसी रूप में विक्रिया कर सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संबंध में लिखा है कि, अनगार दो प्रकार के होते हैं —

1. भावितात्मा अनगार
2. संवृतात्मा अनगार

जो संवृतात्मा होता है वो वीतरागता की दिशा में विकास करता है। जो भावितात्मा होता है, उसमें शक्ति के प्रयोग की क्षमता का विकास होता है। वह लब्धि-सम्पन्न हो जाता है। चतुर्दशपूर्वी भी वैक्रिय लब्धि से सम्पन्न होते हैं। वे एक घड़े से हजार घड़ों का निर्माण कर सकते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ इस संबंध में लिखते हैं कि चतुर्दशपूर्वी को श्रुतज्ञान के द्वारा उत्कारिका भेद की प्रक्रिया ज्ञात होती है। उसके माध्यम से एक पदार्थ के समान अनेक पदार्थों का निर्माण कर सकता है। 'उत्कारिका भेद'

को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि एरण्ड का बीज जैसे उछलता है वैसे एक परमाणु स्कन्ध से दूसरे परमाणु स्कन्ध का चटक कर उछलना उत्कारिका भेद है। पण्णवणा सूत्र में पांच प्रकार के भेद बताए हैं उसमें पांचवा भेद उत्कारिका भेद है।

1. खण्ड भेद
2. प्रतर भेद
3. चूर्णिका भेद
4. अनुतरिका भेद
5. उत्कारिका भेद

पतंजलि में भी अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों का निरूपण किया है।

भावितात्मा अनगार जिसने भावनाओं का अभ्यास किया है, वह भी नाना रूपों का निर्माण कर सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ इसे संकल्प शक्ति का तथा भावना का प्रयोग मानते हैं। यदि भावना का प्रयास पुष्ट हो जाए, संकल्प शक्ति का विकास हो जाए तो विविध रूपों के निर्माण में कोई बाधा नहीं आती। आहारक लब्धि के द्वारा एक पुतले का निर्माण करना, विचारों का सम्प्रेषण करना, विचारों को संगवाना, अपना प्रतिबिम्ब प्रेषित करना — ये सारे संकल्प-शक्ति के चमत्कार हैं। भावितात्मा अनगार नाना रूप बनाते समय वैक्रिय समुदघात करता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने वैक्रिय समुदघात के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि —

आत्मा शरीर में रहती है। उसके असंख्यात प्रदेश (अवयव) होते हैं। विशेष परिस्थिति में वे प्रदेश शरीर से बाहर भी निकल जाते हैं। उनका बाहर निकलना समुदघात कहलाता है। समुदघात के सात प्रकार निर्दिष्ट हैं —

1. वेदना समुदघात
2. कषाय समुदघात
3. मारणान्तिक समुदघात
4. वैक्रिय समुदघात
5. तैजस समुदघात
6. आहारक समुदघात
7. केवली समुदघात

रूप निर्माण की प्रक्रिया

जब कोई अनेक रूपों का निर्माण करने के लिए अपनी शक्ति का उपयोग करता है, उस समय आत्मा के प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं। उस अवस्था में वह नाना रूपों का निर्माण करने वाला वैक्रिय समुदघात से समवहत होता है। वह वैक्रिय समुदघात की प्रक्रिया का पहला चरण है।

दूसरा चरण है — दण्ड का निर्माण। उसकी लम्बाई संख्येय योजन की होती है। उसकी चौड़ाई और मोटाई शरीर-प्रमाण होती है। वह आत्मा के प्रदेश और कर्मपुद्गलों के योग से निर्मित होता है।

तीसरा चरण है — रत्नों के असार पुद्गलों का परिशोधन कर सार पुद्गलों को ग्रहण करना।

चौथे चरण में वैक्रिय-कर्ता वांछित रूप निर्माण के लिए फिर दूसरी बार वैक्रिय समुदघात का प्रयोग कर उसका रूप का निर्माण करता है।

नाना प्रकार के रूपों का निर्माण करने में अनेक मणियों के सूक्ष्म पुद्गलों का उपयोग किया जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे वैज्ञानिक उपलब्धियों से तुलना करते हुए लिखा है कि लेसर की किरणों का उपयोग आज वैज्ञानिक जगत में भी प्रचलित है तथा लेसर किरणों के द्वारा अनेक रूप एक साथ प्रतिबिम्बित किए जा सकते हैं। वह भी मणि के सूक्ष्म पुद्गलों का एक प्रयोग माना जा सकता है।

मणियों के सूक्ष्म पुद्गल

वृत्तिकार ने इस विषय में प्रश्न उपस्थित किया है — मणियों के पुद्गल औदारिक (स्थूल) हैं। फिर भी उनका वैक्रिय शरीर के निर्माण में कैसे उपयोग हो सकता है ? वैक्रिय शरीर के निर्माण में वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों का ही ग्रहण होना चाहिए। इस प्रश्न का समाधान उन्होंने काव्य की भाषा में ही किया है। उनका मत है कि मणियों का उल्लेख सार पुद्गलों का प्रतिपादन करने के लिए किया गया है। इसलिए प्रस्तुत सूत्रांश का अर्थ रत्न, व्रज आदि मणि नहीं, किंतु उन मणियों के तुल्य सार पुद्गल हैं। वृत्तिकार ने मतान्तर का उल्लेख किया है। उसका अभिप्राय यह है कि वैक्रिय कर्ता वैक्रिय रूप निर्माण के समय औदारिक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है। तत् पश्चात् वे वैक्रिय के रूप में परिणत हो जाते हैं।

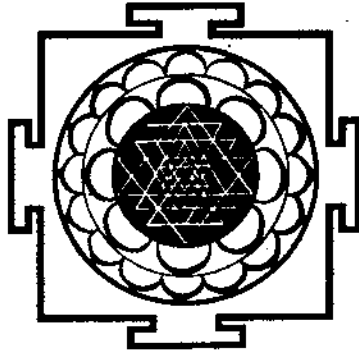
मूल सूत्र-पाठ के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मणियों के सूक्ष्म पुद्गल शरीर-निर्माण के काम में लिए जाते हैं। इसलिए उनका वैक्रिय वर्गणा के रूप में परिणमन होना संभव लगता है।

निष्कर्ष

यह आश्चर्यजनक बात है कि उपर्युक्त वर्णन के अन्त में सूत्र में कहा गया है कि भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप से न तो ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा। अतः इस वर्णन में, भावितात्मा अनगार के सामर्थ्य का ही विवेचन मात्र हुआ है।

भावितात्मा अनगार सम्यक् दृष्टि होते हैं इसलिए यह संभावना बनती है कि वे लब्धि का प्रयोग नहीं करेंगे। स्थानांग सूत्र में भावितात्मा को 'ऋद्धिमान' कहा गया है। भगवती में भावितात्मा की ऋद्धि का विस्तृत विवरण मिलता है। सूयगङ्गो में 'श्रुत भावितात्मा' का प्रयोग मिलता है। भगवती में वीतराग के लिए भी भावितात्मा का प्रयोग किया गया है। इन सारे संदर्भों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आगम-युग में भावितात्मा शब्द आदरसूचक तथा बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। महाभारत और योगवशिष्ट में भी भावितात्मा का प्रयोग मिलता है। इस दृष्टि से यह सही लगता है कि जो संवृतात्मा है वे वैक्रिय लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं किंतु, भावितात्मा (मायावी) कर सकते हैं। ऐसे प्रकरण आगम साहित्य में उपलब्ध हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस विषय के साथ लेसर किरणों का उल्लेख कर खोज के लिए मार्ग को प्रशस्त कर दिया है।



भावितात्मा द्वारा आकाश-गमन

पिछले अध्याय में भावितात्मा द्वारा नाना रूपों के निर्माण का अध्ययन किया है। इसी भांति भावितात्मा द्वारा आकाश-गमन का विषय समझना चाहिए क्योंकि इस प्रकरण के अन्त में भी यही कहा गया है कि भावितात्मा ने क्रियात्मक रूप से न तो ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा। अतः यह वर्णन भी भावितात्मा के सामर्थ्य का ही विवेचन करता है। इसमें भी यही संभावना बनी रहती है कि कोई भावितात्मा (सायावी) के लिए आकाश-गमन, विक्रिया से करना संभव हो सकता है।

आकाश-गमन के विषय से संबंधित ज्ञान, आज विज्ञान के पास है क्योंकि बीसवीं शताब्दी में अंतरिक्ष की अनेक उड़ानें हो चुकी हैं। पाठकों के लिए हम इस विषय से संबंधित सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैविक दृष्टि से अंतरिक्ष का विभाजन निम्न प्रकार से माना जाता है।

- (i) 0 से 12000 फुट की ऊँचाई तक मानव जीवन की संभावनाएं हैं। इसके ऊपर ताप और दाब की कठिनाइयां हैं लेकिन 63000 फीट की ऊँचाई तक मुश्किलों के साथ मानव जीवन संभव है।
- (ii) 63000 फीट से 140 मील की ऊँचाई तक आंशिक रूप से अंतरिक्ष का क्षेत्र माना जाता है। 140 मील से 600 मील और इससे ऊपर, पूर्ण रूप से अंतरिक्ष का क्षेत्र आ जाता है जहां मानव जीवन असंभव है क्योंकि यहां दबाव पूर्ण रूप से शून्य हो जाता है। पूर्ण निर्वात है।

मानव जीवन के लिए तथा इस औदारिक शरीर के लिए विशेष ताप और दाब की आवश्यकता रहती है।

- (iii) 60 मील से 650 मील की ऊँचाई में 1×10^{-7} मि.मी. से 1×10^{-11} मि.मी. दाब रहता है जो इस शरीर में दाब बनाए रखने के अनुकूल नहीं है अतः इस दाब में जिंदा रहना संभव नहीं। इसमें ऊपर पूर्ण अंतरिक्ष में ताप 455°F हो जाता है तथा विविध कास्मिक विकिरणों का प्रभाव बढ़ जाता है अतः वहां भी मानव जीवन संभव नहीं है। यहां शून्य गुरुत्व और भारहीनता जैसी

परिस्थितियां भी मानव जीवन के अनुकूल नहीं है। भारहीनता के कारण मनुष्य तैर सकता है। उल्काओं से टकराने का डर बराबर बना रहता है।

ऐसी परिस्थितियों में यांत्रिक संरक्षण के साथ अंतरिक्ष की यात्राएं हो रही हैं जहां अंतरिक्ष यान 30000 से 40000 मील प्रति घंटा की रफ्तार से पृथ्वी के चक्कर लगाता है। अंतरिक्ष यान में दाब रहित स्पेस-सूट पहनने होते हैं और बाहर विचरण करते समय दाब युक्त स्पेस सूट पहनना होता है। ऑक्सीजन का साथ होना आवश्यक होता है। अंतरिक्ष यान में 20° F से 200° F तक तापमान रखा जाता है।

विद्याचारण साधु

जैन साहित्य में कहा गया है कि जंघाचारण और विद्याचारण साधु आकाश गमन करते हैं। भगवती सूत्र में कहा है कि **विद्याचारण साधु** सूत्राभ्यास के कारण आकाश गमन करने की लब्धि प्राप्त करते हैं। बेले-बेले (क्रमिक रूप से दो दिन लगातार निराहार रहने के बाद एक दिन आहार लेना और फिर दो दिन निराहार रहना) तप करते हैं। ऋद्धिवान देवता तीन चुटकी में जिस तरह जम्बू द्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार से कुछ अधिक योजन के तीन चक्कर काट लेते हैं, उस गति से विद्याचारण साधु मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर एक उपपात करते हैं। फिर दूसरे उपपात से सीधे नन्दीश्वर द्वीप पहुंच जाते हैं। वहां से लौटते समय फिर मानुषोत्तर पर्वत पर विश्राम लेते हैं। इसी प्रकार गमन करते हुए मेरु पर्वत पर जाते हैं तो पहला विश्राम नन्दनवन पर लेते हैं और दूसरे उपपात में एक अन्य वन पहुंच जाते हैं, लौटते समय फिर नन्दनवन में ठहरना पड़ता है।

जंघाचारण साधु

जंघाचारण साधु तेले-तेले (क्रमिक रूप से तीन दिन लगातार निराहार रहने के बाद एक दिन आहार लेना और फिर तीन दिन निराहार रहना) तप करते हैं। इनकी गति विद्याचारण से सात गुनी अधिक है। ये सीधे तेरहवें रुचक द्वीप पर पहुंच जाते हैं लेकिन लौटते समय मानुषोत्तर पर्वत पर विश्राम लेना होता है। भगवती सूत्र में कहा है कि भावितात्मा अनगार (वैक्रिय लब्धि के सामर्थ्ययुक्त) तलवार की धार के ऊपर रह सकते हैं फिर भी उनके छेदन नहीं होता है। इस वर्णन के अध्ययन से यह सुनिश्चित होता है कि लब्धि प्राप्त अनगार (साधु) कठिन प्रयोग कर सकते हैं जो आज चमत्कारिक

माने जाते हैं। इन प्राचीन प्रयोगों के सन्दर्भ में आज की अन्तरिक्ष उड़ान की उपब्धियों की चर्चा करेंगे।

अन्तरिक्ष उड़ान

अन्तरिक्ष उड़ानों के निष्कर्षों से स्पष्ट है कि औदारिक शरीर अपने आवश्यक ताप और दाब के बिना सुरक्षित नहीं रह सकता। मेडिकल साइंस के अनुसार मानव शरीर के सुरक्षित जीवन के लिए 76 सेंटीमीटर दाब (Atmospheric Pressure) और साधारणतः 25 डिग्री सेन्टीग्रेड से 32 डिग्री सेंटीग्रेड ताप की आवश्यकता रहती है। विशेष परिस्थितियों में शून्य डिग्री सेंटीग्रेड से 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक मानव शरीर संरक्षण कवच में रह सकता है। आगमिक दृष्टि से यह माना जा सकता है कि वैक्रिय पुद्गल जो अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, अगर साधु, सूक्ष्म शरीर का कवच बना लें तो वह ऊंचाईयों तक जा सकता है। श्वेताम्बर परम्परा में पर्याप्त वायुकाय जीवों में वैक्रिय शरीर होने का उल्लेख है। धवला में पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों के भी वैक्रिय शरीर होने का उल्लेख मिलता है। वायुकाय में वैक्रिय शरीर संप्राप्त है पर उसकी रूप-निर्माण करने की शक्ति बहुत कम है। वह पताका के रूप का निर्माण कर सकता है। उसका संस्थान पताका के आकार का है। वह विक्रिया के द्वारा अपने पताका वाले आकार को बड़ा बना सकता है। वायुकाय अपनी शक्ति, अपनी क्रिया और अपने प्रयोग से गति करता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने भगवती भाष्य में बताया है कि वायुकाय का मूल शरीर औदारिक है किन्तु उत्तर शरीर वैक्रिय है। अतः वायुकाय में वैक्रिय शरीर का अस्तित्व स्वीकृत है। वैक्रिय शरीर का अर्थ है विविध क्रियाएं करने वाला शरीर। वायुकाय विक्रिया से विविध रूपों का निर्माण करने में समर्थ नहीं है किन्तु वह विविध प्रकार की गति करने में समर्थ है। अतः **जंघाचारण और विद्याचारण साधु आकाश-गमन के समय सूक्ष्म शरीर का कवच बनाकर और इसके लिए बादलों की या वायुकाय की विक्रिया शक्ति का सहयोग लेकर संभवतः गति करते होंगे।**

आचार्य महाप्रज्ञ 'प्राच्य विद्या' पुस्तक में लिखा है कि 'जंघाचारण ऋद्धि के द्वारा साधक मकड़ी के जाले से निष्पन्न तंतु के सहारे आकाश में उड़ान भर सकता है।' जंघाचारण मुनि सूर्य की किरणों के सहारे भी गमन करता है। जंघाचारण ऋद्धि के द्वारा भूमि से चार अंगुल उपर आकाश में पिंडली का उत्क्षेप-निक्षेप कर शीघ्र चलने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

आकाश गामिनी ऋद्धि के द्वारा पर्यङ्गासन में स्थिति अथवा कायोत्सर्ग की मुद्रा में सुप्त साधक पैरों का उत्क्षेप और निक्षेप किए बिना ही आकाश मार्ग से यात्रा कर सकता है।

वर्तमान में विज्ञान के क्षेत्र में अंतरिक्ष का ज्ञान अत्यंत विकसित अवस्था में है। आशा की जा सकती है कि यह ज्ञान उपर्युक्त प्रकरण को समझने में अधिक सहयोगी हो सकेगा।



कृष्णराजि, तमस्काय तथा ब्लैक होल

आकाश में रात्रि के समय आकाश-गंगा को हमने कई बार निहारा हैं। आकाश-गंगा तारों का झुरमुट है। अनेक तारे समूह में होने से इनकी चमक-दमक साधारण व्यक्ति को आकर्षित करती हैं। ये तारे गति करते हैं, स्थिर नहीं है। इनकी गति बहुत धीमी प्रतीत होती हैं क्योंकि ये बहुत दूर है। दूरी के कारण इनका आकार भी छोटा प्रतीत होता है यद्यपि कई तारे सूर्य के आकार से बहुत बड़े हैं। इन आकाश-गंगा के सघन प्रकाश के नीचे गहरे काले गढ़े हो संकते है, ऐसा अनुमान संभव नहीं था। जर्मनी में म्यूनिरव के निकट मैक्सप्लांक इंस्टीट्यूट, गारचिंग में अनुसंधानों से ज्ञात हुआ कि आकाश-गंगा के नीचे सघन धूल के बादल है और इस धूल में कई गढ़े हैं जो बहुत गहरे हैं। अमेरिका के वैज्ञानिक जॉन व्हीलर ने 1969 में इन गढ़ों को ब्लैक होल का नाम दिया यद्यपि ब्लैक होल का इतिहास दो सौ वर्ष पुराना रहा है। पिछले 30-40 वर्षों में ब्लैक होल के संबंध में जो जानकारी मिली है वह नई है लेकिन अधूरी है।

तमस्काय क्या है ?

जैन आगम भगवती सूत्र में तमस्काय और कृष्णराजि का वर्णन आया है। इसके अनुसार हमारी पृथ्वी के समान ही आकाश में सुदूर छोर पर कृष्ण वर्ण के पृथ्वी के शिलाखण्ड हैं जिन्हें कृष्ण-राजि कहा है। इनकी गहरी काली छाया चारों ओर विस्तृत होती है। इन शिलाखण्डों की काली धूल में पृथ्वी के एक विशेष समुद्र का सूक्ष्म जल शिखा के रूप में आकर्षित होता है। यह जल शिखा भयंकर रूप से काली प्रतीत होती है। इस जल-शिखा को तमस्काय कहा है। ठाणं आगम में निम्न प्रकार का उल्लेख है।

“अरुणवरद्वीप जम्बूद्वीप से अंसख्यातवां द्वीप है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त में अरुणवर संमुद्र में 42 हजार योजन जाने पर एक प्रदेश (तुल्य अवगाहन) वाली श्रेणी रहती है और वह 1721 योजन ऊँची जाने के पश्चात् विस्तृत होती हैं। यह सौधर्म आदि चारो देवलोकों को घेरकर पांचवें देवलोक के रिष्ट नामक प्रस्तर तक चली गई है। यह जलीय पदार्थ है। उसके पुद्गल अंधकारमय हैं इसलिए इसे तमस्काय कहा जाता है। लोक में इसके समान कोई दूसरा अंधकार नहीं है। देवों का प्रकाश भी इस क्षेत्र में हतप्रभ हो जाता

है। इसमें वायु प्रवेश नहीं पा सकती।" तमस्काय इस ब्रह्माण्ड की असीमांकित परिधि पर चारों ओर वक्र्रीय रूप से अवस्थित है, यह संभव है कि शिलाखण्डों की काली आभा, सूक्ष्म जल के कणों से परावर्तित होती हुई, बिखरती हुई कालेपन को घना कर देती है।

कृष्ण-राजि क्या है?

जैन साहित्य में काले शिलाखण्डों (कृष्ण-राजि) के विशेष आकार तथा नाम ही बताए हैं। आकाश में दो त्रिकोणी, दो षटकोणी तथा चार चतुष्कोणी है। इसके बीच आठ अवकाशान्तर हैं। पहलवानों के कुशती के लिए जिस प्रकार समचतुष्कोण अखांडो का निर्माण किया जाता है इसी प्रकार ये आठ शिलाखण्ड परस्पर में जुड़े हुए हैं। जिससे आठ ऐसी भूल-भूलैया वाली पंक्तिओं को बनाते हैं जिसमें फंस जाने पर निकलना कठिन होता है।

जैनों ने तारों को ऊर्ध्व लोक के प्राणिओं (देवताओं) का वाहन माना है जिसमें देवता गति करते हैं। जब ये विमान तमस्काय के पास से गुजरते हैं तो तमस्काय के अपार आकर्षण के कारण, तमस्काय में फंस जाते हैं उसमें से बाहर निकलना अत्यन्त कठिन बताया है। इस स्थिति की तुलना कारावास से की गई है कि तमस्काय, एक कारावास का स्थान है। जहाँ उसके भंवर में आने से तारे ध्वस्त हो जाते हैं।

ब्लैक होल क्या है ?

अब से कुछ वर्षों पूर्व ब्रह्माण्ड को तारों, उनके ग्रहों एवं उपग्रहों का समूह रूप माना जाता रहा। मगर वैज्ञानिकों से आश्चर्यजनक खोज कर ये पता लगाया कि ब्रह्माण्ड में अत्यधिक घने एवं विशाल गुरुत्वाकर्षण वाले ऐसे असंख्य पिण्ड भी विद्यमान हैं जिनके आकर्षण में प्रकाश भी समाहित हो जाता है। इन अंधकूपों को **ब्लैक होल** कहा गया है। वैज्ञानिकों के अनुसार जब कोई विशाल तारा अपने जीवन चक्र के अंतिम पड़ाव पर होता है तब उसकी बाहरी वायु निष्क्रिय होकर केन्द्र की तरफ समाहित होती जाती है। विनष्ट होते हुए तारों का आयतन घटता है और इस घटते हुए आयतन के कारण घनत्व बढ़ जाता है और उसी के साथ उसका गुरुत्वाकर्षण भी बढ़ जाता है। अंतिम चरण में यह गुरुत्वाकर्षण इतना सघन हो जाता है कि तारे का समस्त बाहरी पदार्थ एक भयानक विस्फोट और चकाचौंध प्रकाश के साथ ब्लैक होल में परिवर्तित हो जाता है। इस ब्लैक होल को मृत तारों का स्थान कहा जाता है। जहाँ का आकाश वक्र्रीय हो जाता है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने तमस्काय और ब्लैक होल (कृष्ण-विवर) पर भगवती भाष्य में विस्तृत टिप्पणी दी है। विज्ञान के नवीनतम अनुसंधानों को भी अपने अध्ययन का विषय बना कर, तथा जैन दर्शन से तुलना कर उन्होंने विज्ञान और दर्शन दोनों को निकट लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। तमस्काय और कृष्ण-राजि की समानताएं और विषमताएं बताते हुए, इनकी ब्लैक होल (कृष्ण-विवर) से तुलना की है। यह पाठकों के लिए प्रेषित है।

तमस्काय और कृष्णराजि की तुलना

तमस्काय और कृष्णराजि में कुछ समानता भी है और कुछ विषमता भी है।

समानताएं

1. दोनों में वर्ण काला, कृष्ण अवभास वाला, गम्भीर, रोमांच उत्पन्न करने वाला, भयंकर, उत्त्रासक और परम कृष्ण है।
इसका तात्पर्य हुआ कि ये दोनों ऐसे पुद्गल-स्कन्धों से निर्मित हैं, जिसमें से प्रकाश की एक भी किरण बाहर नहीं जा सकती। इस तथ्य की वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि उन पुद्गलों का घनत्व इतना अधिक है कि उसमें से प्रकाश-अणु जैसे सूक्ष्म पुद्गल भी बाहर नहीं आ सकते। इस माने में विज्ञान के 'कृष्ण विवर' के साथ इनकी समानता है।
2. परिमाण की समानता — विष्कम्भ की अपेक्षा से — तमस्काय दो प्रकार का होता है — संख्यात हजार योजन वाला तथा असंख्यात हजार योजन वाला। कृष्णराजि केवल संख्यात हजार योजन वाली होती है।
3. परिधि की अपेक्षा से — दोनों असंख्यात हजार योजन वाले होते हैं।
4. आयाम की अपेक्षा से — कृष्णराजि असंख्य हजार योजन वाली होती है। तमस्काय का आयाम निर्दिष्ट नहीं है।
5. वहाँ गृह आदि का अभाव — तमस्काय और कृष्णराजि दोनों रिक्त स्थान हैं — वहाँ न घर हैं, न दुकानें, न सन्निवेश।

विषमताएं

1. तमस्काय और कृष्णराजि में मुख्य अन्तर यह है कि तमस्काय मुख्य रूप में अप्कायिक (जल) है, जबकि कृष्णराजि मुख्यतः पृथ्वीकायिक (पृथ्वी) है।
2. तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय नहीं है, कृष्णराजि में बादर अप्काय, बादर अग्निकाय एवं बादर वनस्पतिकाय नहीं हैं।
3. तमस्काय और कृष्णराजि दोनों में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र एवं तारा-रूप का पूर्ण अभाव है, किन्तु जहाँ तमस्काय के परिपार्श्व में चन्द्रमा आदि पांचों होते हैं तथा पार्श्ववर्ती चन्द्र, सूर्य की प्रभा तमस्काय में आकर धुधली बन जाती है, वहाँ कृष्णराजि में चन्द्रमा, सूर्य की आभा का सर्वथा अभाव है।
4. दोनों में बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं, समूर्च्छित होते हैं और बरसते हैं तथा वह (संस्वेदन, समूर्च्छन, वर्षण) देव, नाग और असुर भी करते हैं; पर तमस्काय में जहां स्थूल गर्जन और विद्युत और नाग तीनों करते हैं, वहां कृष्णराजि में केवल कोई देव करता है, असुर और नाग नहीं करते।

विज्ञान में कृष्ण विवर (Black Hole)

आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रकाश के अणुओं (जिन्हें 'फोटॉन' कहा जाता है) पर भी गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव होता है। अतः प्रकाश की गति भी इससे प्रभावित होती है। सामान्य स्थिति में ताराओं से प्रकाश निकलता रहता है और चारों ओर फैलता है किन्तु कुछ तारे ऐसे होते हैं जिनमें द्रव्यमान या संहति (Mass) अत्यन्त अधिक मात्रा में तथा सघन रूप में होती है। उनका प्रकाश उनके गुरुत्वाकर्षण के कारण उनसे बाहर निकल कर फैल नहीं सकता। उनकी सतह से जो भी प्रकाश बाहर फैलने की कोशिश करता है, तो उसे भी थोड़ी दूर पहुंचने पर ही तारे के भीतर का गुरुत्वाकर्षण पुनः खींच लेता है। इसकी वजह से वह तारा 'कृष्ण' वर्ण वाला दिखाई देता है। विज्ञान ने ऐसे तारे को 'कृष्ण विवर' (ब्लैक होल) की संज्ञा दी है। जब प्रकाश जैसे अति सूक्ष्म अणुओं को भी कृष्ण छिद्र अपने चंगुल से निकलने नहीं देता, तब यह स्पष्ट है कि यदि कोई भी अन्य भौतिक पदार्थ या आकाशीय पिण्ड उसके निकट आएगा तो वह अपनी ओर उसे खींच लेगा और अपने में आत्मसात कर लेगा।

कृष्ण विवर की उत्पत्ति

वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार जब किसी भी तारे के भीतर ईंधन समाप्त हो जाता है, तब उस तारे का तापमान क्रमशः घटता जाता है और उसके परिमाण का संकुचन के साथ-साथ तारे का घनत्व बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते वह इतना अधिक हो जाता है कि उसकी सतह से किसी भी पदार्थ का मुक्त होना कठिन हो जाता है। अन्ततोगत्वा उसका घनत्व इतना अधिक हो जाता है कि प्रकाश के अणु जैसा सूक्ष्म पदार्थ भी फिर उससे बाहर भाग नहीं सकता जो भी पदार्थ उसके गुरुत्व-क्षेत्र की सीमा में आ जाता है, उसे भी वह अपनी ओर लेता है।

कृष्ण विवर सही अर्थ में पूर्णरूपेण कृष्ण होने से किसी भी साधन के द्वारा दिखाई नहीं दे सकता। फिर भी उसके गुरुत्वाकर्षण बल का अनुभव किया जा सकता है। आकाश में विद्यमान तारे आदि प्रकाशित पिण्डों से घिरा हुआ यह पिण्ड एक प्रकार का गड्ढा (विवर) है, जिसमें गिरने वाला पदार्थ वापिस बाहर नहीं निकल सकता। इस रूप में 'कृष्ण विवर' की संज्ञा बिल्कुल सार्थक है।

वैज्ञानिक धारणा के अनुसार ऐसे कृष्ण विवरों की संख्या अनेक हैं। संभवतः इनमें से एक कृष्ण विवर का अस्तित्व हमारी आकाश-गंगा (गैलेक्सी) के भीतर है, जिसे 'सिग्नसएक्स-1' की संज्ञा दी गई है। जैन आगमों में तमस्काय के सम्बन्ध में एक से अधिक होने का विवरण नहीं है। यद्यपि यह स्वयं विस्तार लिए हुए है।

कृष्ण विवर के साथ तुलना

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि लोक में नए कृष्ण विवर की उत्पत्ति होती रहती हैं, पर तमस्काय, कृष्णराजि के वर्णन से लगता है कि ये एक रूप में शाश्वत पदार्थ हैं; इनकी नई उत्पत्ति नहीं होती। तात्पर्य यह हुआ कि यद्यपि कृष्णराजि और कृष्ण विवर में समानताएं हैं, फिर भी दोनों एक नहीं हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि जहां तमस्काय और कृष्णराजि — ये दोनों ही रोमांच उत्पन्न करने वाली, भयंकर, उत्त्रासक और दुःख करने वाली हैं जिससे कि देव आदि आकाशगामी जीव उनसे दूर रहने की कोशिश करते हैं, वहां कृष्ण विवर के विषय में वैज्ञानिकों की भी यही धारणा है कि कोई भी आकाशीय पिण्ड या प्रकाश-पिण्ड उसके पास से गुजर

नहीं सकता। यदि गुजरता है, तो उस गड्ढे में गिर जाता है, उसमें विलीन हो जाता है।

कृष्णराजि का आकार त्रिकोण, चतुष्कोण अथवा षट्कोण है, वहां तमस्काय का आकार प्रारम्भ में एक प्रदेश-श्रेणी-रूप रेखात्मक है और ऊपर उठ कर वह मुर्गे के पिंजरे की भांति आकार वाला अर्थात् चतुरस्रात्मक हो जाता है। वृत्ति के अनुसार प्रदत्त स्थापना से यह अनुमान लगाया जा सकता है।

वैज्ञानिक मान्यता

वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार स्थिर होने के पश्चात् कृष्ण विद्वर का आकार पूर्ण वृत्त होता है (देखें — कृष्णराजी व तमस्काय के चित्र)

इस विवरण के अतिरिक्त विज्ञान जगत में यह माना गया है कि यह संभावित है कि जो पदार्थ ब्लैक होल में चला जाता है, वह इस ब्रह्माण्ड में कहीं बाहर निकलता है। ये ब्लैक होल कितने व्यास और लम्बाई के हैं, आकाश में इनका छोर कहां है यह ज्ञात नहीं हैं किन्तु जहां भी पदार्थ ब्लैक होल से बाहर निकलता है वह व्हाइट होल होगा। इस प्रकार जिस छोर से पदार्थ आकर्षित होगा वह उसके लिए ब्लैक होल का काम करेगा। इस प्रकार एक ब्रह्माण्ड से दूसरे ब्रह्माण्ड में पदार्थ का आवगमन संभव है। भौतिक शास्त्री हांकिंग तथा पेनरोज ने साठ के दशक में यह माना था था कि ब्लैक होल किसी दूसरे अंतरिक्ष का द्वार हो सकता है। दो ब्रह्माण्डों को मिलाने वाली गुफा को वार्म होल कहा है। अगर ब्लैक होल घूमने लगे तो यह स्थान एक अंतरिक्ष से दूसरे अंतरिक्ष में जाने के लिए मार्गस्थल का काम करेगा लेकिन इस यात्रा में लाखों वर्ष लगने की संभावना रहेगी। ब्लैक होल की यह आवश्यक किन्तु अधूरी जानकारी है।

वर्तमान में इजरायली खगोलविदों का मानना है कि प्रत्येक ब्लैक होल में एक अनन्त घनत्व वाला विलक्षण बिन्दु होता है। इस बिन्दु पर पहुंचते ही पदार्थ का सर्वनाश हो जाता है। ब्रू विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्री पिरान ने सिद्ध किया है कि ब्लैक होल से सुरक्षित निकल पाने का कोई रास्ता नहीं है। जो भी वस्तु ब्लैक होल में गुजरने के लिए प्रवेश करेगी वह खुद ही रुकावट का बिन्दु बन जाएगी। अतः ब्लैक होल किसी अन्य ग्रह में जाने का रास्ता नहीं हो सकता। जैन दृष्टि, पिरान के मत के निकट है क्योंकि ऊर्ध्व लोक में तमस्काय का एक छोर लोक की परिधि के समीप है जहां

से आगे अलोक की सीमाएं प्रारंभ हो जाती है वहां पदार्थ का सर्वथा अभाव है। अलोक में पदार्थ शून्य आकाश है। यहां ब्लैक होल और तमस्काय का सम्पूर्ण वैज्ञानिक विवरण अपेक्षित नहीं हैं केवल कुछ बिन्दुओं की मीमांसा की गई है।

कॉस्मोलॉजी में आधुनिकतम होने वाली खोजों पर निरंतर दृष्टि रखते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने उपर्युक्त विषय पर उल्लेख किया है कि 'बरमूदा त्रिकोण' (त्रिनिडाड समुद्र तट) के रहस्यमय क्षेत्र में यात्रा करने वालों ने जो जानकारी दी है वह तमस्काय का आभास देने वाली घटना है। घटना 8 अगस्त 1956 की है जिसका विवरण निम्न प्रकार है। कोष्टगार्ड का एक खोजी और तार बिछाने वाला जहाज 'यामाक्रा' सरगासो समुद्र क्षेत्र की ओर बढ़ रहा था। सरगासो समुद्र क्षेत्र, बरमूदा त्रिकोण के बहमास क्षेत्र के उत्तर में समुद्री घास, जालों से भरा जल क्षेत्र माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि इस जल क्षेत्र के नीचे 'गल्फ स्ट्रीम' तथा अन्य प्रवाही धाराएं सक्रिय हैं। जहाजों, नौकाओं आदि के लिए यह क्षेत्र वर्जित और बेहद जोखिम भरा माना जाता है।

कहा तो यहां तक जाता है कि बरमूदा त्रिकोण में रहस्यमय ढंग से गायब अथवा नष्ट होने वाले जलयानों, नौकाओं आदि की समाधि इसी जल-क्षेत्र में लगी है। तो यामाक्रा खुले समुद्र में आगे बढ़ रहा था कि अचानक राडार संचालक ने पाया कि जहाज के ठीक सामने अट्टाइस तीस मील दूर तक एक बहुत बड़ा मिट्टी का ढेर सा खड़ा है। उसने अपने अफसर को इसकी सूचना दी। अफसर ने उस ढेर और अपने दिशासूचक यंत्रों को देखा तो उसे भी लगा कि कुछ गड़बड़ है। जहाज के कप्तान को भी इस सम्बन्ध में सूचित किया गया, पर उसने जहाज की दिशा नहीं बदली और जहाज आगे बढ़ता गया। कुछ ही घण्टों में जहाज उस मिट्टी के ढेर के बहुत करीब पहुंच गया। पर अब मिट्टी का आभास तो होता था, लेकिन ढेर जैसी ऊँचाई नहीं थी।

रोचक और दिलचस्प बात यह थी कि जहाज के शक्तिशाली राडार और सर्चलाइटें यहां बेअसर साबित हो रहे थे। सच तो यह था कि मिट्टी या जमीन भी नहीं थी लेकिन अब पानी की ऐसी विचित्र सतह थी जो उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पूर्व की ओर ऊंचे उठते हुए जमीन के टुकड़े या मिट्टी के ढेर जैसे मालूम दे रही थी। सूनी, ठण्डी मौत की जीती-जागती अनुभूति थी वह। लेकिन 'यामाक्रा' के कप्तान और चालक दल ने विलक्षण साहस का परिचय

देते हुए जहाज का आगे बढ़ाना जारी रखा। प्रवंचना भरे इस जल-क्षेत्र में प्रवेश करते ही बेहद तेज जलने वाली कार्बन आर्क बत्तियां भी एक बुझती चिंगारी से ज्यादा चमकदार नहीं रह गई थीं। चालक-दल के सदस्यों में खांसी का ऐसा दौर चला कि रोके नहीं रुका। जहाज के इंजन में 'स्टीम प्रेशर' खत्म होने लगा। हारकर कैप्टन को जहाज मोड़ने और लौट चलने का आदेश देना पड़ा। अनुमान से सब काम किया गया लेकिन कई घण्टे जीवन-मृत्यु से जूझते इस जहाज के लोगों को जब सुबह की रोशनी मिली तब उनका आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि दूर-दराज तक उस प्रवंचना का कोई नामों-निशान नहीं था।

इससे ज्ञात होता है कि दो हजार वर्ष पूर्व जैनों को सृष्टि-विज्ञान के संबंध में गहरी अभिरुचि थी। यह कहना न्यायसंगत नहीं होगा कि ब्लैक होल और तमस्काय एक ही है किन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रकाश और अंधेरे को समझने का प्रयास, मानव इतिहास में लगातार हुआ है।

एक वैज्ञानिक ने पूछा — दीपक में प्रकाश कहां से आया ? विद्यार्थी ने फूंक मार कर दीप बुझा दिया और पूछा प्रकाश कहां गया ? यह प्रश्न आज भी जीवित है।

कवि की ये पंक्तिया कितनी सटीक है :-

तुम दीया जलाओ, अंधेरा बाहर निकल जाएगा।

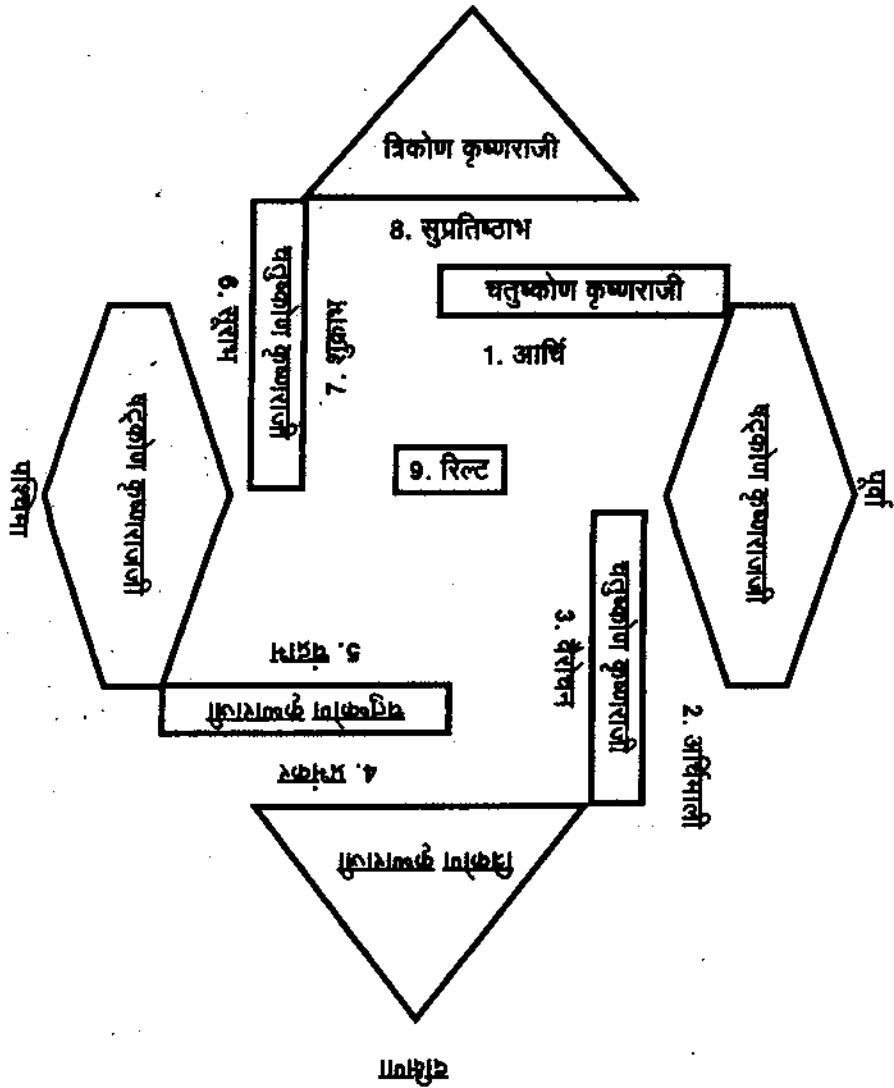
लेकिन अंधेरे को बाहर करने से दीया नहीं जलता।

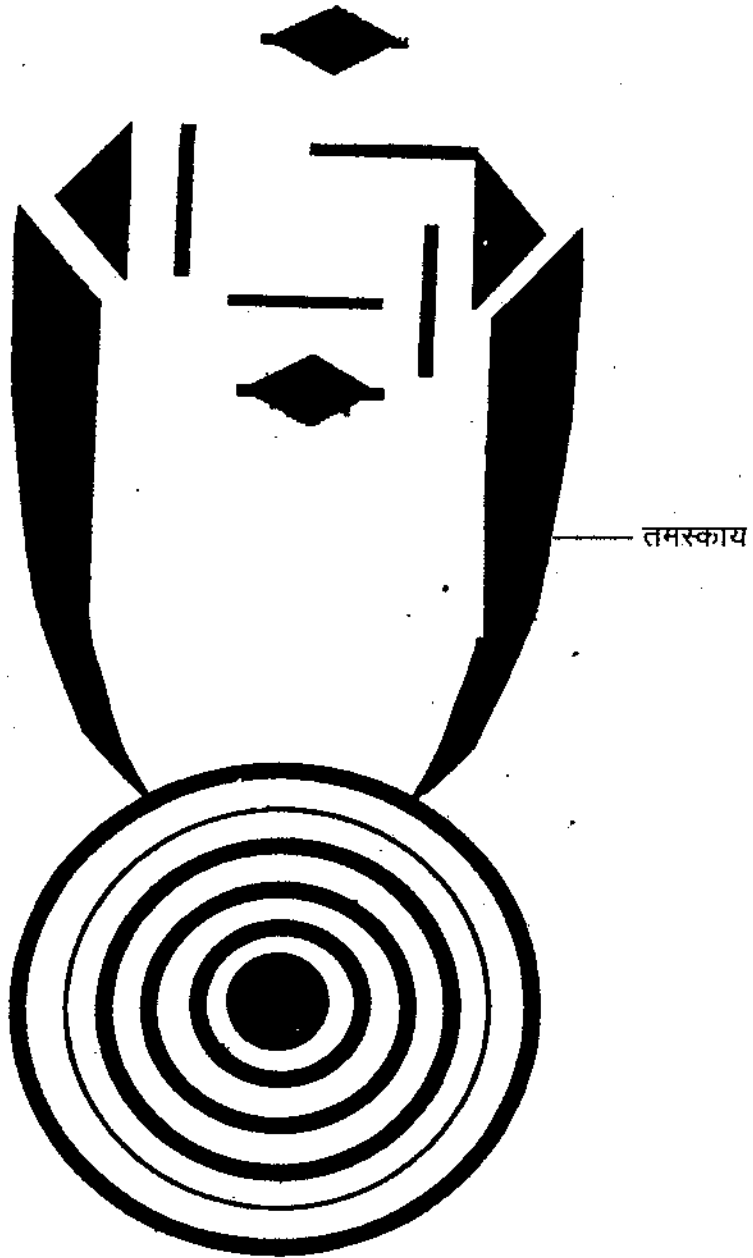
जैनों ने प्रकाश और अंधेरे के कर्णों को स्वतंत्र पदार्थ माना हैं। अंधेरा, प्रकाश का अभाव नहीं हैं। यह स्वतंत्र पुद्गल पदार्थ है।

ईसाई परम्परा में कहा है — जगत की रचना में ईश्वर ने पृथ्वी पहले ही दिन बनाई मगर पानी की सतह और गहराई में अंधेरा व्याप्त था। ईश्वर ने फिर प्रकाश को उत्पन्न किया जिससे दिन और रात प्रारम्भ हुए। अंधेरे और प्रकाश की कहानी अनादि काल से चली आ रही है।



कृष्ण-राजिएं





नींद का प्रकरण

जैन आगम साहित्य में साधु दो प्रकार के बताए हैं।

(1) छद्मस्थ

(2) केवली

जिस साधु को केवल-ज्ञान प्राप्त हो जाता है अर्थात् ज्ञान और दर्शन के कर्म-आवरण पूर्णतया हट जाते हैं, वे केवल-ज्ञानी कहलाते हैं। शेष साधु छद्मस्थ कहलाते हैं। कर्म-शास्त्रीय मीमांसा में नींद को, दर्शनावरणीय कर्म के उदय का कारण माना है। केवलज्ञानी के दर्शनावरणीय कर्म क्षय हो जाते हैं। अतः यह माना जाता रहा है कि केवलज्ञानी को नींद नहीं आनी चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में वैज्ञानिक धारणा को प्रस्तुत किया है जो निम्न प्रकार से है।

सैद्धान्तिक मत

नींद के आधार पर छद्मस्थ और केवली के बीच भेदरेखा खींची गई है। कर्मशास्त्रीय विवेचना के अनुसार नींद का कारण दर्शनावरणीय कर्म का उदय है। चरक के अनुसार जब मन क्लान्त (निष्क्रिय) और इन्द्रियां क्रिया रहित होकर अपने-अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं उस समय मनुष्य सोता है। दर्शनावरणीय कर्म का काम है चक्षु आदि इन्द्रिय-दर्शनों को आवृत्त करना। उनके आवृत्त होने पर नींद की स्थिति बनती है। निद्रा-विषयक कर्मशास्त्रीय सिद्धान्त और चरक के सिद्धान्त में सामंजस्य देखा जा सकता है।

वैज्ञानिक मत

पूरे निद्रा-समय को निद्रा-चक्रों में विभक्त किया जा सकता है। एक व्यक्ति का निद्रा-चक्र लगभग 90 मिनट में पूरा होता है। (8 घंटे सोने पर ऐसे 5 चक्र होंगे) एक निद्रा-चक्र दो भागों में पूरा होता है। इसका 70-80 प्रतिशत प्रथम भाग यानी लगभग 70 मिनट 'नोन रैपिड आई मूवमेंट' में तथा लगभग 20-25 प्रतिशत रहा शेष समय यानी लगभग 20 मिनट रैपिड आई मूवमेंट' नींद में व्यतीत होता है। 'नोन रैपिड आई मूवमेंट' (एनआरईएम) नींद विश्राम की अवस्था होती है जिसे चार अवस्थाओं में विभक्त किया जा सकता है।

- (1) झपकी आने वाली अवस्था
- (2) असंदिग्ध स्पष्ट नींद
- (3) व (4) गहरी नींद की अवस्था होती है।

‘रैपिड आई मूवमेंट’ (आरईएम) नींद को असत्यभासी या विरोधाभासी नींद भी कहते हैं क्योंकि इसमें मस्तिष्क की अति सक्रियता व अति चपलता के बावजूद भी व्यक्ति नींद की अवस्था में रहता है। इसमें आंखें तेजी से गति करती हैं। सामान्यतः इसी अवस्था में सपने देखे जाते हैं। आंखों की गति का कारण भी व्यक्ति द्वारा सपने में देखी चीज का अनुसरण करना होता है लेकिन मांसपेशियों की अति शिथिलता के कारण व्यक्ति स्वयं गति नहीं कर पाता है। यह गहरी नींद वाली अवस्था है। इस नींद का स्मरण शक्ति की चकबंदी (कोन्सोलिडेशन) करने में महत्त्व माना जाता है। एनआरईएम अवस्था में देखे गए सपने सामान्यतः याद नहीं रहते हैं, बल्कि आरईएम नींद में देखे गए सपने सामान्यतः याद रहते हैं।

निद्रा उत्पत्ति की क्रियाविधि के बारे में कई मान्यताएं हैं। मस्तिष्क के जालीनुमा उन्नति तंत्र (सेटिकुलर एक्टिविटी सिस्टम) की चपलता की कार्य-क्रिया के कारण व्यक्ति जागरण अवस्था में रहता है। जब इस तंत्र की चपलता में कोई बाधा होती है तो नींद की अवस्था आ जाती है। साथ ही मस्तिष्क के कुछ हिस्सों के तंत्रिकांतु जो कि ‘सिरोटोनीन’ नामक पदार्थ बनाते हैं, उनके उत्तेजित होने पर नींद आती है। आरईएम नींद का कारण मस्तिष्क के पोंस भाग में स्थित ‘लोकस सेरुलियस’ तथा इनके ‘नारएड्रिनर्जिक’ तंत्रिकांतुओं के उत्तेजित होने को माना जाता है।

मस्तिष्क की क्रिया-विधि के बारे में विज्ञान जगत में निरन्तर शोध हो रही है अतः ‘नींद के प्रकरण’ के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि से अन्तिम निर्णय पर पहुंचना संभव नहीं है।

लेखक का यह मत है कि केवली के वीर्य योग (कायिक प्रवृत्ति) तथा द्रव्य काय वर्गणा-प्रयोग सहित होता है। इसलिए योग-चंचलता रहती है। इसी प्रकार केवली के यद्यपि ज्ञानेन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं है लेकिन द्रव्येन्द्रिणी होती है जिस अपेक्षा से केवली को पञ्चेन्द्रिय कहा जाता है। अतः केवली के जब द्रव्येन्द्रिणी है तथा योग-चंचलता है तो फिर द्रव्य नींद के आने में कहीं कठिनाई नहीं है क्योंकि नींद काय-योग की न्यूनतम प्रवृत्ति है। यह सही है कि भाव निन्द्रा का अभाव रहेगा क्योंकि ज्ञानेन्द्रियों का अभाव है।

आलू क्या अनन्त जीवी है?

जैन समाज में यह प्रचलित धारणा है कि आलू अनन्त जीवी हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस सम्बन्ध में जो विवेचन किया है वह साधारण पाठकों के लिए अत्यन्त रुचिकर रहेगा अतः यहां प्रस्तुत किया गया है।

बादर (स्थूल) वनस्पति के दो प्रकार हैं -

1. प्रत्येक शरीरवाली
2. साधारण शरीरवाली।

जिसके एक शरीर में एक जीव होता है वह वनस्पति 'प्रत्येक शरीर वाली' कहलाती है। जिसके एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं वह वनस्पति 'साधारण शरीर वाली' कहलाती है। अनन्त जीव वाली वनस्पति का वर्णन भगवई, पण्णवणा, जीवात्तीवाभिगमे और उत्तरज्झयणाणि - इन चार आगमों में मिलता है।

पण्णवणा सूत्र में आया आलुए (आलुकम्) शब्द विमर्शनीय है। इसका वास्तविक अर्थ 'आलुक' या 'आलु' है, लेकिन यह आलुक, आलू (Potato) नहीं है। क्योंकि -

1. आलू (Potato) नामक पौधा भारतीय नहीं है; इसे भारत में पुर्तगाली लोग लाए थे। मूलतः इसे दक्षिणी अमरीका से यूरोप ले गए थे। इसकी मूल उत्पत्ति चिली (द. अमरीका) है। इस स्थिति से इसका संबंध प्रस्तुत सूत्र के 'आलुए' के साथ नहीं जोड़ा जा सकता।
2. आप्टेकृत संस्कृत - अंग्रेजी कोष के अनुसार 'आलु - an esculent root (not applied to potato etc.)' अर्थात् एक ऐसा खाद्य मूल (जो आलू (Potato) का द्योतक नहीं है)।
3. निघण्टुआदर्श, पृ.164, 165 में लिखा है -

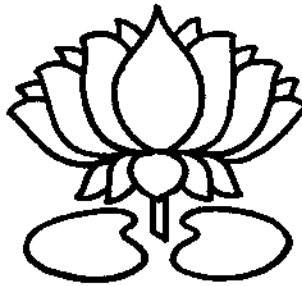
377 आलू (बटाटा)

नाम - आलू (हिंदी); बटाटा (गु.); Potato पोटेटो (अं.); Solanum Tuberosum सोलेनम् ट्यूबरोजम् (ले.)।

“परिचय – वर्णन और गुण – आलू की जन्मभूमि तो दक्षिण अमेरिका है। तो भी संस्कृत में आए हुए ‘आलूनी’ यह शब्द आलू अर्थात् बटाटा के लिए आया है, ऐसा मानकर कुछ लोग इस शाक को भारत की उपज बताने का जोरदार शब्दों में प्रतिपादन करते हैं। हमारा मत है कि शास्त्र में अनेक प्रकार के ‘आलू’ का वर्णन उपलब्ध है और वे सब डायोस्कोरिया – *Dioscoria* – वर्ग के अर्थात् रेतालवर्ग के कन्दशाक है। निघण्टुकारों ने अनेक प्रकार के आलूओं का उल्लेख किया है।”

“आलू जमीन के अंदर होते हैं, तो भी वस्तुतः इसको कन्द कहना ठीक नहीं है। मूंगफली जमीन के अंदर होती है, तो भी हम उसे कंद की गणना में नहीं मानते। इसी प्रकार आलू भी जमीन में होने पर भी कंद नहीं है। इसके पौधे में से डंडी बनती है, इस डंडी में से शाखाएं निकलती हैं और वे शाखाएं जमीन में घुस जाती हैं और फिर कंद के समान फूलती हैं। अर्थात् आलू तो *Stem tuber* स्टेमट्यूबर है, *Root tuber* रूट ट्यूबर नहीं है। कुछ जैन लोग आलू को कंद मानकर उसका उपयोग नहीं करते, अतः इसका स्पष्टीकरण उचित प्रतीत हुआ है। खाना न खाना यह उनकी इच्छा का सवाल है। परंतु आलू कन्दमूल नहीं है।”

आचार्य महाप्रज्ञ ने परम्परा से चली आई आलू के संबंध में धारणा का निराकरण किया है। यह तभी संभव हुआ है जब वनस्पति विज्ञान की आधुनिक खोजों का सहारा लिया है। विज्ञान के सही निष्कर्षों को अपनाने का साहस, आचार्य महाप्रज्ञ में है तभी तो वे युग प्रधान धर्माचार्यों की बेजोड़ परम्परा में आचार्य हैं।



मानसिक संप्रेषण का सिद्धान्त

जैन आगम भगवती में मानसिक संप्रेषण का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है। आचार्य महाप्रज्ञ ने मानसिक प्रश्न और मानसिक उत्तर को अतीन्द्रिय ज्ञान की विशेष प्रक्रिया बताया है। वे कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति मानसिक स्तर पर प्रश्न पूछ सकता है और कोई भी व्यक्ति मानसिक स्तर पर उत्तर दे सकता है। इसमें कोई विशिष्ट बात नहीं। मन के स्तर पर पूछे गए प्रश्न को जान लेना और मन के स्तर पर दिए गए उत्तर को समझ लेना, वह विशिष्ट बात है। जो व्यक्ति सूक्ष्म जगत से सम्पर्क स्थापित करने की साधना कर लेता है वह अतीत के किसी महापुरुष से सम्पर्क स्थापित कर सकता है — वे महापुरुष चाहे महावीर हो, कुन्दकुन्द हो या अन्य कोई हो। आचार्य महाप्रज्ञ अपने स्वयं पर किए प्रयोगों के आधार से लिखते हैं कि — 'मैं ध्यान-कोष्ठ में प्रवेश पा रहा था। स्थूल जगत से मेरा संबंध विच्छेद हो चुका था। मेरा ध्येय था महावीर की साधना का साक्षात्कार। सूक्ष्म जगत से सम्पर्क साधकर मैं आचार्य कुन्दकुन्द की सन्निधि में पहुंचा। मैंने अपनी जिज्ञासा रखी और मुझे उत्तर मिले। इसके बाद मैं अन्तःकरण में लौट आया। ये जागृत चेतना के परिणाम हैं।'

अनुत्तर विमान जो ऊर्ध्व लोक में है उन देवों के मन में कोई प्रश्न उपस्थित होता है तो वहां बैठे-बैठे मनुष्य-लोक में विद्यमान केवली के साथ मानसिक आलाप-संलाप करते हैं। केवली उनके प्रश्न को जानकर मानसिक स्तर पर उसका उत्तर देते हैं। वे प्रश्नकर्ता देव, केवली की मनोद्रव्य-वर्गणा के आधार पर उसे जान लेते हैं। केवली के ज्ञानात्मक भावमन नहीं होता किंतु योगरूप मानसिक प्रवृत्ति होती है। केवली कुछ कहना चाहते हैं तब उनके आत्म-प्रदेशों का स्पन्दन होता है। उससे मनोद्रव्य-वर्गणा (मानसिक पुद्गल-स्कन्धों) का ग्रहण होता है। उन पुद्गलों को अनुत्तर विमान के देव ग्रहण कर जान लेते हैं। वृत्तिकार के अनुसार उनके अवधिज्ञान का विषय-क्षेत्र लोक-नाड़ी है। जिसका विषय क्षेत्र लोक का संख्येय भाग होता है, वह भी मनोद्रव्य-वर्गणा को जान लेता है तो जिसका विषय क्षेत्र लोक-नाड़ी है, वह मनोद्रव्य-वर्गणा को कैसे नहीं जानेगा?

जयाचार्य ने 21वें तीर्थंकर नमि की स्तुति में उक्त विषय को काव्य की भाषा में लिखा है --

सुर अनुत्तर विमाण ना सेवै रे, प्रश्न पूछ्या उत्तर जिन देवै रे।
अवधिज्ञान करी जाण लेवै, प्रभु नमिनाथ जी मुझ प्यारा रे॥

भगवान केवलीज्ञानी थे, इसलिए मन के स्तर पर पूछे गए, प्रश्न को जानना उनके लिए कठिन नहीं था। देवों के पास अवधिज्ञान था, इसलिए मन के स्तर पर दिए गए उत्तरों को समझ लेना उनके लिए संभव बना।

भगवान केवली थे। केवली के ज्ञानात्मक मन (भावमन) नहीं होता। उनके पौद्गलिक मन (द्रव्यमन) होता है। वे पौद्गलिक मन का उपयोग करते हैं। जैन दर्शन में योग और उपयोग को अलग-अलग माना गया है। योग मन, वचन, काया की क्रियात्मक प्रवृत्ति है, जबकि उपयोग चेतना की ज्ञानात्मक प्रवृत्ति है। आधुनिक वैज्ञानिक अवधारणाओं के संदर्भ में इस भेद को और अधिक स्पष्ट समझा जा सकता है।

शरीर विज्ञान में तन्त्रिका-तंत्र (nervous system) के दो प्रकार बताए गए हैं :

1. ज्ञानवाही तन्त्रिका (sensory nerve)
2. क्रियावाही तन्त्रिका (motor nerve)

ज्ञानवाही तन्त्रिकाओं का अर्थ इन्द्रियों के माध्यम से ज्ञानात्मक क्रिया के रूप में होता है। मस्तिष्क के ज्ञानतंतु भी इसी ज्ञानात्मक क्रिया को सम्पादित करते हैं। क्रियावाही तन्त्रिकाएं मांसपेशियों के संचालन के माध्यम से शरीर की विभिन्न क्रियात्मक प्रवृत्तियों का संचालन करती हैं। वाणी का तंत्र भी स्वर-यंत्र के स्पन्दनों से संचालित होता है, जिसमें क्रियावाही तन्त्रिकाएं यह कार्य करवाती हैं।

केवली जैसे इन्द्रियों के द्वारा ज्ञानात्मक क्रिया नहीं करते, उसी प्रकार मन के द्वारा भी ज्ञानात्मक क्रिया नहीं करते। अतः उसमें ज्ञानात्मक मन के रूप में भाव मन का अभाव है। पर क्रियावाही तंत्र का प्रयोग केवली द्वारा किया जाता है -- शरीर एवं वाणी का योग इसी की निष्पत्ति है। उसी प्रकार क्रियात्मक मन की प्रवृत्तियां भी केवली कर सकते हैं, क्योंकि उनमें मनोयोग की प्राप्ति है। इस मनोयोग के निष्पादन में पौद्गलिक मन का प्रयोग भी होता है। किंतु यह ज्ञानात्मक भाव मन से भिन्न है।

चौदह पूर्वों का परावर्तन

आचार्य महाप्रज्ञ ने चौदह पूर्वों के विवेचन में लिखा है कि जैन साहित्य आगम और आगमेतर — इन दो भागों में बंटा हुआ है। आगम प्राचीनतम साहित्य है।

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान ने अपने आपको देखा और समूचे लोक को देखा। भगवान ने तीर्थ चतुष्टय (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) की स्थापना की। इसलिए वे तीर्थकर कहलाए। भगवान ने बन्ध, बन्ध हेतु, मोक्ष और मोक्ष हेतु का स्वरूप बताया।

भगवान की वाणी आगम बन गई। उनके प्रधान शिष्य गौतम आदि ग्यारह गणधरों ने उसे सूत्र-रूप में गूँथा। आगम के दो विभाग हो गए — सूत्रागम और अर्थागम। भगवान के प्रकीर्ण उपदेश को अर्थागम और उनके आधार पर की गई सूत्र-रचना को सूत्रागम कहा गया। वे आचार्यों के लिए निधि बन गए। इसलिए उनका नाम गणि-पिटक हुआ। उस गुम्फन के मौलिक भाग बारह हुए। इसलिए उनका दूसरा नाम हुआ द्वादशांगी। बारह अंग ये हैं — (1) आचार, (2) सूत्रकृत, (3) स्थान, (4) समवाय, (5) भगवती (6) ज्ञाता-धर्मकथा, (7) उपासक-दशा, (8) अन्तकृतदशा, (9) अनुत्तरोपपातिक-दशा, (10) प्रश्न-व्याकरण, (11) विपाक, (12) दृष्टिवाद।

स्थविरों ने इसका पल्लवन किया। आगम सूत्रों की संख्या हजारों तक पहुंच गई।

भगवान के चौदह हजार शिष्य प्रकरणकार (ग्रन्थकार) थे। उस समय लिखने की परम्परा नहीं थी। सारा वांगमय स्मृति पर आधारित था।

दृष्टिवाद के पांच विभाग हैं :-

1. परिकर्म
2. सूत्र
3. पूर्वानुयोग
4. पूर्वगत
5. चूलिका।

पूर्वगत के चौदह विभाग हैं। वे पूर्व कहलाते हैं। उनका परिमाण बहुत ही विशाल है। वे श्रुत या शब्द-ज्ञान के समस्त विषयों के अक्षय-कोष होते हैं। इनकी रचना के बारे में दो विचारधाराएं हैं — पहली के अनुसार भगवान् महावीर के पूर्व से ही ज्ञान राशि का यह भाग चला आ रहा था। इसलिए उत्तरवर्ती साहित्य रचना के समय इसे 'पूर्व' कहा गया।

दूसरी विचारणा के अनुसार द्वादशांगी से पूर्व ये रचे गए, इसलिए इन्हें 'पूर्व' कहा गया।

पूर्वों में सारा श्रुत समा जाता है। किंतु साधारण बुद्धि वाले उसे पढ़ नहीं सकते। उनके लिए द्वादशांगी की रचना की गई। आगम-साहित्य में अध्ययन परम्परा के तीन क्रम मिलते हैं। कुछ श्रमण चतुर्दशपूर्वी होते हैं, कुछ द्वादशांगी के विद्वान और कुछ सामायिक आदि ग्यारह अंगों के अध्येता। चतुर्दशपूर्वी श्रमणों का अधिक महत्त्व रहा है। उन्हें श्रुत-केवली कहा गया है।

आज पूर्वों का ज्ञान विस्मृत हो चुका है। वे श्रमण जिन्हें चौदह पूर्वों का ज्ञान था वे एक अंतर्मुहूर्त (अधिकतम 48 मिनट) में समस्त ज्ञान का परावर्तन कर लेते थे। ये उनके स्वाध्याय का भाग था। इस विशिष्ट शक्ति पर सामान्यतः भरोसा या विश्वास नहीं किया जा सकता कि इतने थोड़े समय में अगाध ज्ञान राशि का किस प्रकार परावर्तन करते होंगे ? किंतु वर्तमान विज्ञान जगत में काल की सूक्ष्म मर्यादा के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

महाप्रज्ञ जी के अनुसार वर्क शायर (इंग्लैण्ड) के एल्डरमेस्टन अस्त्र अनुसंधान केन्द्र में एक ऐसा कैमरा बनाया गया है जो एक सैकण्ड में पांच करोड़ चित्र खींच लेता है। कम्प्यूटर के अविष्कार ने भी उपर्युक्त तथ्य को बोधगम्य बना दिया है क्योंकि कम्प्यूटर द्वारा एक सैकण्ड में एक लाख छियासी हजार गणित के भागों का (विकल्पों) समाधान संभव हो सकता है।

अतः मनोबल लब्धि वाला व्यक्ति एक अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्वों का परावर्तन कर सकता है।

चतुर्दशपूर्व ऋद्धि के द्वारा सम्पूर्ण श्रुत का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। शब्दात्मक ज्ञान के जितने विकल्प होते हैं वे सब उसे ज्ञात हो जाते हैं। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि दशपूर्व ऋद्धि उस मुनि को प्राप्त होती है जो महारोहिणी आदि विद्या-देवताओं को देखने पर भी विचलित नहीं होता।

अनाहारक अवस्था

आचार्य महाप्रज्ञ ने भगवती भाष्य में अनाहारक अवस्था का वर्णन निम्न प्रकार से किया है —

आहार के चार प्रकार हैं — ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार और मनोभक्ष्य आहार। आहार का ग्रहण करने वाला आहारक और उसको ग्रहण न करने वाला अनाहारक कहलाता है। ओज आहार का ग्रहण जन्म के प्रारम्भ में अन्तर्मुहूर्त तक किया जाता है। उसके पश्चात् लोम आहार का ग्रहण जीवन के अंतिम क्षण तक किया जाता है। प्रक्षेप आहार का ग्रहण भोजन-काल में किया जाता है। प्रत्येक शरीरधारी प्राणी संयोग-अवस्था में निरन्तर आहार लेता है। आहार का ग्रहण भोजन-काल में किया जाता है। उसके बिना जीवन-क्रिया का संचालन नहीं होता। मनोभक्ष्य आहार मानसिक संकल्प के द्वारा सम्पन्न होता है। मनोवर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण करना भी आहार है।

अनाहार होना आपवादिक अथवा विशेष स्थिति है। इसके दो प्रसंग हैं — अन्तरालगति और केवली समुद्घात।

(i) अन्तरालगति

जीव मृत्यु के पश्चात् भावी जन्मस्थल तक जाता है। दोनों के मध्यवर्ती गति का नाम अन्तरालगति है। प्रस्तुत सूत्र में आहारक और अनाहारक का प्रज्ञापन अन्तरालगति के संदर्भ में किया गया है। अन्तरालगति दो प्रकार की होती है — ऋजु और वक्र। जो जीव ऋजु — आयत श्रेणी में उत्पन्न होता है, वह एक समय में उत्पत्ति-स्थान में चला जाता है (चित्र 1, 2)। उत्पत्ति-स्थान एकतः वक्रश्रेणी में होता है, तो अन्तराल गति में दो समय लगते हैं (चित्र 3)। उत्पत्ति-स्थान उभयतः वक्र श्रेणी में होता है तो अन्तरालगति में तीन समय लगते हैं (चित्र 4)। अन्तरालगति चार समय की भी होती है (चित्र 5)।

1. जीव ऋजु गति से उत्पत्ति-स्थान तक जाता है तब वह परभवः आयुष्य के प्रथम समय में आहारक होता है। विग्रहगति से उत्पत्ति के स्थान तक जाने वाला जीव प्रथम समय में अनाहारक होता है। उक्त दोनों संदर्भों के आधार पर यह सिद्धांत फलित होता है — प्रथम समय में स्यात् आहारक, स्यात् अनाहारक।

2. कोई जीव दो समय और एक वक्र वाली विग्रह-गति से उत्पत्ति स्थान में जाता है, तब वह प्रथम समय में अनाहारक और द्वितीय समय में आहारक होता है।

3. दो वक्र और तीन समय वाली विग्रह गति से उत्पन्न होने वाला जीव प्रथम और द्वितीय समय में अनाहारक होता है तथा तृतीय समय में आहारक होता है।

उक्त दोनों संदर्भों के आधार पर यह सिद्धान्त फलित होता है—
द्वितीय समय में स्यात् आहारक, स्यात् अनाहारक।

4. कोई जीव तीन समय और दो वक्र वाली गति से उत्पत्ति-स्थान तक जाता है तब वह प्रथम और द्वितीय समय में अनाहारक होता है तथा तृतीय समय में आहारक होता है।

तीन वक्र और चार समय वाली विग्रह गति से उत्पत्ति-स्थान तक जाने वाला जीव प्रथम समय में आहारक, द्वितीय और तृतीय समय में अनाहारक होता है।

उक्त दोनों संदर्भों के आधार पर यह सिद्धान्त फलित होता है — तृतीय समय में स्यात् आहारक, स्यात् अनाहारक।

अभयदेवसूरि ने वक्रगति के प्रथम, द्वितीय और तृतीय — तीनों समयों में जीव को अनाहारक बतलाया है। मतान्तर के अनुसार पांच समय वाली अन्तरालगति में अनाहारक रहने के चार समयों का उल्लेख है।

अनाहारक विषयक तत्त्वार्थाधिगम का सूत्र श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में भिन्न है — एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः

अकलंक ने विग्रहगति के प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीनों समय को अनाहारक बतलाया है।

श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार सूत्रपाठ इस प्रकार है —

एकं द्वौ वाऽनाहारकः

सिद्धसेनगणी ने इस सूत्र की व्याख्या में लिखा है — दो वक्र वाली तीन समय की गति में मध्यवर्ती समय अनाहारक है तथा तीन विग्रह और चार समय वाली गति में मध्यवर्ती दो समय अनाहारक होते हैं।

जयाचार्य ने अभयदेवसूरि के मत की समीक्षा की है तथा अनाहारक के दो समय के सिद्धान्त का समर्थन किया है।

पण्णवणा और जीवाभिगम में अनाहारक के दो समय का उल्लेख है।

इन दोनों सूत्रों के टीकाकार मलयगिरि हैं। उनके अनुसार यह सूत्र सापेक्ष है। बहुलतया दो समय या तीन समय की विग्रहगति होती है। इस अपेक्षा से अनाहारक अवस्था के दो समयों का उल्लेख किया गया है।

पण्णवणा और जीवाजीवाभिगम में अनाहारक के दो समय का उल्लेख है। इस आधार पर सिद्धसेनगणी और जयाचार्य ने चार समय की विग्रह गति में प्रथम समय को आहारक बतलाया। किंतु अभयदेवसूरि ने जो तर्क प्रस्तुत किया है, उसका समाधान सरल नहीं है। उनका तर्क है कि उत्पत्ति स्थान तक पहुंचे बिना अन्तरालगति में आहार-योग्य पुद्गलों का अभाव है, इसलिए विग्रह गति का पहला समय अनाहारक होगा। दो और तीन समय वाली गति में यदि प्रथम समय अनाहारक हो तो चार समय की गति में प्रथम समय आहारक कैसे होगा ? सिद्धसेनगणी ने विग्रहगति के सभी प्रकारों में प्रथम समय को आहारक माना है। यह एकरूपता की दृष्टि से तर्क-संगत है। किंतु प्रस्तुत सूत्र से इसकी संगति नहीं है। प्रस्तुत सूत्र के अनुसार प्रथम समय अनाहारक भी होता है। अभयदेवसूरि ने उत्पत्ति स्थान के पूर्ववर्ती सभी समयों को अनाहारक माना है। यह तार्किक दृष्टि से संगत है। दो समय और तीन समयों की अन्तरालगति में प्रथम समय को अनाहारक माना जाए तथा चार समय की अन्तरालगति में प्रथम समय को आहारक माना जाए—यह क्यों ? इसके पीछे कोई तर्क नहीं है। केवल आगम का यह वचन है कि अन्तरालगति में जीव दो समय से अधिक अनाहारक नहीं रहता। मलयगिरि ने इस समस्या को सापेक्षता से सुलझाया है, इसलिए इस सापेक्ष दृष्टिकोण को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

उपर्युक्त वर्णन, परमाणु की अस्पृशद गति के अध्याय में भी हुआ है लेकिन वहां आहार की चर्चा नहीं हुई है। यहां एक सहज जिज्ञासा होती है कि अन्तराल गति में जब चार समय लगते हैं तो कहीं यह लोकाकाश भी चार आयामी तो नहीं है ?

आकाश के चार आयाम

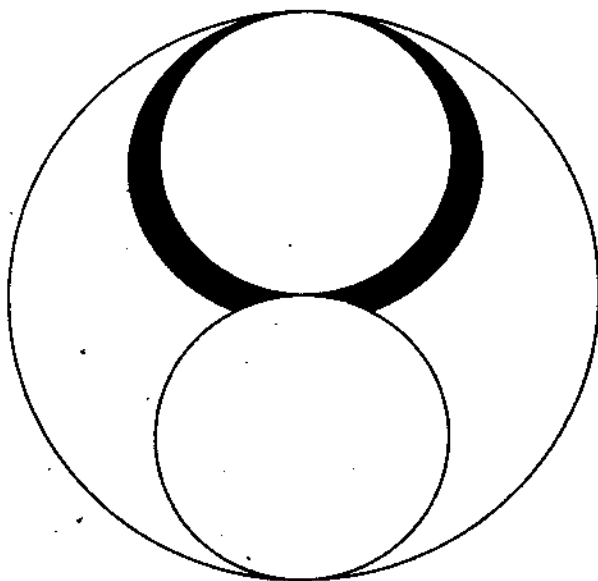
भौतिक शास्त्र में आकाश के तीन आयामों को किसी घन (Cube) के चित्र से दर्शाया जाता है। रूसी दार्शनिक वान मानेन ने इस प्रयास को अधूरा बताते हुए सुझाव दिया है कि चेतना के चौथे आयाम के अभाव में किसी घटना को पूर्णरूप से नहीं समझा जा सकता है। आइंस्टीन ने काल

को चतुर्थ आयाम माना, उसकी तुलना में चेतना का चतुर्थ आयाम प्रस्तुत किया गया। इस दृष्टि से उन्होंने पहले तो घन को ही चार आयामों में प्रदर्शित करने का प्रयास किया किंतु उसे सफलता नहीं मिली। उन्होंने एक ग्लोब (Globe) अर्थात् पृथ्वी की भांति गोल आकार का त्रिआयामी चित्र बनाया फिर कल्पना के आधार से ग्लोब की परिधि पर किसी शीर्षवत् बिंदु से चौथे आयाम को उभारा। उन्हें प्रतीत हुआ कि यह आयाम जानवर के सींगों (Horns) की तरह ऊपर उठ रहा है जो आगे जाकर सींगों के किनारे मिलने से वृत्त-रूप बन गया है। उन्होंने सोचा कि ऐसा क्रम जब ग्लोब की परिधि पर सभी शीर्षवत् बिंदुओं से उठेगा तो एक पूरे बड़े वृत्त का रूप धारण करेगा। इस मॉडल को अच्छी तरह समझाते हुए उन्होंने चित्र को प्रेषित किया। यह चित्र ऐसा प्रतीत होता है मानो संख्या आठ (8) को चारों ओर घेर कर एक नए वृत्त से बना हो। इस प्रकार चित्र में तीन वृत्त दिखाई देते हैं। नीचे वाला वास्तविक ग्लोब दर्शाता है जो तीन आयामों का प्रतिनिधित्व करता है, संख्या आठ (8) के चित्र में उपर वाला वृत्त खाली जगह को दर्शाता है जो वास्तविक नहीं है और बड़ा वाला वृत्त जिसने संख्या आठ (8) के चित्र को पूर्णरूप से घेर रखा है वह चौथे आयाम को प्रदर्शित करता है।

यह प्रयास सर्वथा नया है, जो लोक - ब्रह्माण्ड के चौथे आयाम की ओर संकेत करता है। जैन दृष्टि से भी कुछ उदाहरण ऐसे हैं जो चौथे आयाम की ओर संकेत करते हैं, उनमें से एक अनाहारक अवस्था का है जिसमें जीव को गति करने में चार समय लगते हैं।

(ii) केवली समुदघात

केवली समुदघात को समझने के लिए भी चार आयामों की आवश्यकता है क्योंकि वहां भी चार समय में जीव, लोक में व्याप्त होता है और अगले चार समय में पुनः सिकुड कर मूल शरीर में आ जाता है। इन कुल आठ समयों (काल) में 3, 4, 5वां समय अनाहारक बताया है। इसकी विवेचना आवश्यक है। चौथे और पांचवें समय में जब आत्मा लोक-व्यापी रहती है वहां अनाहारक अवस्था का होना न्यायोचित है लेकिन तीसरे समय में अनाहारक होना तर्क-संगत नहीं लगता। जैन आगमों में ऐसे प्रकरण जो दुर्लभ अवसर हैं, वहाँ आकाश-काल के भौतिक नियम लागू नहीं होते।



आकाश का चौथा आयाम

आत्म-प्रदेशों की सघनता

जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आत्मा असंख्य चेतन प्रदेश वाली है। सभी संसारी आत्माएं शरीर युक्त हैं। शरीर में आत्मा के प्रदेशों का फैलाव समांगी नहीं है। आचार्य महाप्रज्ञ ने शरीर प्रेक्षा का वर्णन करते हुए चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के संबंध में लिखा है कि हमारे शरीर में कुछ मर्म स्थान होते हैं। आयुर्वेद में बहुत मर्म स्थान बतलाए गए। मनुष्य के शरीर में सुश्रुत के अनुसार डेढ़ सौ के लगभग मर्म स्थान होते हैं।

स्याह्वाव मंजरी में इसका सुंदर अर्थ आचार्य मल्लिसेन ने किया है —
बहुभिरात्म — प्रदेशैरिधष्ठिता देहावयवाः मर्म

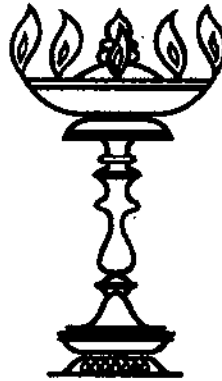
जहां आत्मा के प्रदेश बहुत सघन हो जाते हैं, उस स्थान का नाम है मर्म। आत्मा पूरे शरीर में व्याप्त है किंतु आत्मा के जो असंख्य प्रदेश हैं वे प्रदेश कहीं सघन हैं और कहीं बहुत विरल। एक बिंदु जितना स्थान ऐसा हो सकता है जहां हजारों-लाखों प्रदेश हो सकते हैं और कोई स्थान है जहां विरल है। नदी का पानी कहीं बहुत सघन होता है और कहीं छितरा हुआ है। वैसे ही आत्मा के प्रदेश कहीं छितरे हुए हैं और कहीं बहुत सघन बन गए हैं। जहां आत्मा के प्रदेश एक स्थान पर ज्यादा इकट्ठा हो गए उस स्थान का नाम है मर्म स्थान। उसी का नाम हठयोग की भाषा में है चक्र, प्रेक्षा ध्यान की भाषा में है चैतन्य केन्द्र और ओकल्ट साइंस की भाषा में है साइकिक सेन्टर। नाम भिन्न हो सकते हैं तात्पर्य में कोई भेद नहीं है। मूल बात एक ही है और वह है आत्मा के प्रदेश की सघनता। जहां हमारी चेतना का जागरण अधिक हो सकता है उस पर हम जितना ध्यान करें चेतना हमारी अधिक जागृत होगी और हमारा अधिक विकास होगा।

संवादी केन्द्र

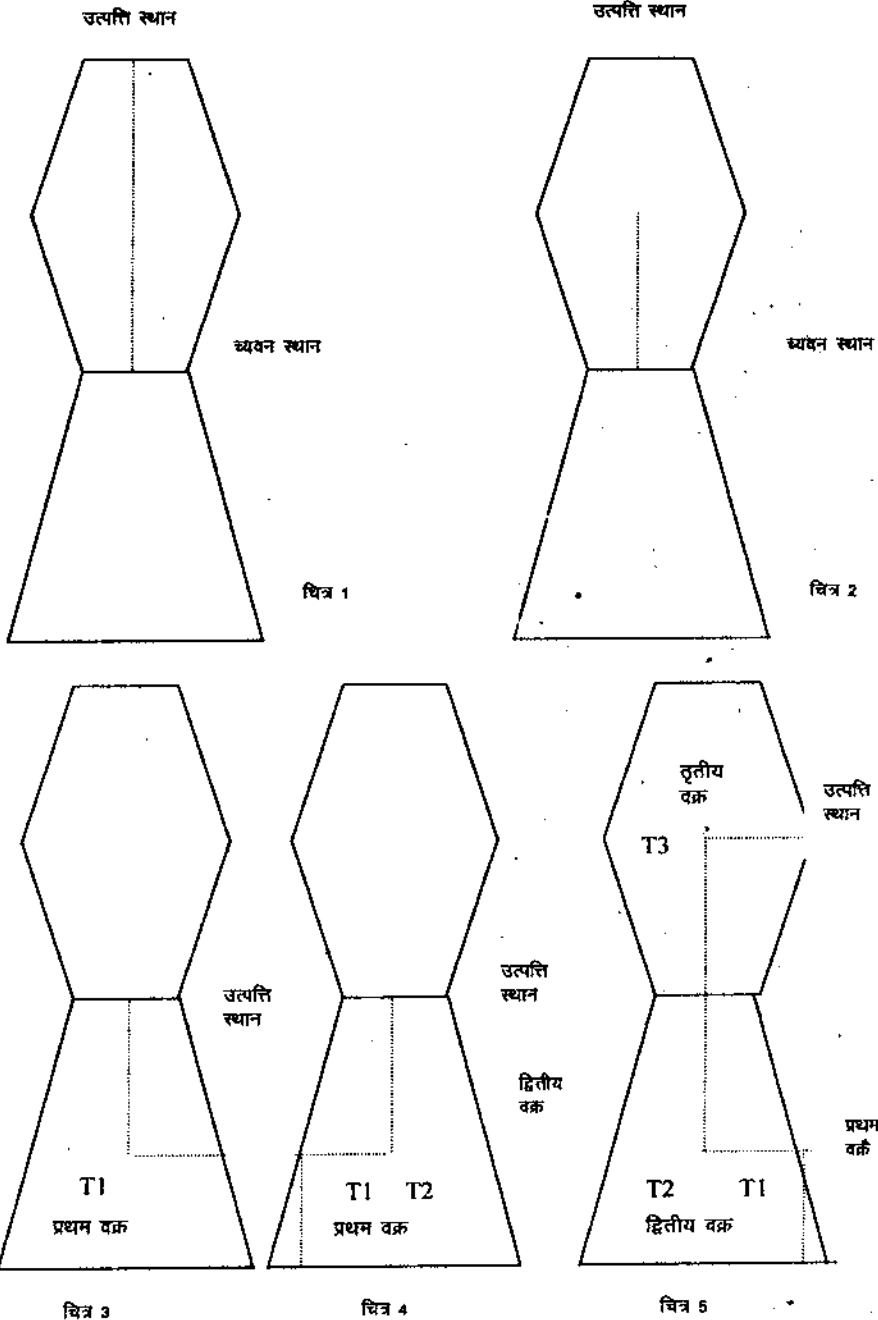
जैन दृष्टि से प्रत्येक संसारी आत्मा भौतिक कर्मों से बंधी है। उसी के अनुसार प्राणी कर्म-फल प्राप्त करता है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हर कर्म के अपने शरीर में संवादी केन्द्र बने हुए हैं। कर्म शरीर उन्हें प्रभावित करता है। तब कर्म अपना फल देते हैं। इनके केन्द्र केवल मस्तिष्क में ही नहीं हैं, शरीर के शेष अवयवों में भी हैं। शरीर में संवादी केन्द्र है। साधना करने से

संवादी केन्द्रों को निष्क्रिय बनाने पर फल में अंतर आ सकता है। महावीर वाणी के अनुसार पुरुषार्थ द्वारा कर्म के परिणाम को बदला जा सकता है।

आत्म-प्रदेशों की सघनता और विरलता का यह स्वरूप ऐसा प्रतीत होता है जैसे भौतिक विज्ञान में इलेक्ट्रॉन की ऋण विद्युत शक्ति का वितरण होता है। परमाणु के सूक्ष्मतम कण इलेक्ट्रॉन को, बादल के स्वरूप में मानते हैं। बादल के टुकड़े में पानी की वाष्प कहीं सघन होती है और कहीं विरल होती है। जहां सघनता होती है वहां बादल का रंग काला हो जाता है। जहां विरलता होती है वहां बादल सफेद ही नजर आते हैं। इस प्रकार बादल में पानी की सघनता सभी जगह समान नहीं होती। वैज्ञानिक इलेक्ट्रॉन में विद्युत शक्ति के वितरण को इसी प्रकार स्वीकार करते हैं जैसे आचार्य महाप्रज्ञ ने आत्म प्रदेशों की सघनता और विरलता को स्वीकार किया है।

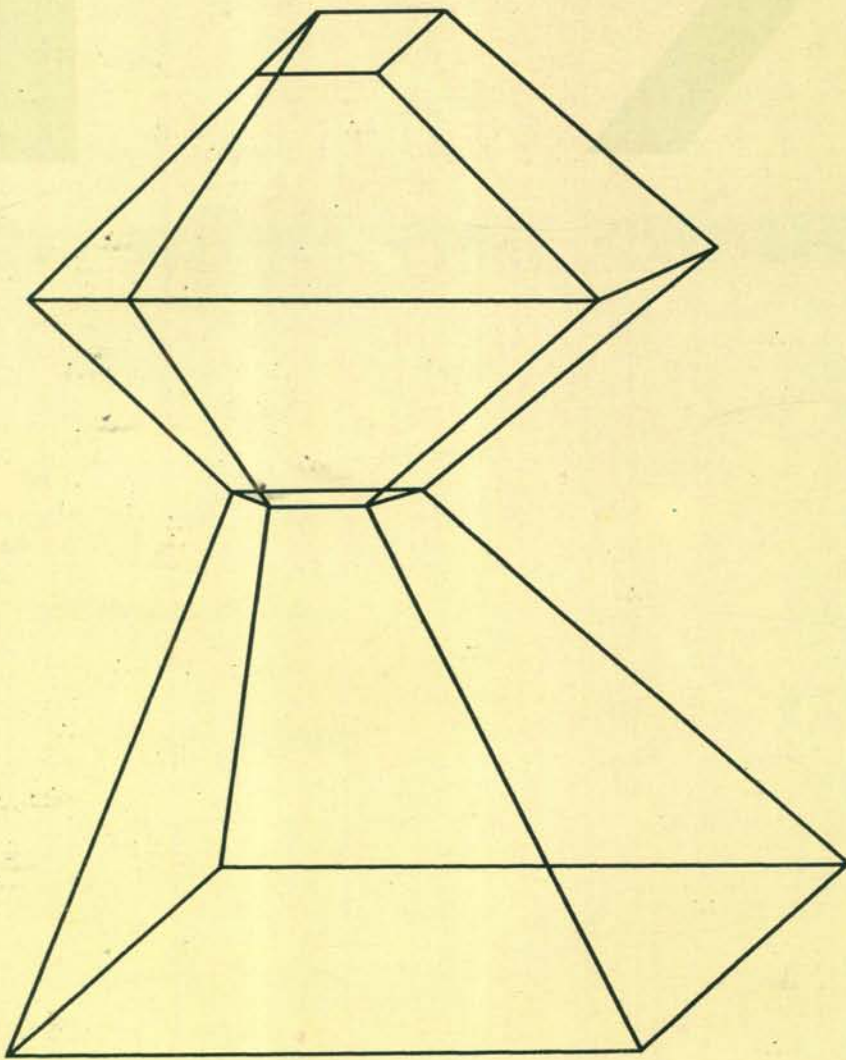


अन्तराल गति



जैन गणित तथा कर्मवाद

+
-
÷
%
X
=



=
X
%
÷
-
+

जैन गणित तथा कर्मवाद

जैन गणित	197
गणित के प्रकार	208
संख्यात, असंख्यात, अनन्त	213
कर्मवाद	226
कर्मवाद की गणितीय मीमांसा	240

जैन गणित

भारत में गणित के अध्ययन का आरम्भ ईसा पूर्व हजार वर्ष माना गया है। वैदिक काल में यज्ञों के लिए हवन कुण्डों का निर्माण होता था। यज्ञ क्षेत्र में पवित्र आग की सुरक्षा के लिए हवन कुण्डों को विशेष आकार दिया जाता था। कुण्डों के आकार त्रिकोण, चतुष्कोण, विस्तीर्ण, अधिवृत, परिमण्डल, वृत् आदि अन्य ज्यामिती खण्डों में हुआ करते थे। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक काल में ज्यामिती विज्ञान अपनी समृद्ध अवस्था में था।

जैन गणित

जैन दर्शन में लोक के छह द्रव्यों की मीमांसा में गणित का उपयोग हुआ है। जैन गणित का अभ्युदय ईसा पूर्व की छठी शताब्दी तथा इससे भी पूर्व का रहा है, जब भगवान पार्श्व और महावीर की परम्परा का ज्ञान विकसित हो रहा था। जैन गणित के दो प्रमुख मौलिक आयाम हैं -

1. जैनों ने इस लोक की रचना, उसके मध्य बिन्दु, (रुचक-प्रदेश) वक्राकार दिशाएं, कृष्ण-राजि आदि अन्य शाश्वत संस्थानों (स्वर्ग, नरक आदि) के आकार को समझने में ज्यामिती को विकसित किया है।
2. कर्मों की प्रकृतियां, जीव राशियों की गणना, जीवों के आयुष्य आदि को स्पष्टता एवं प्रामाणिकता से व्यक्त करने की दृष्टि से संख्यात्, असंख्यात् और अनन्त के गणितीय सिद्धान्तों का उल्लेख, विकास एवं अनुप्रयोग प्रचुरता से हुआ है।

स्थानांग और उत्तराध्ययन सूत्र में संस्थान (आकार) परिणाम पांच प्रकार के बताए हैं -

- परिमण्डल : चूड़ी की तरह गोल
- वृत् : गेंद की तरह वर्तुलाकार
- त्रिकोण
- चतुष्कोण
- आयत

इसी प्रकार कृष्ण-राजिओं के आकारों के वर्णन में त्रिकोणी, षड्कोणी तथा चौकोर पृथ्वियां बताई हैं। ये ज्यामिति के आकार वे ही हैं जो वैदिक काल में प्रचलित थे। यह इस बात की पुष्टि करता है कि वैदिक ज्यामिति और जैन ज्यामिति दोनों का उद्गम स्रोत भारतीय गणित रहा है। अतः यह मानना न्यायसंगत है कि जैन गणित और वैदिक गणित समानांतर धारा के रूप में विकसित हो रही थी।

पाठकगण पायेंगे कि ज्यामिति के विषय इस पुस्तक में संबंधित अध्यायों में वर्णित हुए हैं। यहां हम गणना संबंधी जैन गणित के आधारभूत तथ्यों की गवेषणा करेंगे।

जघन्य और उत्कृष्ट (Minimum and Maximum)

जैन साहित्य में लोक के छह मौलिक द्रव्यों के अध्ययन में संख्यात, असंख्यात और अनन्त की गणित का उपयोग करते हुए द्रव्यों की परस्पर की तुलना में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट में वर्गीकरण किया है। स्थानांग सूत्र में कालखण्ड की अभिव्यक्ति में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी को जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट बताया है। योनि-स्थिति के वर्णन में पृथ्वीकाय की योनि को जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट तीन वर्ष की बताई है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर द्रव्यों के परस्पर प्रभाव को स्पष्ट करते हुए जघन्य और उत्कृष्ट का विशेष वर्णन हुआ है। आधुनिक गणित में जघन्य और उत्कृष्ट का उपयोग उच्च गणित का विषय है इससे ज्ञात होता है कि 2000 वर्ष पूर्व भी जैन गणित समृद्ध अवस्था में थी।

सूक्ष्मतम अंश

गणितीय चर्चा में जाने से पूर्व छह द्रव्यों के सूक्ष्मतम अंशों को निम्न सारिणी से समझने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि इन्हीं के आधार पर गणित का विकास हुआ है।

	द्रव्य	सूक्ष्मतम अंश
1.	पुद्गल	परमाणु
2.	काल	समय
3.	धर्म, अधर्म, आकाश, जीव	प्रदेश (अविभागी)

परमाणु

पुद्गल (पदार्थ) की सूक्ष्मतम इकाई को परमाणु कहा है। लोक में पुद्गल दो प्रकार का है —

1. सूक्ष्म
2. स्थूल

इनके परस्पर गुणों और व्यवहार में स्पष्ट अन्तर है। सूक्ष्म पुद्गल भार-रहित होता है तथा स्थूल भार-सहित होता है। सूक्ष्म पुद्गल गति के समय अन्य पुद्गलों से बाधित नहीं होता जबकि स्थूल पुद्गल, अन्य स्थूल पुद्गल से बाधित होता है। वैज्ञानिक हाईजनबर्ग ने स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ को भिन्न मानते हुए कहा है कि स्थूल पदार्थ के नियम सूक्ष्म पदार्थ पर लागू नहीं होते। यह आश्चर्य की बात है कि आगम रचना काल में भी स्थूल पदार्थ के नियम सूक्ष्म पदार्थ पर लागू नहीं किये जाते थे। इसी दृष्टि से स्थूल पदार्थ के सूक्ष्मतम कण को स्थूल परमाणु कहा है तथा सूक्ष्म पदार्थ के सूक्ष्मतम कण को सूक्ष्म (निश्चय) परमाणु कहा है। इस विभेद को सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है क्योंकि दोनों में वास्तविक अन्तर है।

अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं के समुदय से एक स्थूल परमाणु बनता है और अनन्त स्थूल परमाणु के समुदय से स्थूल पदार्थ की रचना होती है। इस दृष्टि से सूक्ष्म परमाणु सूक्ष्म जगत की रचना का कारण है और स्थूल परमाणु स्थूल जगत की रचना का कारण है। इसकी पुष्टि अनुयोग द्वारा में वर्णित दो प्रकार के परमाणुओं से होती है —

1. सूक्ष्म परमाणु
2. व्यवहार परमाणु

हमारा इन्द्रिय गत अनुभव स्थूल जगत की देन हैं उसी पर हमारा समस्त व्यवहार आश्रित है। इसी कारण अनुयोग द्वारा सूत्र में स्थूल परमाणु की जगह व्यवहार परमाणु को निर्दिष्ट किया है। व्यवहार परमाणु से जिन पदार्थों की रचना होती है वह भी दो प्रकार के हैं —

1. वह पदार्थ जो स्थूल होते हुए भी दृष्टिगम्य नहीं है और न किसी इन्द्रिय से अनुभूत होते हैं।
2. वह पदार्थ जो स्थूल होते हुए दृष्टिगम्य होते हैं और इन्द्रिय गम्य भी होते हैं।

जीवन व्यवहार में व्यवहार परमाणुओं से बने पदार्थों की उपयोगिता होने के कारण हम इनके माप के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। जैन आगमों में व्यवहार परमाणु से प्रारम्भ होकर माप की एक सारिणी दी है उसकी हम चर्चा करेंगे।

अनन्त निश्चय (सूक्ष्म) परमाणुओं का एक परमाणु (व्यवहार)

8	परमाणु का एक त्रस रेणु
8^2	परमाणु का एक रथ रेणु
8^3	परमाणुओं का एक बालाग्र
8^4	परमाणुओं की एक लिखा
8^5	परमाणुओं की एक यूका
8^6	परमाणुओं का एक यव
8^7	परमाणु का एक अंगुल
24	अंगुल का एक हाथ
4	हाथों का एक धनुष्य
2000	धनुष्यों का एक गव्यूत
4	गव्यूतों का एक योजन

स्थानांग की वृत्ति में सूक्ष्म परमाणु और व्यवहार परमाणु का विस्तार से वर्णन हुआ है। हमें यह ध्यान रखना है कि व्यवहार परमाणु भी इतना छोटा है कि वह दृष्टिगोचर नहीं होता यद्यपि वह अनन्त सूक्ष्म परमाणुओं से बना है।

आठ की संख्या का महत्व

उपर्युक्त माप की सारिणी में हम पाते हैं कि सारिणी में वृद्धिगत इकाइयों में आठ संख्या का क्रमिक रूप से गुणनफल हुआ है तथा अंगुल के बाद माप में आठ संख्या के गुणनफल का प्रयोग नहीं है। यह अंतर किसी गणितीय माप की भेद रेखा को प्रकट करता है।

यह ध्यान रहे कि हम व्यवहार परमाणु की चर्चा कर रहे हैं। इस दृष्टि से सारिणी की माप की इकाइयों को हम दो भागों में विभक्त कर अध्ययन करेंगे।

(i) अंगुल और उसके बाद के माप।

(ii) अंगुल के पूर्व के माप।

जैसा कि हम पाते हैं कि जैन आगमों में इस लोक में जो शाश्वत भूगोल-खगोल संबंधी विवरण है वह सब अंगुल के माप से दर्शाया गया है, जो लम्बाई (चौड़ाई या ऊँचाई) का माप है लेकिन अंगुल के पूर्व के माप में यह सम्भावना बनती है कि यह इकाईयां केवल लम्बाई की नहीं है अपितु घन (आयतन) की है क्योंकि आठ की संख्या दो के घन (2^3) से प्राप्त होती है। जैनों ने दो की संख्या को गणित में प्रारम्भिक संख्या माना है, इस दृष्टि से हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि व्यवहार परमाणुओं से बने सूक्ष्म पदार्थों का माप आयतन से हुआ है। यह सूक्ष्म पदार्थ गोलाकार (Spherical) है अतः इनके माप आयतन में होना उचित प्रतीत होता है।

$$2^3 = 2 \times 2 \times 2 = 8$$

यह स्पष्ट रूप से त्रिआयामी माप है। इस विवेचन से यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि व्यवहार परमाणुओं से बने सूक्ष्म पदार्थों के माप में लम्बाई का कोई महत्त्व नहीं है। उनके माप आयतन से लिये जाते रहे हैं तथा अंगुल माप और उससे बड़े पदार्थों के माप लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई हेतु लिए जाते थे।

वैज्ञानिक धारणा

भौतिक शास्त्रियों ने पदार्थ के सूक्ष्मतम अंश को परमाणु कहा है लेकिन परमाणु भी इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन आदि कणों से संयुक्त माना गया है। नई खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि क्वार्क, पदार्थ का सूक्ष्मतम अंश है लेकिन ये क्वार्क भी स्वतंत्र अवस्था में नहीं रहते। वर्तमान में एक नए पार्टिकल का पता लगा है जिसमें पांच क्वार्क मौजूद हैं। इनका अस्तित्व सृष्टि के आरम्भ काल (बिग-बैंग) के समय से माना जाता है।

कहा जाता है कि इतिहास में घटनाओं की पुनरावृत्ति होती है। विज्ञान द्वारा सूक्ष्मतम कण के खोज की कहानी में भी आज वही स्थिति पुनः वहीं लौट आई जो बीसवीं सदी के प्रारम्भ में थी। उस समय यह माना गया था कि इस जगत की रचना के सूक्ष्मतम कण इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन का पता लग गया है। लेकिन इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन की जानकारी के बाद अनेक सूक्ष्म कणों का पता लगा जिससे सूक्ष्मतम कण निर्णित नहीं हो सका। अब यही स्थिति क्वार्क के संबंध में हो रही है। अतः यह अभी कहना सुनिश्चित नहीं है कि पदार्थ का सूक्ष्मतम कण क्या है ?

आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि जैन परिभाषा के अनुसार अछेद्य, अभेद्य, अग्राह्य, अदाह्य और निर्विभागी पुद्गल को निश्चय परमाणु कहा जाता है।

आधुनिक विज्ञान के विद्यार्थी को परमाणु के उपलक्षणों में संदेह हो सकता है, कारण कि विज्ञान के सूक्ष्म यंत्रों में परमाणु की अविभाज्यता सुरक्षित नहीं है।

व्यवहार परमाणु से बने स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों के भेद के अध्ययन के बाद अब हम वास्तविक सूक्ष्म परमाणु अर्थात् निश्चय परमाणु के द्वारा अन्य द्रव्यों के सूक्ष्मतम अंशों की समतुल्यता के बारे में अध्ययन करेंगे।

जैन साहित्य में सूक्ष्म परमाणु से ही अन्य द्रव्यों के सूक्ष्मतम काल्पनिक अंश निर्धारित किए गए हैं। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सूक्ष्म परमाणु की अत्यन्त सूक्ष्मता होने के कारण यह माप का आधार नहीं है केवल समतुल्यता का आधार है।

सूक्ष्मतम काल

इस क्रम में हमें काल के सूक्ष्मतम अंश को भी जानना चाहिए। पुद्गल की सभी घटनाएं आकाश-काल से बंधी हुई हैं। काल की सूक्ष्मतम इकाई 'समय' है और इसके आगे की इकाई को 'आवलिका' कहा है जो असंख्य समय के बराबर है। काल की सारिणी में समय और आवलिका के बीच असंख्य का भेद रखना स्पष्ट रूप से बताता है कि सूक्ष्म का स्थूल में माप परिवर्तन असंख्य समयों के अर्थात् क्वांटम जम्प (Quantum Jump) के बाद होता है। अतः 'समय' का माप सूक्ष्म जगत का है और आवलिका का माप स्थूल जगत के काल से है। परमाणु-पुद्गल की भांति काल भी दो स्तरों (Tier) पर विवेचित हुआ है।

यह कहा जा सकता है कि सूक्ष्म परमाणु और समय, सूक्ष्म जगत में पुद्गल और काल की प्रतिनिधि ईकाइयां हैं तथा व्यावहारिक परमाणु और आवलिका, स्थूल जगत की प्रतिनिधि ईकाइयां हैं।

वैज्ञानिक धारणा

विज्ञान जगत में काल के सूक्ष्मतम अंश को जानने के प्रयत्न अभी तक जारी हैं। विज्ञान की प्रसिद्ध पत्रिका 'नेचर' (Nature) में आस्ट्रिया के वैज्ञानिकों ने प्रकाशित किया है कि 'ऐटो सेकंड' के सौंवे हिस्से को मापने में उन्हें सफलता मिली है। इस खोज ने भविष्य की घड़ियों के और अधिक सुग्राही होने की राह आसान कर दी है। यह समय की इतनी छोटी इकाई है कि इसे सामान्य सेकंड के साथ एक ही पैमाने पर मापा जाए तो तीस करोड़ साल में सौ 'ऐटो सेकंड' एक सेकंड तक पहुंच सकेंगे। वैज्ञानिकों ने इसे

मापने के लिए परमाणु में इलेक्ट्रॉनों की गति का सहारा लिया। इसके लिए शोध दल ने चरम पराबैंगनी किरणों की मदद से परमाणु के इलेक्ट्रॉनों को उत्तेजित किया। इलेक्ट्रॉन प्रत्येक पदार्थ के मूलभूत कण हैं और इन पर ऋणात्मक आवेश होता है। वीन टेक्नीशे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फेरेंक क्रूज के अनुसार, कुछ इलेक्ट्रॉन इतने त्वरित हुए कि उन्होंने स्थाई रूप से परमाणु को छोड़ दिया। वैज्ञानिकों ने फ्यूसाइकल लेजर उपकरण से इन इलेक्ट्रॉनों के ट्रैमोग्राफिक चित्र लिए। इसी दौरान "एटो सेकंड" के सौंवे हिस्से में होने वाली गतिविधि का पता चला। इस शोध से अत्यंत सुग्राही घड़ियां बनाने में सहायता मिल सकती है। वर्तमान घड़ियां माइक्रोवेव आवृत्तियों पर काम करती हैं, जबकि इस शोध से ऑप्टिकल आवृत्तियों पर काम करने वाली घड़ियों के निर्माण की राह आसान हो सकती है जिनमें लेजर का इस्तेमाल होता है।

वैज्ञानिक सूक्ष्मतम समय को जानने के लिए अनेक प्रयोग कर रहे हैं। अभी तक विज्ञान में वर्णित समय (Time) जैन दर्शन का व्यवहार काल ही प्रतीत होता है। विज्ञान में एक समय को टाइम (Time) कहा है वह भी व्यवहार काल का ही न्यूनतम मान है। पुद्गल और काल के सूक्ष्मतम अंश निश्चय परमाणु और समय को जानने के बाद पाठक-गण को आकाश के सूक्ष्मतम अंश को जानना आवश्यक है। हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि क्या आकाश की भी स्थूल और सूक्ष्म दो इकाईयां बन सकती हैं ?

आगम साहित्य में आकाश, काल और पुद्गल के सूक्ष्मतम अंशों की परस्पर में समतुल्यता बताते हुए उनके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों स्वरूपों को प्रकट किया है।

आकाश-परमाणु

आकाश प्रदेश के जघन्य स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा है कि एक परमाणु आकाश में जितनी जगह घेरता है वह आकाश का सूक्ष्मतम कल्पित अंश है तथा आकाश प्रदेश के उत्कृष्ट स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा है कि एक आकाश प्रदेश में अनन्त स्कन्ध एक साथ ठहरे हुए हैं। इन दोनों कथनों में विरोधाभास प्रकट होता है। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि एक आकाश प्रदेश में जहां केवल एक परमाणु ठहरता है वहां अनन्त परमाणु भी ठहर सकते हैं ? अतः यह सुनिश्चित है कि यह आकाश प्रदेश की परिभाषाएँ नहीं है। यह पुद्गल अवगाहन की दृष्टि से आकाश की जघन्य और उत्कृष्ट

की व्याख्या माननी चाहिए। इस सम्बन्ध में आचार्य महाप्रज्ञ का विवेचन उल्लेखनीय हैं वे लिखते हैं कि -

आकाश के दो गुण हैं।

(i) क्षेत्र

(ii) अवगाहन

क्षेत्र और अवगाहन में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि क्षेत्र का संबंध आकाश-प्रदेशों से है। वह परमाणु और स्कन्ध द्वारा अवगाह होता है। अवगाहन का संबंध पुद्गल द्रव्य से है। उसका अमुक परिमाण-क्षेत्र में प्रसारण होता है। आकाश श्रेणियों वक्राकार होने से, वहां अनन्त पुद्गल समा जाता है।

आकाश-काल

जैन आगम साहित्य में आकाश और परमाणु की भांति आकाश और काल की परस्पर में समतुल्यता बताते हुए आकाश के जघन्य और उत्कृष्ट स्वरूप को प्रकट किया है।

आकाश के जघन्य स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा है कि एक परमाणु एक समय में अगर मन्दतम गति से चले तो वह एक आकाश प्रदेश से निकटतम दूसरे आकाश प्रदेश तक ही स्थानान्तरित हो सकता है। लेकिन आकाश के उत्कृष्ट स्वरूप को प्रकट करते हुए कहा है कि एक परमाणु एक समय में अगर तीव्रतम गति से चले तो वह लोक के एक अन्त से दूसरे अन्त तक (14 रज्जु) तक स्थानान्तरित हो सकता है। यह दो कथन भी विरोधाभासी प्रतीत होते हैं। इसके समाधान में हमें इस तथ्य की ओर ध्यान देना है कि गणित में जघन्य (Minimum) और उत्कृष्ट (Maximum) की व्याख्या का एक विशेष अर्थ है। यह केवल कम से कम और अधिक से अधिक आवश्यकता या उसके फलितार्थ को प्रकट करता है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में किसी घटना को कितने आकाश की आवश्यकता होगी। अतः उपर्युक्त कथनों को आकाश प्रदेश की परिभाषा नहीं माननी चाहिए।

विज्ञान की दृष्टि से यह समाधान दिया जा सकता है कि उपर्युक्त कथन सापेक्ष है। जब काल शून्य हो जाता है तो आकाश में दूरी गणना का विषय नहीं रहती है।

इस प्रश्न के समाधान में अगर हम व्यावहारिक परमाणु और निश्चय परमाणु के अंतर की भांति तथा 'समय' और आवलिका के अंतर की भांति

आकाश प्रदेश भी दो प्रकार के मान लें तो समस्या हल हो सकती हैं लेकिन सूक्ष्म आकाश प्रदेश और स्थूल आकाश प्रदेश जैसा विवरण उपलब्ध नहीं है।

प्रकारान्तर से आचारांग-निर्युक्ति में यह वर्णन आया है कि अंगुल प्रमाण आकाश में जितने आकाश प्रदेश हैं, उनमें से यदि एक एक समय में एक एक आकाश प्रदेश का अपहरण किया जाये तो उस क्षेत्र को खाली होने में असंख्यात् उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल बीत जाएगा। यह रूपक नहीं है अपितु वास्तविक स्थूल आकाश प्रदेश और सूक्ष्म आकाश प्रदेश के भेद को प्रकट कर रहा है। अतः अंगुल प्रमाण आकाश को स्थूल आकाश की इकाई और आकाश-प्रदेश को सूक्ष्म आकाश की इकाई कहा जा सकता है।

जैन दृष्टि से इस ब्रह्माण्ड में पदार्थ, सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार का है। उनमें गहरी भिन्नता है। सूक्ष्म जगत के माप, स्थूल जगत के माप नहीं हैं और जब सूक्ष्म माप, स्थूल माप बनते हैं तो वे असंख्य या अनन्त के समूह में संयुक्त होकर परिवर्तन कर पाते हैं। उपर्युक्त विवेचन से निम्न परिणाम प्रकट होते हैं —

- (i) हमने जाना है कि अनन्त सूक्ष्म परमाणु से, एक व्यवहार परमाणु बनता है। इसका अभिप्राय है कि संख्यात या असंख्यात सूक्ष्म परमाणु अगर संयुक्त भी होते हैं और किसी स्कन्ध की रचना करते हैं तो भी वे व्यवहार या स्थूल जगत में उपयोगी नहीं हैं। अनन्त के समूह में संयुक्त होकर, सूक्ष्म जगत से स्थूल जगत के निर्माण में उपयोगी होने का यह विवरण केवल जैन साहित्य की विशेषता है। यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि आज विज्ञान के क्षेत्र में क्वांटम का सिद्धान्त सूक्ष्म पदार्थ के लिए यही बात कहता है कि ऊर्जा का आदान-प्रदान क्वांटम (समूहगत) में ही संभव है। इन्हें क्वांटम पैकेट्स (Packets) कहा जाता है।
- (ii) काल के विवरण में भी यही बात स्पष्ट होती है कि असंख्यात समय से एक आवलिका का माप बनता है। कोई भी संख्यात गणना, सूक्ष्म समय को स्थूल समय में परिवर्तित नहीं करती। ये परिणाम हमें सावधान करते हैं कि किसी भी घटना को जानने के लिए पहले यह सुनिश्चित कर लें कि यह घटना सूक्ष्म जगत की है या स्थूल जगत की। सूक्ष्म जगत के विवरण में स्थूल जगत के माप लागू करने से या स्थूल जगत के विवरण में सूक्ष्म जगत के माप लागू करने से घटना कभी समझी

नहीं जा सकती क्योंकि दोनों के बीच असंख्यात या अनन्त का स्पष्ट अंतर आ जाता है।

(iii) यही स्थिति आकाश के संबंध में है। स्थानांग सूत्र में आकाश प्रदेशों की श्रेणियों का निम्न प्रकार से वर्णन उपलब्ध है। श्रेणी का अर्थ है — आकाश प्रदेश की वह पंक्ति जिसके माध्यम से जीव और पुद्गलों की गति होती है। जीव और पुद्गल श्रेणी के अनुसार ही गति करते हैं — एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते हैं। श्रेणियां सात हैं —

1. ऋजु-आयता
2. एकतोवक्रा
3. द्वितोवक्रा
4. एकतःखहा
5. द्वितःखहा
6. चक्रवाला
7. अर्द्धचक्रवाला

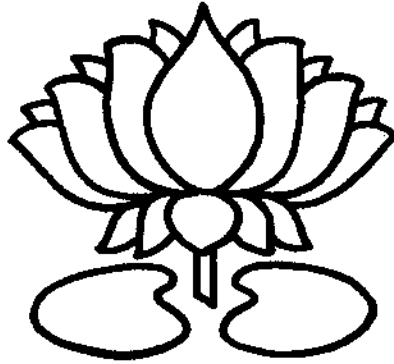
इन सात श्रेणियों का उल्लेख भगवती सूत्र में हुआ है। इन सात श्रेणियों की स्थापना इस प्रकार है —

श्रेणी	स्थापना
ऋजु-आयत	—
एकतोवक्रा	┌
द्वितोवक्रा	└
एकतःखहा	—
द्वितःखहा	—●—
चक्रवाला	○
अर्द्धचक्रवाला	⊂

जैन साहित्य में भौतिक विज्ञान से संबंधित अनेक विषयों पर गंभीरता से चिंतन हुआ है। उनमें आकाश श्रेणियों का वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रेणियों का यह प्रकरण 'आकाश द्रव्य' की निम्न विशेषताओं को प्रकट करता है —

1. आकाश का स्वरूप समांगी नहीं है।
2. जैन आगमों में आकाश श्रेणियों का यह वर्णन इस वैज्ञानिक तथ्य को पुष्ट करता है कि जहां भी आकाश वक्राकार है, वहां के आकाश-प्रदेश की संख्या सीधी श्रेणी के आकाश प्रदेश की संख्या से असंख्य गुना अधिक होती है। इसी कारण वक्राकार श्रेणियों में अनन्त पुद्गल समा जाता है।

जैन प्राच्य साहित्य में वर्णित छह द्रव्यों के अध्ययन में, इस बात को सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है कि सूक्ष्म अलग है, स्थूल अलग है।



गणित के प्रकार

स्थानांग सूत्र में संख्यात पद में गणित के दस प्रकार निर्दिष्ट हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस गणितीय विद्या पर विस्तृत टिप्पणी प्रस्तुत की है, जो पूर्णता लिए हुए हैं। गणित की यह प्राचीन भारतीय पद्धति पाठकगण के लिए रुचिकर होगी।

1. परिकर्म

यह गणित की एक सामान्य प्रणाली है। भारतीय प्रणाली में मौलिक परिकर्म आठ माने जाते हैं -

- | | |
|----------------------|-------------------------------|
| (1) संकलन (जोड़) | (2) व्यवकलन (बाकी) |
| (3) गुणन (गुणन करना) | (4) भाग (भाग करना) |
| (5) वर्ग (वर्ग करना) | (6) वर्गमूल (वर्गमूल निकालना) |
| (7) घन (घन करना) | (8) घनमूल (घनमूल निकालना)। |

इन परिकर्मों में से अधिकांश का वर्णन सिद्धान्त ग्रन्थों में नहीं मिलता। ब्रह्मगुप्त के अनुसार पाटी गणित में बीस परिकर्म हैं -

- | | |
|------------|------------------------------|
| (1) संकलित | (2) व्यवकलित अथवा व्युत्कलिक |
| (3) गुणन | (4) भागहर |
| (5) वर्ग | (6) वर्गमूल |
| (7) घन | (8) घनमूल |

(9-13) पांच जातियाँ¹ (पांच प्रकार के भिन्नो को सरल करने के नियम)

- | | |
|-------------------------|--------------------|
| (14) त्रैशिक | (15) व्यस्तत्रैशिक |
| (16) पंच राशिक | (17) सप्तराशिक |
| (18) नवराशिक | (19) एकदसराशिक |
| (20) भाण्ड-प्रति-भाण्ड। | |

प्राचीन काल से ही हिन्दू गणितज्ञ इस बात को मानते रहे हैं कि गणित के सब परिकर्म मूलतः दो परिकर्मों-संकलित और व्यवकलित-पर आश्रित हैं। द्विगुणीकरण और अर्धीकरण के परिकर्म जिन्हें मिस्र, यूनान और अरब वालों

ने मौलिक माना हैं ये परिकर्म हिन्दू ग्रन्थों में नहीं मिलते। ये परिकर्म उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण थे जो दशमलव पद्धति से अनभिज्ञ थे।

2. व्यवहार — ब्रह्मदत्त के अनुसार पाटीगणित में आठ व्यवहार हैं —

- मिश्रक-व्यवहार
- श्रेढी-व्यवहार
- क्षेत्र-व्यवहार
- खात-व्यवहार
- चति-व्यवहार
- क्राकचिक-व्यवहार
- राशि-व्यवहार
- छाया-व्यवहार।

पाटीगणित — यह दो शब्दों से मिलकर बना है —(1) पाटी और (2) गणित। अतएव इसका अर्थ है वह गणित जिसको करने में पाटी की आवश्यकता पड़ती है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक कागज की कमी के कारण प्रायः पाटी का ही प्रयोग होता था और आज भी गांवों में इसकी अधिकता देखी जाती है। लोगों की धारणा है कि यह शब्द भारतवर्ष के संस्कृतेतर साहित्य से निकलता है, जो कि उत्तरी भारतवर्ष की एक प्रान्तीय भाषा थी। “लिखने की पाटी” के प्राचीनतम संस्कृत पर्याय ‘पलक और ‘पट्ट’ हैं, न कि पाटी। ‘पाटी’ शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में प्रायः 5 वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। गणित-कर्म को कभी-कभी धूली कर्म भी कहते थे, क्योंकि पाटी पर धूल बिछा कर अंक लिखे जाते थे। बाद के कुछ लेखकों ने ‘पाटी गणित’ के अर्थ में ‘व्यक्त गणित’ का प्रयोग किया है, जिसमें कि बीजगणित से, जिसे वे अव्यक्त गणित कहते थे पृथक समझा जाए। जब संस्कृत ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ तब पाटीगणित और धूली कर्म शब्दों का भी अरबी में अनुवाद कर लिया गया। अरबी के संगत शब्द क्रमशः ‘इल्म-हिसाब-अलतख्त’ और ‘हिसाब-अलगुवार’ है।

पाटीगणित के कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ (1) वक्षाली हस्तलिपि (लगभग 300 ई.), (2) श्रीधरकृत पाटी गणित और त्रिशतिका (लगभग 750 ई.), (3) गणित सार संग्रह (लगभग 850 ई.), (4) गणित तिलक (1039 ई.), (5) लीलावती (1150 ई.), (6) गणितकौमुदी (1356 ई.), और मुनिश्वर कृत

पाटीसार (लगभग 1658 ई.) इन ग्रन्थों में उपर्युक्त बीस परिकर्मों और आठ व्यवहारों का वर्णन है। सूत्रों के साथ-साथ अपने प्रयोग को समझाने के लिए उदाहरण भी दिए गए हैं — भास्कर द्वितीय ने लिखा है कि लल्ल ने पाटीगणित पर एक अलग ग्रन्थ लिखा है।

यहां श्रेणी व्यवहार का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। सीढ़ी की तरह गणित होने से इसे सेढ़ी-व्यवहार या श्रेणी-व्यवहार कहते हैं। जैसे— एक व्यक्ति किसी दूसरे को चार रूपये देता है, दूसरे दिन पांच रूपये अधिक, तीसरे दिन उससे पांच रूपये अधिक। इस प्रकार पन्द्रह दिन तक वह देता है तो कुल कितने रूपये दिए ?

प्रथम दिन देता है उसे 'आदि धन' कहते हैं। प्रतिदिन जितने रूपये बढ़ाता है उसे 'चय' कहते हैं। जितने दिनों तक देता है उसे 'गच्छ' कहते हैं। कुल धन को श्रेणी-व्यवहार या संवर्धन कहते हैं। अन्तिम दिन जितना देता है उसे 'अन्त्यधन' कहते हैं। मध्य में जितना देता है उसे 'मध्यधन' कहते हैं।

विधि — जैसे — गच्छ 15 हैं। इनमें एक घटायी $15-1 = 14$ रहे। इसको चय से 14×5 गुणा किया -70 आये। इसमें आदि धन मिलाया $70 + 4 = 74$ । यह अन्त्य धन हुआ। $74 + 4$ आदि धन = 78 का आधा 39 मध्य धन हुआ।

$$39 \times 15 \text{ गच्छ} = 585 \text{ संवर्धन हुआ।}$$

इसी प्रकार विजातीय अंक एक से नौ या उससे अधिक संख्या की जोड़, उस जोड़ की जोड़, वर्गफल और धनफल की जोड़, इसी गणित के विषय हैं

3. रज्जु — इसे क्षेत्र गणित कहते हैं। इससे तालाब की गहराई, वृक्ष की ऊँचाई आदि नापी जाती है। भुज, कोटि, कर्ण, जात्यतिस्त्र, व्यास, वृत्तक्षेत्र और परिधि आदि इसके अंग हैं।

4. राशि — इसे राशि-व्यवहार कहते हैं। मोटे अन्न चना आदि में परिधि का $1/10$ भाग वेध होता है। छोटे अन्न में परिधि का $1/11$ भाग वेध होता है। शूर धान्य में परिधि का $1/9$ भाग वेध होता है। परिधि का $1/6$ करके उसका वर्ग करने के बाद परिधि से गुणन करने से धनहस्तफल निकलता है। जैसे — एक स्थान पर मोटे अन्न की परिधि 60 हाथ की है। उसका धनहस्तफल क्या होगा ?

$60 + 10 = 6$ वेध हुआ परिधि $60 + 6 = 10$ इसका वर्ग $10 \times 10 = 100$ हुआ। 100×6 वेध = 600 घनहस्तफल होगा।

5. कलासवर्ण — जो संख्या पूर्ण न हो, अंशों में हो— उसे समान करना 'कलासवर्ण' कहलाता है। इसे सम्बन्धेदीकरण, सवर्णन और समच्छेदविधि भी कहते हैं। (हिन्दू गणिशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ 179)। संख्या के ऊपर के भाग को अंश और नीचे के भाग को 'हर' कहते हैं।

जैसे $1/2$ और $1/3$ है। इसका अर्थ कलासवर्ण $3/6$; $2/6$ होगा।

6. यावत् तावत् — इसे गुणकार भी कहते हैं।

पहले जो कोई संख्या सोची जाती है उसे गच्छ कहते हैं। इच्छानुसार गुणन करने वाली संख्या को वाञ्छ या इष्ट संख्या कहते हैं।

गच्छ संख्या को इष्ट-संख्या से गुणन करते हैं। उसमें फिर इष्ट मिलाते हैं। उस संख्या को पुनः गच्छ से गुणा करते हैं। तदनन्तर गुणनफल में इष्ट के दुगुने का भाग देने पर गच्छ का योग आता है। इस प्रक्रिया को 'यावत् तावत्' कहते हैं।

जैसे — कल्पना करो कि इष्ट 16 है, इसको इष्ट 10 से गुणा किया — $16 \times 10 = 160$ । इसमें पुनः इष्ट 10 मिलाया ($160 + 10 = 170$)। इसको गच्छ से गुणा किया ($170 \times 16 = 2720$) इसमें इष्ट की दुगुनी संख्या से भाग दिया $2720 \div 20 = 136$, यह गच्छ का योगफल है। इस वर्ग को पाटी गणित भी कहा जाता है।

7. वर्ग — वर्ग शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'पक्ति' अथवा 'समुदाय'। परन्तु गणित में इसका अर्थ 'वर्गघात' तथा 'वर्गक्षेत्र' अथवा उसका क्षेत्रफल होता है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने इसकी व्यापक परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'समचतुरस्त्र' (अर्थात् वर्गाकार क्षेत्र) और उसका क्षेत्रफल वर्ग कहलाता है। दो समान संख्याओं का गुणन भी वर्ग है। वर्ग के अर्थ में कृति शब्द का प्रयोग भी मिलता है, परन्तु बहुत कम। इसे समद्विराशिघात भी कहा जाता है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इसकी भिन्न-भिन्न विधियों का निरूपण किया है।

8. घन — इसका प्रयोग ज्यामितीय और गणितीय — दोनों अर्थों में अर्थात् ठोस घन तथा तीन समान संख्याओं के गुणनफल को सूचित करने में किया गया है। आर्यभट्ट प्रथम का मत है — तीन समान संख्याओं का गुणनफल तथा बारह बराबर कोणों (और भुजाओं) वाला ठोस भी घन है।

घन के अर्थ में 'वृन्द' शब्द का भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है। इसे 'समत्रिराशिघात' भी कहा जाता है। घन निकालने की विधियों में भी भिन्नता है। श्रीधर, महावीर और भाष्कर द्वितीय का कथन है कि तीन समान संख्याओं का गुणनफल घन है।

9. वर्ग-वर्ग — वर्ग को वर्ग से गुणा करना। इसे 'समचतुर्घात' भी कहते हैं। पहले मूल संख्या को उसी संख्या से गुणा करना। फिर गुणनफल की संख्या को गुणनफल की संख्या से गुणा करना। जो संख्या आती है उसे वर्ग-वर्ग फल कहते हैं। जैसे — $4 \times 4 = 16$; $16 \times 16 = 256$ । यह वर्ग-वर्ग फल है।

10. क्रकच व्यवहार — कला गणित में इसे 'क्रकच-व्यवहार' कहते हैं। यह पाटीगणित का एक भेद है। इससे लकड़ी की चिराई और पत्थरों की चिनाई आदि का ज्ञान होता है। जैसे — एक काष्ठ मूल में 20 अंगुल मोटा है और ऊपर में 16 अंगुल मोटा है। वह 100 अंगुल लम्बा है। उसको चार स्थानों में चीरा तो उसकी हस्तात्मक चिराई क्या होगी? मूल मोटाई और ऊपर की मोटाई का योग किया — $20 + 16 = 36$ । इसमें 2 का भाग दिया $36 \div 2 = 18$ । इसको लम्बाई से गुणा किया — $100 \times 18 = 1800$ । फिर इसे चीरने की संख्या से गुणा किया $1800 \times 4 = 7200$ । इसमें 576 का भाग दिया $7200 \div 576 = 12\frac{1}{2}$ यह हस्तात्मक चिराई है।

स्थानांग वृत्तिकार ने सभी प्रकारों के उदाहरण नहीं दिए हैं। उनका अभिप्राय यह है कि सभी प्रकारों के उदाहरण मन्द बुद्धि वालों के लिए सहजतया ज्ञातव्य नहीं होते अतः उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

सूत्रकृतांग 2/1 की व्याख्या के प्रारंभ में "पौंडरिक शब्द" के निक्षेप के अवसर पर वृत्तिकार ने एक गाथा उद्धृत की है, उसमें गणित के दस प्रकारों का उल्लेख किया है। वहां नौ प्रकार स्थानांग के समान ही हैं। केवल एक प्रकार भिन्न रूप से उल्लिखित है। स्थानांग का कल्प शब्द उसमें नहीं है। वहां 'पुद्गल' शब्द का उल्लेख है, जो स्थानांग में प्राप्त नहीं है।

संख्यात, असंख्यात, अनन्त

शीर्षप्रहेलिका

आचार्य महाप्रज्ञ ने वेदकालीन अंकगणित की चर्चा करते हुए जैन आगमों में वर्णित गणना-संख्या की परमकोटि शीर्षप्रहेलिका की विशेषता का उल्लेख किया है। यजुर्वेद 17/2 में, 1 से 12 शून्य रख कर दस खरब तक की संख्या का वर्णन है। उस गणित शास्त्र में महासंख तक की संख्या का व्यवहार होता है। वे 20 अंक इस प्रकार हैं। इकाई, दस, शत, सहस्र, ----- संख, दस संख, महासंख। महामंख से किसी बड़ी संख्या का वर्णन नहीं है। जैन प्राच्य साहित्य में लिखी जाने वाली सबसे बड़ी संख्या शीर्षप्रहेलिका है जिससे 54 अंक और 140 शून्य होते हैं। 194 अंकात्मक संख्या सबसे बड़ी संख्या है। यद्यपि एक अन्य वाचना में शीर्षप्रहेलिका की कुल 250 अंकों की संख्या मानी गई है। इस संख्या की तुलना में वेदकालीन उत्कृष्ट संख्या बहुत छोटी है। विज्ञान की सूक्ष्म गणित ने शीर्षप्रहेलिका की सत्यता को प्रतिस्थापित किया है और उसे महत्त्वपूर्ण खोज माना गया है।

जैन आगमों में काल के भेदों में संख्यात, असंख्यात और अनन्त का वर्णन आया है। काल के सूक्ष्मतम भाग को 'समय' कहा है। समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक का काल मान्य है। शीर्षप्रहेलिका की संख्या से पूर्व की संख्याओं में हम पाते हैं कि चौरासी लाख की संख्या को विशेष महत्त्व दिया गया है। संख्या के विस्तार में चौरासी लाख तक तो संख्या की गणना की गई है, इसे पूर्वांग कहा है तथा इसके बाद संख्या सारिणी में आगे की संख्या की इकाईयों के निर्धारण में चौरासी लाख को चौरासी लाख में गुणा किया गया है अर्थात् वर्णित किया गया है। इस संख्या को 'पूर्व' कहा गया है। 'पूर्व' की संख्या को पुनः चौरासी लाख से गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है उसे त्रुटितांग कहा है। इस क्रम में संख्या के अद्वाइस स्थान हैं। अन्तिम संख्या शीर्षप्रहेलिका है उसे निम्न प्रकार से लिखा जाता है -

$$(8400000)^{28} \text{ या } (84 \times 10^5)^{28}$$

यद्यपि संख्यात काल शीर्षप्रहेलिका से आगे भी है, किंतु सामान्य ज्ञानी के लिए व्यवहार्य शीर्षप्रहेलिका तक ही है। इसके आगे के काल को उपमा के माध्यम से निरूपित किया गया है। पल्योपम, सागरोपम, अवसर्षिणी,

उत्सर्पिणी — ये औपम्य-काल के भेद हैं। इनका उपयोग विभिन्न गतियों के जीवों के आयुष्य को मापने के लिए किया जाता है। औपम्य-काल का वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है। इन संख्याओं के बाद का काल असंख्यात और अनन्त के रूप में व्यवहृत किया जाता है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि चौरासी लाख से आगे की संख्या की इकाइयों का निर्धारण, पिछली संख्या को वर्गित कर निर्धारित किया गया है। जैसे

84 लाख वर्ष	=	1 पूर्वांग
84 लाख पूर्वांग	=	1 पूर्व
84 लाख पूर्व	=	1 त्रुटितांग
.....	
.....	
84 लाख चूलिका	=	1 शीर्षप्रहेलिकांग
84 लाख शीर्ष प्रहेलिकांग	=	1 शीर्षप्रहेलिका

वेदकालीन अंकगणित और जैन अंकगणित में दशमलव पद्धति का उपयोग हुआ है। इसमें दोनों की समानता है लेकिन संख्या वृद्धि में जहां वेदकालीन अंकगणित में पूर्ण रूप से दशमलव पद्धति का उपयोग हुआ है वहां जैन अंकगणित में चौरासी लाख की संख्या के बाद की संख्या वृद्धि में वर्ग-वृद्धि की गई हैं।

इसके अतिरिक्त भी हम पाते हैं कि जैन अंकगणित में, गणना संख्या को दो से प्रारम्भ माना है, एक से नहीं। 'एक' संख्या की विशेषता पर जैनों का दृष्टिकोण, दार्शनिक रहा है। इन संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन अंकगणित का स्वतंत्र विकास हुआ है।

जैन अंकगणित में यह प्रश्न चिन्तनीय है कि —

- (i) संख्या वृद्धि में वर्गित करने का उपक्रम क्यों निर्धारित किया गया जबकि वृद्धि सामान्यतया योग से होती है ?
- (ii) चौरासी लाख संख्या की क्या विशेषता है ?

वर्गित करने उपक्रम

इस संदर्भ में स्थानांग सूत्र का नैरयिक जीवों की संख्या का वर्णन अवलोकनीय है जो निम्न प्रकार है। यहां तीन पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है, जो विमर्शनीय है।

- कति
- अकति
- अवक्तव्य

आचार्य महाप्रज्ञ ने गणित के इस अछूते विषय पर श्वेताम्बर और दिगम्बर, दोनों के साहित्य के आधार से विस्तृत टिप्पणी दी है जो पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

श्वेताम्बर परम्परा

1. कति शब्द का अर्थ है, कितना। यहां यह संख्येय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् दो से लेकर संख्यात तक।
2. अकति का अर्थ असंख्यात और अनन्त से है।
3. अवक्तव्य का अर्थ 'एक' संख्या से है। उत्तराध्ययन और अनुयोगद्वार सूत्र के आधार पर उल्लेख किया गया है कि एक संख्या, को गणना संख्या नहीं माना है। जैन आगमों में जघन्य (minimum) गणना संख्या दो मानी गई है। इसकी विवेचना आवश्यक है, जो आगे के पृष्ठों में की गई है।

दिगम्बर परम्परा

दिगम्बर परम्परा में कति शब्द के स्थान पर कदी शब्द आया है। उसका अर्थ कृति किया गया है। कृति शब्द की गणितीय व्याख्या जो की गई है, वह श्वेताम्बर परम्परा से भिन्न है। कृति के संबंध में वर्णित है कि जो राशि वर्णित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग में से, अपने वर्ग के मूल को कम कर, पुनः वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है, उसे कृति कहा है। कृति की, नोकृति और अवक्तव्य से भिन्नता दर्शाते हुए कहा है -

1. नोकृति

- (i) 'एक' संख्या का वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती

$$(1)^2 = 1 \times 1 = 1$$

- (ii) इसमें से वर्ग के मूल को कम करने से वह निर्मूल नष्ट हो जाती है।

$$1-1 = 0$$

- (iii) 0 अर्थात् शून्य का वर्ग करने पर कोई वृद्धि नहीं होती।

$$0^2 = 0 \times 0 = 0$$

इस कारण संख्या एक को नोकृति कहा है।

2. अवक्तव्य

- (i) दो संख्या का वर्ग करने पर, वृद्धि देखी जाती है अतः दो संख्या को नोकृति नहीं कहा जा सकता।

$$(2)^2 = 2 \times 2 = 4$$

- (ii) इसमें से वर्ग का मूल कम करने पर, मूल संख्या प्राप्त हो जाती है।

$$4 - 2 = 2$$

- (iii) इस प्राप्त संख्या को पुनः वर्गित कर, मूल को कम करने पर, संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती।

$$(2)^2 = 4$$

$$4 - 2 = 2$$

इन समीकरणों से ज्ञात होता है कि दो संख्या कृति भी नहीं है और नो कृति भी नहीं है अतः इसे अवक्तव्य कहा गया है।

3. कृति

- (i) तीन संख्या को आदि लेकर वर्गित करने पर वृद्धि होती है।

$$\text{अर्थात् } (3)^2 = 9$$

- (ii) इस संख्या में से मूल संख्या कम करने पर भी वह मूल संख्या वृद्धिगत ही रहती है।

$$\text{अर्थात् } 9 - 3 = 6$$

- (iii) इस क्रम में दोहराने पर, वृद्धि निरंतर बनी रहती है।

$$(6)^2 = 36$$

$$36 - 6 = 30$$

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि

- (i) "एक" संख्या नोकृति है।
 (ii) "दो" संख्या अवक्तव्य है।
 (iii) तीन और इससे आगे की संख्या कृति है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा का यह अर्थभेद सचमुच आश्चर्यजनक है। कति और कृति दोनों का प्राकृत रूप कति या कदि बन सकता है। इस विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि जैन अंकगणित में संख्या की वृद्धि में, मूल संख्या को वर्गित करने का गणितीय उपक्रम प्रचलित था।

लेकिन यह प्रश्न बना रहता है कि वर्गित रूप, चौरासी लाख के बाद क्यों प्रारम्भ हुआ? इसके तीन संभावित कारण हो सकते हैं।

- (i) जैन सिद्धांत में जीव की चौरासी लाख योनियां बताई गई हैं। जीव, इन्हीं योनियों में बार-बार भ्रमण करता रहता है, चक्कर लगाता रहता है, जब तक कि मोक्ष प्राप्त न हो। इस सैद्धान्तिक संख्या से अधिक क्रमबद्ध संख्या जानने की उपयोगिता न समझ कर संभवतः आगे की संख्या वर्गित कर वृद्धि की गई प्रतीत होती है क्योंकि वर्गित कर संख्या वृद्धि का उपक्रम स्वीकृत था।
- (ii) जैन दर्शन के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धांत की अगर गणितीय कल्पना करें, तो चौरासी लाख योनियों में चक्कर को वृत्त (circle) के क्षेत्र से दर्शाया जा सकता है। वृत्त का क्षेत्रफल πr^2 होता है जिसमें π का गणितीय मूल्य 3.14 निश्चित तथा अपरिवर्तनीय होता है। वृत्त का अर्द्धव्यास (r) बदलता रहता है जो वृत्त के क्षेत्र में वृद्धि करता रहता है। इस ज्यामिति से भी हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि क्षेत्र-वृद्धि में r^2 का उपयोग हुआ है, अर्थात् अर्द्धव्यास को वर्गित किया गया है। अतः वर्गित कर संख्या में वृद्धि करने का औचित्य समझ में आता है।
- (iii) अंकों की दृष्टि में, 84 संख्या की विशेषता यह है कि इसे पुनः पुनः वर्गित करने पर जो संख्याएं आती हैं उनमें प्रत्येक संख्या के अंकों का परस्पर में योग नौ (9) होता है। संख्या के मूल दस अंक होते हैं। वे हैं 0 से 9 तक। इसमें 9 संख्या सर्वाधिक होती है। 9 संख्या को दैवीय तथा पवित्र माना जाता है। उदाहरणतः

- (i) $84 \times 84 = 7056$;
संख्या के अंकों का योग $(7+0+5+6) = 18$;
पुनः अंकों का योग $(1+8) = 9$
- (ii) $84 \times 84 \times 84 = 592704$;
संख्या के अंकों का योग $(5+9+2+7+0+4) = 27$;
पुनः अंकों का योग $(2+7) = 9$
- (iii) $84 \times 84 \times 84 \times 84 = 49787136$;
संख्या के अंकों का योग $(4+9+7+8+7+1+3+6) = 45$;
पुनः अंकों का योग $(4+5) = 9$

इस प्रकार आगे की संख्याओं के परिणाम भी 9 आते हैं। यद्यपि ऐसा 9 की संख्या और उसके गुणनफल में भी होता है लेकिन 84 की संख्या में होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उपर्युक्त विवेचन केवल संभावना को ही प्रकट करता है क्योंकि जैन आगम साहित्य में ऐसा वर्णन उपलब्ध नहीं है।

गणना संख्या

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं ने प्रारंभिक संख्या 'एक' को गणना संख्या में नहीं माना है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार एक संख्या गणना संख्या में नहीं आती क्योंकि लेन-देन के व्यवहार में अल्पतम होने के कारण 'एक' की गणना नहीं होती। 'संख्यति इति संख्या' अर्थात् जो विभक्त हो सके, वह संख्या है। इस दृष्टि से जघन्य (minimum) गणना संख्या दो से प्रारम्भ मानी है। इस दिलचस्प प्रकरण के महत्त्व को देखते हुए, पाठकों के लिए अन्य गणितज्ञों की राय भी उल्लेखनीय है क्योंकि यह विषय गणित के इतिहास से संबंधित है।

गणितज्ञ यूक्लिड ने आकाश के सूक्ष्मतम बिंदु का कोई आयाम नहीं माना है। यद्यपि आकाश में बिंदुओं से मिलकर ही कोई आयाम (लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई) निर्धारित होता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक न्यूटन ने भी पदार्थ के सूक्ष्मतम कण परमाणु को माप का किसी भी गणना में उपयोग नहीं बताया है यद्यपि परमाणुओं के समूह से ही पुद्गल पदार्थ की रचना होती है। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से यह धारणा बनती है कि आकाश का सूक्ष्मतम अंश बिंदु तथा पदार्थ का सूक्ष्मतम कण परमाणु का आकार शून्यवत माना गया है। लेकिन आइंस्टीन ने गाउजियन पद्धति की ज्यामिति का प्रयोग करते हुए आकाश के सूक्ष्मतम बिंदु का अन्य सूक्ष्मतम कणों से तुलना की है। इसी प्रकार जैन साहित्य में भी द्रव्यों के सूक्ष्मतम अंशों की परस्पर में तुलना की गई है। जैसे, पुद्गल का सूक्ष्मतम अंश परमाणु, आकाश का सूक्ष्मतम अंश प्रदेश और काल का सूक्ष्मतम अंश समय की परस्पर में समतुल्यता स्थापित की गई। अतः प्रकृति के मूल तत्त्वों के सूक्ष्मतम अंश को शून्य नहीं कहा जा सकता। जैन दार्शनिकों ने 'एक' को संख्या कहा है लेकिन 'एक' को द्रव्यों के सूक्ष्मतम अंशों के लिए गणना संख्या में स्वीकार नहीं किया है।

यहां हम गंभीरता से इस तथ्य को जानने का प्रयास करें कि जैन आगम साहित्य में, शून्य अंक को कहीं स्थान क्यों नहीं दिया गया? इसके निम्न कारण हो सकते हैं -

- (i) एक समस्या यह रही होगी कि अस्तित्व गत द्रव्यों का कोई भी गुणधर्म अगर शून्य हो जाता है तो फिर वह गुणधर्म पुनः कैसे प्राप्त हो सकेगा?
- (ii) दार्शनिक दृष्टि यह रही होगी कि सत्, अगर एक बार असत् हो जाता है तो फिर असत् से सत् किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा?
- (iii) यहां हम उक्त समस्या को पुद्गलों के गुणों के उदाहरण से समझने का प्रयत्न करेंगे। परमाणु के गुणधर्म, वर्ण गंध रस स्पर्श द्वारा अभिव्यक्त किए जाते हैं। जैसे कोई परमाणु एक गुण काला है, तो कोई संख्यात् या असंख्यात् या अनन्त गुण काला है। वह संयोग-वियोग करता हुआ काले वर्ण में गुणात्मक परिवर्तन करता है लेकिन जैन दृष्टि से किसी भी स्थिति में परमाणु शून्य गुण काला नहीं होता। इसी प्रकार परमाणु के स्पर्श में होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों का उदाहरण दे सकते हैं। कोई भी परमाणु का, मौलिक स्पर्श का गुण स्निग्ध, रुक्ष अथवा शीत, उष्ण शून्य गुण नहीं हो सकता। न्यूनतम गुणों की संख्या में 'एक' गुण का होना सदैव माना गया है।
- (iv) यहां हमें यह समझना है कि यह 'एक' संख्या वास्तव गणना संख्या नहीं है अपितु, शून्य के निकटतम अंश को प्रकट करती है। जो शून्य होकर भी शून्य नहीं है। इसे शून्यवत या शून्येतर (Non-Zero) कहा जा सकता है। इसका एक प्रमाण यह उपलब्ध है कि जैन गणितज्ञों ने उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त को भी स्वीकार नहीं किया है। उसे असदभाव कहा है। इससे यह धारणा स्पष्ट हो जाती है कि परम शून्य और उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त, इस जगत में नहीं है। परम शून्य से कुछ अधिक और उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त से कुछ कम, इन दोनों के बीच ही समस्त गणित समाविष्ट है। यहां हम भौतिक विज्ञान के दो उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

1. ताप के माप की दो परम्पराएं प्रचलित हैं।

(i) सेन्टीग्रेड माप $^{\circ}\text{C}$

(ii) एब्सोल्यूट माप $^{\circ}\text{K}$

साधारणतः हम शून्य डिग्री सेन्टीग्रेड से प्रारम्भ होकर आगे के ताप का माप करते हैं। जब हम कहते हैं कि पानी 0°C पर बर्फ जम जाता है

तो क्या यह माना जाए कि बर्फ में ताप शून्य हो गया? ऐसा नहीं है। तब हम ताप की ऐब्सोल्यूट स्केल का प्रयोग कर बताते हैं कि इसमें 273°K ताप है। लेकिन 0°K को किस प्रकार समझाएं क्योंकि ऐसी कोई वस्तु या घटना नहीं होती जहां 0°K ताप होता है। 0°K का अभिप्राय परम शून्य से है। विज्ञान के क्षेत्र में 0°K की स्पष्ट धारणा बनी हुई है कि यह ताप केवल औपचारिक है, वास्तविक नहीं। इस ताप पर परमाणु का आकार शून्य हो जाता है और भौतिक शास्त्र का कोई नियम प्रभावी नहीं रहता। अतः यह स्थिति कभी प्राप्त नहीं होती है। इस चिन्तन से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि वस्तु में जब तक उसके गुणधर्म रहते हैं तब तक वह परम शून्य ताप पर नहीं पहुंचता। हमने ताप के संबंध में जाना है कि परमाणु का ताप कभी शून्य नहीं हो सकता। यही मान्यता जैन दर्शन के मूल द्रव्यों के लिए है इसलिए यहां शून्य की गणितीय धारणा स्वीकृत नहीं है। शून्यवत अंश को 'एक' कहा गया है। इसी कारण से जैनों ने 'एक' को संख्या तो कहा लेकिन उसे गणना संख्या में स्वीकार नहीं किया।

2. दूसरे उदाहरण में प्रकाश के सूक्ष्मतम कण फोटॉन की हम निम्न प्रकार से चर्चा करेंगे।

- (i) फोटॉन का कण गतिहीन (rest) अवस्था में शून्य द्रव्यमान (massless) कहा गया है। लेकिन इस कथन को केवल काल्पनिक माना गया है।
- (ii) फोटॉन जब गति में होता है तो उसकी गति प्रकाश की गति के समान होती है। ऐसे में उसके द्रव्यमान की गणना नहीं की जा सकती।

अतः विज्ञान जगत में यह स्वीकार किया गया कि शून्य द्रव्यमान वाले कण ही प्रकाश की गति प्राप्त कर सकते हैं तथा कोई भी अन्य कण अगर शून्य से किंचित अधिक द्रव्यमान का है तो वह प्रकाश की गति प्राप्त नहीं कर सकेगा।

ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि फोटॉन का काल्पनिक शून्य द्रव्यमान सदैव द्रव्यमान प्राप्त करने की प्रवृत्ति (tends to) में रहता है। अतः फोटॉन का द्रव्यमान उसके स्थिर अवस्था में शून्य होकर भी पूर्ण रूप से शून्य नहीं है। वैज्ञानिक जगत का यह निष्कर्ष आश्चर्य रूप से जैन भगवती सूत्र के इस वाक्य से समानता रखता है कि जो चलने को प्रवृत्त हो गया

उसे चला हुआ मानना चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञ ने 'चलमाणे चलिए' का विस्तार से विवेचन किया है।

विज्ञान और जैन दर्शन की समानता का यह विशिष्ट उदाहरण है।

कई विद्वानों ने अभाव को शून्य माना है, यह गणितीय विधा के अन्तर्गत नहीं आता इसलिए इसका विवरण यहां नहीं दिया गया है।

संख्या आठ प्रकार की बतलाई है। उसमें एक भेद है गणना। गणना के मुख्य तीन भेद हैं - संख्य, असंख्य और अनन्त। इनके अवान्तर भेद बीस होते हैं। यथा -

संख्य के तीन भेद हैं

- (1) जघन्य (Minimum)
- (2) मध्यम (Optimum)
- (3) उत्कृष्ट (Maximum)

असंख्य के नौ भेद हैं -

- (1) जघन्य परीत असंख्येय
- (2) मध्यम परीत असंख्येय
- (3) उत्कृष्ट परीत असंख्येय
- (4) जघन्य युक्त असंख्येय
- (5) मध्यम युक्त असंख्येय
- (6) उत्कृष्ट युक्त असंख्येय
- (7) जघन्य असंख्येय असंख्येय
- (8) मध्यम असंख्येय-असंख्येय एवं
- (9) उत्कृष्ट असंख्येय-असंख्येय।

अनन्त के आठ भेद हैं -

- (1) जघन्य परीत अनन्त
- (2) मध्यम परीत अनन्त
- (3) उत्कृष्ट परीत अनन्त
- (4) जघन्य युक्त अनन्त
- (5) मध्यम युक्त अनन्त
- (6) उत्कृष्ट युक्त अनन्त
- (7) जघन्य अनन्त-अनन्त
- (8) मध्यम अनन्त-अनन्त एवं
- (9) उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त, असदभाव होने से यह भेद गणना में नहीं

लिया गया है।

जघन्य संख्या दो है और अंतिम संख्या अनन्त है। जिस प्रकार संख्या 'एक' को गणना में स्वीकार नहीं किया है, वैसे ही उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त को भी असदभाव होने से गणना संख्या स्वीकार नहीं किया है इसका फलित यह

है कि संख्या 'एक' का अभिप्राय शून्य से है क्योंकि उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त का विपरीत शून्य ही हो सकता है। इस जगत में ऐसा कुछ नहीं है जो परम शून्य हो और न ऐसा भी कुछ है जो उत्कृष्ट अनन्त-अनन्त हो। जैन गणित की यह धारणा जगत के द्रव्यों को समझने में अत्यन्त उपयोगी है।

संख्या के सारे विकल्पों को कल्पना के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं —

चार प्याले हैं — अनवस्थित, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका। चारों प्याले एक लाख योजन लम्बे, एक लाख योजन चौड़े, एक हजार योजन गहरे, गोलाकार और जम्बूद्वीप की जगति प्रमाण ऊँचे हैं। पहले अनवस्थित प्याले को सरसों के दाने से इतना भरें कि एक दाना उसमें और डालें तो वह न ठहर सके। उस प्याले का पहला दाना जम्बूद्वीप में, दूसरा लवणसमुद्र में, तीसरा धातकीखण्ड में — इस प्रकार द्वीप और समुद्र में क्रमशः दाने गिराते चले जाएँ। (जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है, लवणसमुद्र उससे दूना और धातकीखण्ड उससे दूना है, इस प्रकार द्वीप के बाद समुद्र और समुद्र के बाद द्वीप एक-दूसरे से दूना है)। असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। अंतिम दाना जिस समुद्र या द्वीप में गिराएँ, उस प्रमाण का दूसरी बार अनवस्थित प्याला बनाएँ। फिर उससे आगे उसी प्रकार अनवस्थित प्याले का एक-एक दाना गिराते जाएँ। (एक बार अनवस्थित प्याला खाली हो जाए तो एक दाना शलाका प्याले में डालें।) इस क्रम से एक-एक दाना डाल कर शलाका प्याले को भरें। शलाका प्याला इतना भर जाए कि उसमें एक दाना भी और डालें तो वह उसमें न टिक सके। एक बार शलाका प्याला भरने पर प्रतिशलाका में एक दाना डालें। जब इस क्रम से प्रतिशलाका प्याला भर जाए तो एक दाना महाशलाका प्याले में डालें। इस क्रम से महाशलाका प्याला भरने के बाद प्रतिशलाका भरें, फिर शलाका प्याला भरें, फिर अनवस्थित प्याला भरें। दूसरे रूप में इसे सरलता से इस प्रकार समझ सकते हैं।

अनवस्थित प्याला	—	एक दाना शलाका
शलाका प्याला	—	एक दाना प्रतिशलाका
प्रतिशलाका प्याला	—	एक दाना महाशलाका

चारों प्यालों के भर जाने के बाद सब दानों का एक ढेर करें। उस राशि में से दो दाने हाथ में लें। शेष ढेर मध्यम संख्यात है। हाथ का एक

दाना मिलाने से उत्कृष्ट संख्यात् होता है। हाथ का दूसरा दाना मिलाने से जघन्य परीत असंख्यात् होता है।

जघन्य परीत असंख्येय की राशि को जघन्य परीत असंख्येय की राशि से जघन्य परीत असंख्येय बार गुणा करें। जो राशि आए, उसमें से दो निकाल लें। शेष राशि मध्यम परीत असंख्येय होता है। एक और मिलाने से उत्कृष्ट परीत असंख्येय होता है। एक और मिलाने से जघन्य युक्त असंख्येय होता है। जघन्य युक्त असंख्येय की राशि को, जघन्य युक्त असंख्येय की राशि से जघन्य युक्त असंख्येय बार से गुणा करें। जो राशि प्राप्त हो, उसमें से दो निकालने पर शेष राशि मध्यम परीत असंख्येय होती है। एक मिलाने से उत्कृष्ट परीत असंख्येय होता है।

जघन्य असंख्येय असंख्येय राशि को इसी राशि से उतनी ही बार गुणा करें। जो राशि प्राप्त हो, उसमें से दो निकाल लें। शेष राशि मध्यम असंख्येय होती है। एक मिलाने से उत्कृष्ट असंख्येय होती है। एक और मिलाने से जघन्य युक्त असंख्येय असंख्येय होती है। - - - -

जघन्य युक्त अनन्त की राशि को इसी राशि से उतनी ही बार गुणा करें। जो राशि प्राप्त हो, उसमें से दो निकाल लें। शेष राशि मध्यम परीत अनन्त होती है। एक मिलाने से उत्कृष्ट परीत अनन्त होती है। एक और मिलाने से जघन्य अनन्त अनन्त होती है। जघन्य अनन्त अनन्त से आगे की संख्या सब मध्यम अनन्त अनन्त होती है। क्योंकि उत्कृष्ट अनन्त अनन्त नहीं होता। असंख्य और अनन्त की यह कल्पित गणित, आइंस्टीन के सापेक्षवाद की गणित से कम कठिन नहीं है क्योंकि यह कहा जाता रहा है कि आइंस्टीन का गणितीय विवेचन को समझने वाले कुछ ही व्यक्ति थे। गणनात्मक संख्या के विवरण के बाद अनन्त और असंख्य पर दी गई टिप्पणियां पाठकगण के लिए प्रेषित है।

अनन्त तथा असंख्यात्

आचार्य महाप्रज्ञ अनन्त के संबंध में लिखते हैं कि जिसका अन्त नहीं होता उसे अनन्त कहा जाता है। जैन आगम साहित्य में अनन्त शब्द का अनेक संदर्भों में प्रयोग हुआ है। संदर्भ के साथ प्रत्येक शब्द का अर्थ भी आंशिक रूप में परिवर्तित हो जाता है। द्रव्य के साथ अनन्त का प्रयोग द्रव्यों की व्यक्तिशः अनन्तता का सूचक है। गणना के साथ अनन्त शब्द के प्रयोग का संबंध संख्या से है।

जैन गणित में गणना के तीन प्रकार हैं -

- संख्यात
- असंख्यात
- अनन्त

संख्या की गणना होती है। असंख्यात की गणना नहीं होती लेकिन वह शान्त होता है। अनन्त की न गणना होती है और न उसका अन्त होता है। जैन दर्शन में वर्णित द्रव्यों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि 'प्रदेश' के साथ अनन्त शब्द द्रव्य के अवयवों का निर्धारण करता है। जीव के प्रदेश असंख्य होते हैं। आकाश और अनन्त प्रदेशी पुद्गल स्कन्धों के प्रदेश अनन्त होते हैं। एकतः और उभयतः इन दोनों के साथ अनन्त शब्द का प्रयोग काल-विस्तार को सूचित करता है। प्रदेश का अभिप्राय द्रव्य के सूक्ष्मतम काल्पनिक अंश से है।

एकतः अनन्त का अर्थ-आयाम लक्षणात्मक अनन्त (एक श्रेणीक क्षेत्र) और उभयतः अनन्त का अर्थ आयाम और विस्तार लक्षणात्मक अनन्त (प्रतर क्षेत्र) किया है। अन्य व्याख्या में एकतः अनन्त का उदाहरण अतीत या अनागत काल और उभयतः अनन्त का उदाहरण-सर्वकाल दिया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इनमें कोई विरोध नहीं कहा है। इनकी व्याख्या देश और काल - दोनों दृष्टियों से की जा सकती है।

देश विस्तार और सर्व विस्तार के अनन्त शब्द का प्रयोग दिग् और क्षेत्र के विस्तार को सूचित करता है। इस प्रकार विभिन्न संदर्भों के साथ अनन्त शब्द विभिन्न अर्थों की सूचना देता है। यह अनन्त शब्द की निक्षेप पद्धति का एक उदाहरण है।

जैन गणित में हम विशेषता पाएंगे कि वहाँ संख्यात और असंख्यात को साथ-साथ ही रखा है। असंख्यात को संख्यात का ही भाग माना है तथा वह गणना का भाग नहीं है। काल की सारिणी जो नीचे दी गई है, उसे देखें तो हम पाएंगे कि संख्यात के बाद असंख्यात और फिर संख्या का पुनः प्रयोग हुआ है। असंख्य समय की एक आवलिका के बाद, संख्येय आवलिका का एक निःश्वास बताया है। एक ही तालिका में असंख्यात और संख्यात का होना यह सिद्ध करता है कि असंख्यात, संख्यात का ही भाग है।

भगवती सूत्र में संख्येय काल का निरूपण करते हुए काल सारिणी दी है -

समय	—	परम सूक्ष्म काल
असंख्य समय	—	एक आवलिका
संख्येय आवलिका	—	एक निःश्वास
एक उच्छ्वास-निःश्वास	—	एक प्राण
सात प्राण	—	एक स्तोक
-----	—	-----
अड़चास मिनट	—	एक मुहूर्त आदि

समय और आवलिका की तुलना काल द्रव्य के विवेचन में की गई है।



कर्मवाद

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार, कर्म सिद्धान्त, जैन दर्शन का एक महान सिद्धान्त है। इसकी अनन्त गहराइयों में डुबकी लगाना उस व्यक्ति के लिए अनिवार्य है, जो अध्यात्म के अंतस् की उष्मा का स्पर्श चाहता है। कर्मशास्त्र में हमारे आचरणों की कार्य-कारणात्मक मीमांसा है। हमारे अतीत का लेखा-जोखा है।

वे कहते हैं कि जैन दर्शन में कर्मवाद की जो मीमांसा हुई है, उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन अभी नहीं हुआ है। यदि वह हो तो मनोविज्ञान और योग के नए उन्मेष हमारे सामने आ सकते हैं। मनोविज्ञान को पढ़ने पर उन्हें लगा कि जिन समस्याओं पर कर्मशास्त्रियों ने अध्ययन और विचार किया था, उन्हीं समस्याओं पर मनोवैज्ञानिक अध्ययन और विचार कर रहे हैं। यदि मनोविज्ञान के संदर्भ में कर्मशास्त्र को पढ़ा जाए तो उसकी अनेक ग्रन्थियां सुलझ सकती हैं, अनेक अस्पष्टताएं स्पष्ट हो सकती हैं। कर्मशास्त्र के संबंध में यदि मनोविज्ञान को पढ़ा जाए तो उसकी अपूर्णता को समझा जा सकता है और अब तक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर खोजे जा सकते हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में कर्मशास्त्र, योगशास्त्र तथा मनोविज्ञान तीनों का समन्वित अध्ययन होने पर ही हम अध्यात्म के सही रूप को समझ सकते हैं और उसका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं। मनोविज्ञान के अतिरिक्त कर्मवाद, गणित की जटिलता से बहुत गुंफित है। कर्मवाद का अध्ययन मनोविज्ञान और गणित के अभाव में होने के कारण यह महान सिद्धान्त उपयोगी कम हुआ है, आवरण अधिक बना है। पाठकगण, इस अध्याय में आचार्य महाप्रज्ञ के मनोविज्ञान और जीन्स के संबंध में विचार पढ़ेंगे।

कर्म और पुरुषार्थ

कर्मवाद को मानने वाले प्रत्येक कार्य के लिये कर्म को उत्तरदायी बता देते हैं। ईश्वरवाद को मानने वाले ईश्वर को और नियतिवाद को मानने वाले नियति पर सारा उत्तरदायित्व डाल देते हैं। " हम क्या करें कर्म में ऐसा ही लिखा था"। जीवन और जगत के विकास में पुरुषार्थ और नियति-दोनों

का योग रहता है। दोनों की अपनी-अपनी सीमाएं हैं। नियति को छोड़कर केवल पुरुषार्थ के आधार पर जीवन की समग्रता से व्याख्या नहीं की जा सकती। यह कहा जाता है कि आदमी जैसा कर्म करता है वैसा ही उसे भुगतना पड़ता है लेकिन इससे आदमी का पुरुषार्थ का दीप बुझ जाता है। वह मानने लग जाता है कि मैं कुछ कर नहीं सकता। यह एकांगी दृष्टिकोण है।

इस मिथ्या धारणा ने अनेक भ्रान्तियाँ पैदा की हैं। इस धारणा ने गरीबी, बीमारी, दुर्बलस्था और अज्ञान को बढ़ने में सहारा दिया है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार कर्मवाद को एकांगी उत्तरदायी मान लेना गलत धारणा है। यद्यपि कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद का भी महत्त्व कम नहीं हैं फिर भी ये इतने व्यापक नहीं हैं जितना कर्मवाद व्यापक है। किंतु यह सही प्रतीत होता है कि कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है। **कर्म पर भी अंकुश है। कर्मों में परिवर्तन किया जा सकता है।** कर्मों में उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण तथा संक्रमण संभव है। ये प्रक्रियाएं कर्मों को रूपान्तरित करती हैं।

परिवर्तनशीलता

कर्मवाद का सिद्धान्त बुराई से बचने के लिए तथा नैतिक जीवन जीने के लिए एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है किन्तु इसे पराजयवादी मनोवृत्ति के साथ जोड़ दिया गया। वह पलायनवादी, निराशावादी हो गया। वास्तव में **कर्म पुरुषार्थ से जुड़ी हुई प्रेरणा है।** कर्मवाद वर्तमान की समस्या को समाहित करने में सक्षम है। आचार्य महाप्रज्ञ की यह यथार्थवादी व्याख्या, समाज प्रदत्त अव्यवस्था पर करारा प्रहार है।

दार्शनिक विवेचन

कर्म भारतीय दर्शन में एक प्रतिष्ठित सिद्धान्त है। उस पर लगभग सभी पुनर्जन्मवादी दर्शनों ने विमर्श प्रस्तुत किया है। पूरी तटस्थता के साथ कहा जा सकता है कि इस विषय का सर्वाधिक विकास जैन दर्शन में हुआ है। कर्मशास्त्र में शरीर रचना से लेकर आत्मा के अस्तित्व तक, बन्धन से लेकर मुक्ति तक सभी विषयों पर गहन चिन्तन और दर्शन मिलता है। इस जगत में व्यापक रूप से दिखाई देने वाली भिन्नता का क्या कारण है? अप्रत्यक्ष कारण की खोज में दर्शन जगत में काल, स्वभाव, नियति, ईश्वर, कर्म आदि सिद्धान्तों का आविर्भाव हुआ। जैन दर्शन ने जीव और जगत के वैविध्य का कारण कर्म को स्वीकार किया। भगवती सूत्र में भगवान महावीर ने कहा है, **'जीव कर्म के द्वारा विभक्ति भाव अर्थात् विभिन्नता को प्राप्त होता है।'**

परिभाषा

कर्म की अवधारणा भारतीय चिन्तन में व्याप्त है लेकिन प्रत्येक दर्शन ने कर्म की परिभाषा अलग-अलग दी है। मीमांसक परम्परा में यज्ञ — इत्यादि, नित्य नैमित्तिक क्रियाओं को, गीता में कायिक आदि प्रवृत्तियों को, योग एवं वेदान्त में कर्म के साथ क्रियात्मक अर्थ को भी कर्म ही माना है। जैन सिद्धान्त दीपिका में कहा है —

आत्मनः सदसत्प्रवृत्त्याकृष्टास्तत्प्रायोग्यपुद्गलाः कर्म

आत्मा की सत् एवं असत् प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट एवं कर्मरूप में परिणत होने योग्य पुद्गलों को कर्म कहा है। पुद्गल को भौतिक पदार्थ कहा जा सकता है। कर्म सूक्ष्म पुद्गल पदार्थ हैं। ये चतुः स्पर्शी पुद्गल हैं। चतुः स्पर्शी पुद्गल भारहीन होते हैं। भारहीनता के कारण इनका व्यवहार, इन्द्रियों के ज्ञान से परे हो जाता है। इसी विशेषता के कारण कर्म के व्यवहार को प्रत्यक्ष जाना नहीं जाता। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार सूक्ष्म पुद्गल अदृश्य है और वे किसी भी सूक्ष्मतम उपकरण से नहीं देखे जा सकते। फिर भी इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि वैज्ञानिकों के सूक्ष्म उपकरण, कभी कर्म-पुद्गलों का फोटो ले सकेंगे।

मनोविज्ञान

मानव प्रवृत्ति जन्मजात होती है या बनाई जाती है? इस पर अरस्तू और प्लेटो ने और बाद में जॉन लॉक और डेविड ह्यूम ने तर्क दिया था कि मनुष्य का दिमाग अनुभवों से बना है जबकि विज्ञानी जीन जेक्स, रुसो और केन्ट ने कहा है कि मनुष्य की प्रकृति अपरिवर्तनीय है। फ्रायड का कहना है कि मनुष्यत्व का निर्माण माता-पिता, सपनों, हंसी-ठहाकों और यौन-क्रियाओं से बना है। फ्रांस बोयस ने कहा है कि " भाग्य और वातावरण ही सांस्कृतिक विविधता के लिए जिम्मेदार होते हैं।"

जीव विज्ञान की आधुनिक विकसित शाखा जैव प्रौद्योगिकी में मानव जीनोम परियोजना, जैनेटिक अभियांत्रिकी तथा मानव क्लोनिंग आदि का अध्ययन, अन्वेषण किया जाता है। इसके नूतन अनुसंधानों के द्वारा जीवों के गुणसूत्रों पर स्थित जीवों (वंशाणुओं) के कई गुणधर्मों का पता चल रहा है। जीवों की विभिन्न प्रवृत्तियों — बुढ़ापा, अपराध, बीमारियों इत्यादि का नियमन भी इन वंशाणुओं से होता है तथा इनके परिवर्तन के द्वारा मनोवांछित-जीवन बनाने का दावा वैज्ञानिक कर रहे हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान में वैयक्तिक भिन्नता का अध्ययन आनुवंशिकता (हेरिडिटी) और परिवेश (एन्वायर्मेन्ट) के आधार पर किया जाता है। जीवन का प्रारम्भ माता के डिम्ब और पिता के शुक्राणु के संयोग से होता है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति के आनुवंशिक गुणों का निर्धारण उसकी इकाई कोशिकाओं के अंदर स्थित गुणसूत्रों (Chromosomes) के द्वारा होता है। क्रोमोसोम अनेक जीनों (जीन्स) का एक समुच्चय होता है। एक क्रोमोसोम में लगभग पाँच हजार जीन माने जाते हैं। ये जीन ही माता पिता के आनुवंशिक गुणों के वाहक होते हैं। जीन की वैज्ञानिक व्याख्या के पश्चात् कर्मवाद का विषय अस्पष्ट नहीं रहा है। कर्म वर्गणाओं में असंख्य स्पन्दन होते हैं। यह बुद्धिगम्य विषय नहीं माना जाता था किंतु जीन के आविष्कार से कर्म व्यवहार भी समझा जा सकेगा। मनोविज्ञान ने शारीरिक और मानसिक विलक्षणताओं की व्याख्या आनुवंशिकता और परिवेश के आधार पर की है, पर इससे विलक्षणता के संबंध में उठने वाले प्रश्न समाहित नहीं होते।

सीमाएं

आचार्य महाप्रज्ञ ने मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त ज्ञान को महत्त्वपूर्ण माना है और इसका उपयोग करते हुए कर्म-शास्त्र के सिद्धान्त के महत्त्व को स्पष्ट किया है। फिर भी उनकी दृष्टि में मानसिक विलक्षणताओं के संबंध में आज भी अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं। क्या बुद्धि आनुवंशिक गुण है? अथवा परिवेश का परिणाम है? क्या बौद्धिक स्तर को विकसित किया जा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर कर्मशास्त्रीय दृष्टि से देना संभव है! कर्मशास्त्रीय दृष्टि से जीवन का प्रारम्भ माता-पिता के डिम्ब और शुक्राणु के संयोग से होता है किन्तु जीव का प्रारम्भ उनसे नहीं होता। मनोविज्ञान के क्षेत्र में जीवन का प्रारम्भ और जीव का भेद अभी स्पष्ट नहीं है। अतः **आनुवंशिकता का संबंध जीवन से है, वैसे ही कर्म का संबंध जीव से है।** इसलिए वैयक्तिक योग्यता या विलक्षणता का आधार केवल जीवन के आदि-बिन्दु में ही नहीं खोजा जाता, इससे परे भी खोजा जाता है, जीव के साथ प्रवहमान कर्म-संचय (कर्म-शरीर) में भी खोजा जाता है।

जेनेटिक इंजीनियरिंग

जेनेटिक इंजीनियरिंग के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कहते हैं कि इसके अनुसार वैज्ञानिकों ने मनुष्य के स्वभाव की और आचरण की महत्त्वपूर्ण

व्याख्याएं की हैं। उसके आधार पर सामान्य और असामान्य व्यवहार और आचरण को समझने में सुविधा हुई है। वैज्ञानिक जीन के परिवर्तन के सूत्र की खोज में लगे हुए हैं। जानवरों की नस्ल को सुधारने में वैज्ञानिकों को सफलता मिली है। आज वे मनुष्य की नस्ल को सुधारने के सूत्र की खोज कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त नाड़ी संस्थान और ग्रंथि तंत्र के स्रावों का परिवर्तन होने पर मनुष्य के व्यक्तित्व में परिवर्तन हो जाता है। अमेरिका में सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि प्रदूषण के कारण नगरों की वायु में शीशे की मात्रा अधिक होती है और इसके प्रभाव से बच्चों की मनःस्थिति विकृत बन जाती है। अतः वैयक्तिक भिन्नता का कारण कर्म के अतिरिक्त पर्यावरण, आनुवंशिकता, परिस्थिति, नाड़ी संस्थान और ग्रंथितंत्र में होने वाले परिवर्तन भी हैं।

कर्म संक्रमण का सिद्धान्त

'जीन' सूक्ष्म जीवन तत्त्व है जो आनुवंशिक गुण-दोषों का संवाहक होता है। शरीर के रंग-रूप, आकार, बनावट आदि सभी सूचनाएं सांकेतिक रूप में जीन में अंकित हैं। विज्ञान के क्षेत्र में अब यह सोचा जा रहा है कि 'जीन' को बदलने का सूत्र हस्तगत हो जाए तो पूरे व्यक्तित्व को बदला जा सकता है। अध्यात्म के क्षेत्र में, आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार भाव से, कर्म को बदला जा सकता है। कर्म संक्रमण का सिद्धान्त 'जीन' को बदलने का सिद्धान्त है। कर्म शास्त्र में यह भी माना गया है कि कर्मों का फल, द्रव्य तथा क्षेत्र पर निर्भर करता है। अतः व्यक्ति के जीवन में कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं बल्कि आनुवंशिकता, परिस्थिति, वातावरण, भौगोलिकता, पर्यावरण ये सब मनुष्य के स्वभाव एवं व्यवहार पर असर डालते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में यह संभावना बनी हुई है कि जीन को बदला जा सकेगा। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि वातावरण, जीन्स को बदलने में प्रभावी होते हैं।

पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों में परिवर्तन

मानव जीनोम योजना पर दशकों से शोध कार्य हो रहा है। वैज्ञानिक आधार पर शरीर-रचना का मूल कोशिका है। एक डिम्बाणु कोशिका से अनेक कोशिकाएं बन जाती हैं। निषेचित डिम्बाणु से संग्रहित असंख्य सूचनाओं का हस्तान्तरण ज्यों का त्यों सभी कोशिकाओं को कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया जीन के माध्यम से होती है। पहले वैज्ञानिकों ने बताया था कि जीन में प्रोटीन होता है जो शरीर की कोशिकाओं का निर्माण करता है और अब क्रेंग वेंटर के अनुसार 'हमारे व्यवहार, हमारी प्रवृत्तियों के लिए, हमारे आस-पास का

वातावरण भी जिम्मेदार है। इसका अभिप्राय यह है कि वातावरण और पालन-पोषण के अनुसार परिवर्तनकारी भी है और वे इनसे प्रभावित होकर ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि मनुष्य की प्रकृति बदलने के लिए बहुत कम जीन बदलने की आवश्यकता होगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम कोई चीज सीखने की कोशिश करते हैं उस समय कुछ विशेष जीनों की खिड़कियाँ खुलती और बंद होती हैं। इसका अर्थ है कि हमारे शरीर के जीन (गुण सूत्रों) पर हमारे विचारों में होने वाली ऊथल-पुथल का प्रभाव पड़ता है। इसके अनुसार हमारे जीन्स में परिवर्तन कर हम इच्छित दिशा में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं। इस दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ का यह कथन कि पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों में परिवर्तन किया जा सकता है, जीन्स के परिवर्तन के समान प्रतीत होता है। अब हम अधिक स्वतन्त्र विचार-मन्थन कर अपनी-अपनी आध्यात्मिक क्षमता बढ़ा सकेंगे और अपना रास्ता चुनने में सहायता मिलेगी।

जीन्स और वातावरण

वातावरण का प्रभाव जीन पर कैसे पड़ता है, यह इस उदाहरण से स्पष्ट होता है। सामान्यतया बन्दर साँप से डरते हैं, उन्हें यह डर इसलिए समा जाता है क्योंकि वे किसी दूसरे प्राणी को साँप से डरते देखते हैं, लेकिन उन्हें फूलों से डरना नहीं सिखाया जा सकता क्योंकि वे किसी अन्य को फूलों से डरते हुए नहीं देखते, उन्हें फूलों से डरना सिखाने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ेगी। तात्पर्य यह है कि साँप से डरना आनुवंशिक नहीं है। इसी कारण से बहुत से बच्चे जो अनजाने में ही साँप से खेलने लगते हैं। बड़े होने पर उनसे डरने लगते हैं। क्योंकि आसपास का वातावरण उन्हें साँप से डरना सिखाता है और डरने की विशेषता उनके जीन्स में पैदा हो जाती है। अतः वेंटर की यह नई खोज महत्त्वपूर्ण है कि जीन आसपास के वातावरण से प्रभावित होते हैं। वे अपरिवर्तनीय नहीं हैं, उन्हें प्रभावित किया जा सकता है।

शरीर शास्त्रीय दृष्टि से आदमी रसायनों से बनता बिगड़ता है। शरीर शास्त्रीय दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जितने आवेग, उतने ही रसायन। कर्मशास्त्र में इसे 'रस विपाक' कहा जाता है। अध्यवसाय से कर्म शरीर में एक स्पंदन होता है — स्पंदन से तरंग चलती है वह तैजस शरीर में आती है फिर स्थूल शरीर प्रभावित होता है। अन्तःस्नायी ग्रन्थियों का रसायन सीधा एक के साथ मिलता है और व्यक्ति उन रसायनों से प्रभावित होता है।

हमारे दो मस्तिष्क हैं।

(1) कंडिशंड

(2) सुपर माइंड।

एक है चेतन मन और दूसरा है अचेतन मन। मनोविज्ञान की भाषा में दो मस्तिष्क हैं — एक है एनीमल माइंड (Animal-Mind) व दूसरा है मानव-मस्तिष्क (Human-Mind)। ये दो-दो विधाएं हैं।

मनुष्य में जो एनीमल माइंड — पाशविक मस्तिष्क है, उसमें आदिकालीन संस्कार भरे पड़े हैं। उनमें क्रोध, घृणा, यौनवासना, ईर्ष्या — ये सारे संस्कार भरे हुए हैं। इन सारे आवेगों का उत्तरदायी है मनुष्य का पशु मस्तिष्क या एनीमल माइंड, आदिम मस्तिष्क। दूसरा मस्तिष्क, जो बाद में विकसित हुआ है, में उदात्त भावनाएं भरी हुई हैं।

चेतन मस्तिष्क स्थूल मन है, जो शरीर के साथ काम कर रहा है और यह बुरी भावनाओं का भंडार है। दूसरा है अचेतन मन जो शक्तियों का भंडार है। कर्मशास्त्र या अध्यात्म की भाषा में कहा जा सकता है — एक है विशुद्ध चेतना वाले मस्तिष्क की वह परत जो विशुद्ध चेतना का प्रतिनिधित्व करती है और एक है अशुद्ध चेतना की वह परत जो कषायी चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। हमारी चेतना दो रूपों में काम कर रही है। एक है कषायित चेतना का कार्य और दूसरा है कषायमुक्त चेतना का कार्य, निर्मल चेतना का कार्य। इन्हें हम जैन तत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली में कह सकते हैं — एक है क्षायोपशमिक मस्तिष्क और दूसरा है औदयिक मस्तिष्क। कंडिशंड माइंड को औदयिक मस्तिष्क कहा जा सकता है और सुपर माइंड को क्षायोपशमिक मस्तिष्क कहा जा सकता है। औदयिक मस्तिष्क कर्म के उदय के साथ चलता है, अनेक शतों से बंधा हुआ चलता है। यह चेतना कषाय से बंधी हुई है, कंडिशंड है। यह स्वतंत्र नहीं है। सुपर माइंड है निर्मल चेतना, क्षायोपशमिक चेतना। यह जागृत अवस्था है।

हमारे सामने दोनों स्थितियां हैं, दोनो मस्तिष्क हैं। एक है औदयिक भाव से बंधी हुई चेतना या मस्तिष्क और दूसरी है क्षायोपशमिक भाव से बंधी हुई चेतना या मस्तिष्क। आचार्य महाप्रज्ञ इसी विषय को विस्तार देते हुए कहते हैं कि —

कर्म की एक प्रकृति का नाम है, ज्ञानावरणीय कर्म। यह कर्म ज्ञान पर आवरण रूप रहता है। इसके व्यवहार की समानता मस्तिष्क के विकास से

स्थापित करते हुए महाप्रज्ञजी कहते हैं कि ज्ञानावरण के कारण ही मस्तिष्क विकसित नहीं हुआ है। अमनस्क जीवों (non-vergetta) में पृष्ठरज्जु और मस्तिष्क नहीं होते। समनस्क जीवों (vergetta) के पृष्ठरज्जु और मस्तिष्क होते हैं। फिर भी उनका विकास समान नहीं होता। ज्ञानावरण-विलय के तारतम्य के आधार पर वह तरतमता युक्त होता है।

गुण-सूत्र

स्थूल शरीर में 60-70 खरब कोशिकाएँ हैं, इन कोशिकाओं में होते हैं गुण सूत्र। प्रत्येक गुण सूत्र 10 हजार जीन्स से बनता है वे सारे संस्कार सूत्र हैं हमारे शरीर में 46 क्रोमोसोम होते हैं। वे जीन्स से बनते हैं। प्रत्येक जीन में साठ लाख आदेश लिखे हुए होते हैं। तब प्रश्न होता है कि क्या हमारी चेतना एक क्रोमोसोम और जीन में नहीं है ? एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच की तरतमता, असमानता का कारण प्राचीन भाषा में कर्म है। जीन की खोज ने सूक्ष्म कर्म शरीर को समझने में मदद की है। हमारा प्रत्येक सेल एक टिमटिमाता दीपक है और प्रत्येक कोशिका एक पावर हाउस है।

मानस शास्त्र के अनुसार आवेग छह है — भय, क्रोध, हर्ष, शोक, प्रेम और घृणा। सारे मानवीय आचरणों की व्याख्या आवेगों के आधार पर की जाती हैं। आवेग का प्रभाव हमारे स्नायु तन्त्र पर, पेशियों पर, रक्त पर और रक्त के प्रवाह पर, फेफड़ों पर, हृदय की गति पर, श्वास पर और ग्रंथियों पर होता है।

मोहनीय कर्म

आचार्य महाप्रज्ञ मोहनीय कर्म की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि इस दुनिया में क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसे प्रायः सब जानते हैं। किंतु जानते हुए भी अच्छाई की दिशा में गति नहीं हो पाती तथा बुराई का परिहार नहीं हो पाता। कर्म शास्त्रीय भाषा में इसका हेतु है मोह। आजकल व्यक्ति परिस्थिति को बहुत दोष देता है, पर परिस्थिति का प्रभाव भी वही होता है, जहां मोह है। जिसका मोह शांत है, उसे परिस्थिति कभी प्रभावित नहीं करती। स्थूलिभद्र ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास किया, पर स्थितियां उन्हें किंचित भी प्रभावित नहीं कर सकीं।

जब मोह शांत होता है, धृति और वीतरागता का विकास होता है। पौद्गलिक पदार्थ से मिलने वाले सुखों की एक निश्चित अवधि है। वीतरागता से मिलने वाला सुख प्रारंभ में कुछ कम सरस लग सकता है, पर जैसे-जैसे

समय बीतता है, रस बढ़ता जाता है। अतः हमें मोह विलय की साधना में अपने पुरुषार्थ का ज्यादा से ज्यादा नियोजन करना चाहिए।

आगमिक भाषा में कर्म की एक मुख्य प्रकृति है — मोहनीय कर्म। इसके चार आवेग माने हैं — क्रोध, मान, माया, और लोभ। प्रत्येक की चार अवस्थाएं हैं —

- तीव्रतम-अनन्तानुबन्धी
- तीव्रतर-अप्रत्याखानी
- मंद-प्रत्याखानी
- मंदतर-संज्वलन

आचार्य महाप्रज्ञ ने इसकी विस्तार में तुलना की है। जब ये चारों आवेग नष्ट हो जाते हैं, इनकी चारों अवस्थाएं क्षीण हो जाती हैं तब वीतरागता की स्थिति आती है। आवेगों के अभाव को जैन दर्शन में अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। मोह कर्म के शांत होने से मन पर, मन की शांति पर और स्वास्थ्य पर भी प्रभाव होता है। आज की मनोवैज्ञानिक खोजों ने विषय को बहुत उजागर किया है कि आवेगों के कारण कितने प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जैनाचार्यों को भी इसका ज्ञान था लेकिन मानवशास्त्रीय खोजों से चामत्कारिक प्रकाश पड़ता है। आज सत्तर-अस्सी प्रतिशत बीमारियां मानसिक आवेगों के कारण होती हैं। क्रोध, भय — ये बीमारी के उत्पादक हैं। ये आवेग कर्म बंध के कारण तो बनते ही हैं तथा शरीर के लिए भी लाभदायक नहीं हैं।

आवेग नियंत्रण

कर्म शास्त्र की भाषा में आवेग नियंत्रण की तीन पद्धतियां हैं — उपशमन, क्षयोपशम और क्षयीकरण। मनोविज्ञान की भाषा में उपशमन को दमन पद्धति कहा गया है। यह व्यक्ति को लक्ष्य तक नहीं पहुंचा पाती। गुणस्थानों के विवरण में भी उपशमन के लिए कहा गया है कि कषाय के दबे हुए भाव उभरते हैं तो वह सम्यक्ती से च्युत हो जाता है। क्षयोपशम को मनोविज्ञान की भाषा में उदात्तीकरण की पद्धति कहा गया है तथा क्षयीकरण में सभी आवेग समाप्त हो जाते हैं।

आज की चिकित्सा-पद्धति ने इतना विकास कर लिया है कि वह आपरेशन के द्वारा, या बिजली के झटके दे कर आवेगों को, विभिन्न आदतों को मिटाने में सक्षम हैं। काम वासना का आवेग, कषाय का आवेग, भय का

आवेग आदि आदि सभी आवेगों को समाप्त करने में आज का चिकित्सा विज्ञान सक्षम है लेकिन इसकी सीमा है। अध्यात्म-तत्त्व वेत्ताओं ने इसे आत्मिक क्रिया द्वारा सम्पन्न करने के साधन जाने हैं। जो व्यक्ति शरीर और आत्मा का भेद विज्ञान जान लेता है वह आवेगों को जीत लेता है क्योंकि कर्म-प्रकृतियां अपना विपाक प्राप्त कर क्षय हो जाती है।

परिवर्तनशीलता

इस विश्व में सब परिवर्तनशील है। भगवान महावीर ने कर्म-शास्त्र के विषय में कुछ ऐसी नई धारणाएं दी जो अन्यत्र दुर्लभ हैं या अप्राप्य हैं। उन्होंने कहा कि कर्म को बदला जा सकता है। वैज्ञानिकों में एक शताब्दी तक ये धारणाएँ चलती रही कि लोहा, तांबा, सोना, पारा — ये सारे मूल तत्त्व हैं, इनको एक दूसरे में बदला नहीं जा सकता है। किन्तु बाद की खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया कि ये सब मूल तत्त्व नहीं है। उनको एक दूसरे में बदला जा सकता है। वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि पारे के अणु का भार 200 होता है। उसे प्रोटॉन के द्वारा तोड़ा जाता है। प्रोटॉन का भार 1 है। प्रोटॉन से विस्फोटित करने पर वह प्रोटॉन पारे में घुल मिल गया और पारे का भार 201 हो गया। 201 होते ही अल्फा का कण निकल जाता है। उसका भार 4 है। शेष 197 भार का अणु रह गया। सोने के अणु का भार 197 और पारे के अणु का भार भी 197। पारा सोना हो गया। बात प्रामाणिक हो गई कि पारे से सोना बनता है। इस परिवर्तनशीलता को स्वीकार करने से कर्मों की संक्रमण क्रिया समझ में आ जाती है।

चिकित्सा

कर्मशास्त्र मन की गहनतम अवस्थाओं के अध्ययन का शास्त्र है। कर्मशास्त्र को छोड़कर हम मानवशास्त्र को ठीक व्याख्यायित नहीं कर सकते। अभी-अभी रूस के शरीर शास्त्रीय वैज्ञानिकों ने एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है — मनुष्य के शरीर में जब विद्युत का संतुलन ठीक नहीं होता तब बीमारियां पैदा होती हैं। वे विद्युत की धारा के संतुलन के द्वारा, चिकित्सा का प्रतिपादन करते हैं। कर्मशास्त्र के अनुसार, रोग का कारण केवल बाह्य नहीं है आंतरिक भी है। इस प्रश्न की खोज में कर्मशास्त्र की दिशा का अनावरण हुआ है।

ग्रन्थिविज्ञान

जैन आगम में वर्णित आत्मा की वृत्तियों से संगति बिठाते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हमारे शरीर की ग्रन्थियों के स्राव जो बनते हैं वे शरीर

शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह हारमोन शरीर और मन को जितना प्रभावित करते हैं उतना प्रभावित हृदय, यकृत, स्नायु-संस्थान आदि नहीं करते। इस खोज ने मानस विश्लेषण की ओर शारीरिक विकास की विधा को दूर तक पहुँचा दिया है। हम जानते हैं कि थायराइड, शरीर के समूचे विकास को प्रभावित करती है यदि इसका स्राव ठीक नहीं है तो आदमी बीना रह जाता है शरीर कमजोर रह जाता है। भय और क्रोध की अवस्था में थायराइड का स्राव (थायरोक्सिन) समुचित नहीं होता, इसके फलस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। पीनियल ग्रन्थि अगर ठीक काम नहीं करती तो प्रतिभा का विकास नहीं होता एड्रिनल ग्रन्थि का स्राव समुचित नहीं होता है तो भय, चिन्ता, क्रोध उत्पन्न होता है। गोनाड ग्रन्थि से यौन उत्तेजना तथा शारीरिक यौन चिन्ह उत्पन्न होते हैं। कर्म शास्त्र की भाषा में जिसे हम वेद कहते हैं उससे इस ग्रन्थि का सम्बन्ध है।

ग्रन्थियों के ये स्राव मन के विश्लेषण में उपयोगी हैं — किन्तु ये अन्तिम कारण नहीं है, अन्तिम कारण है कर्म।

संक्रमण का संसार

हमारे शरीर से तदाकार प्रतिकृतियाँ निकलती रहती हैं और आकाश में फैल जाती हैं। चिन्तन की भाषा की, ये प्रतिकृतियाँ हजारों-हजारों वर्षों तक उसी रूप में बनी रहती हैं। जैन दृष्टि से ज्ञानी व्यक्ति उन आवृत्तियों को जान सकता है और हमें अतीत की यात्रा में ले जा सकता है। कर्म के परमाणु आत्मा से छूटने के बाद आकाश में फैल जाते हैं, उस वर्ग के कर्म समूह से सम्बन्ध स्थापित कर अतीत को जाना जा सकता है। काकेसस रुस का एक भाग है। वहाँ के वैज्ञानिकों ने बताया कि काकेसस में जो भूकम्प आते हैं उनका सम्बन्ध सौर-विकिरणों से है। यह सारा संसार संक्रमण का संसार है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में संक्रान्त होता है। इसी प्रकार कर्मयुक्त आत्मा किसी न किसी प्रभाव क्षेत्र में रहती है।

दो प्रकार की वृत्तियाँ

मानवशास्त्र में दो प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख है।

- अन्तर्वृत्ति
- बहिर्वृत्ति।

काम शक्ति जब आगे बढ़ती है तो व्यक्ति बहिर्वृत्ति हो जाता है। जब काम शक्ति की प्रत्यावृत्ति होती है, तो व्यक्ति भीतर में सिमट जाता है। हम इसी कर्म शास्त्रिय भाषा का प्रयोग करें कि अविरति जब तीव्र होती है तब पुरुष बाहर की ओर भागता है जब अविरति कम होती है तब व्यक्ति अपने भीतर सिमटना शुरू हो जाता है तो आकाक्षाएं कम होती हैं, चंचलता कम हो जाती है। उपर्युक्त विवरण में आचार्य महाप्रज्ञ ने कर्मशास्त्र और मनोविज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के द्वार खोले हैं तथा इस अध्ययन को विकसित करने हेतु मार्ग को प्रशस्त किया है।

आकर्षण-विकर्षण

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा या जीव जब कोई प्रवृत्ति करता है तो वह सूक्ष्म कर्म पदार्थ को आकर्षित करता है तथा कर्म उदय अवस्था में आत्मा से विकर्षित होते हुए मुक्त हो जाते हैं। आकर्षण और विकर्षण का यह गुण, कर्म-वर्गणा में होता है। वह संभवतः सूक्ष्म पुद्गल के स्निग्ध तथा रुक्ष स्पर्श की ही देन है, क्योंकि शीत और उष्ण स्पर्श से यह गुण उत्पन्न होना संभव नहीं। सूक्ष्म पुद्गल में स्निग्ध, रुक्ष, उष्ण और शीत, ये चार स्पर्श ही होते हैं। कर्मों के आकर्षण और विकर्षण के गुण का वैज्ञानिक विवेचन करें तो स्निग्ध को धनात्मक और रुक्ष को ऋणात्मक कहा जा सकता है। यह भी संभव है कि यह गुण गुरुत्वाकर्षण के गुण के समान हो लेकिन गुरुत्वाकर्षण का गुण स्थूल पदार्थों में ही माना गया है। यह आश्चर्य की बात है कि न्यूटन के समय में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त पदार्थों में परस्पर केवल आकर्षण की ही बात कहता था लेकिन आज यह सिद्धान्त संशोधित हो चुका है और यह माना जाता है कि, गुरुत्वाकर्षण का बल, निहारिकाओं में तथा अन्य पदार्थों में आकर्षण और विकर्षण दोनों का कारण है। जैनों ने कर्म में, स्निग्ध तथा रुक्ष दोनों परस्पर विरोधी गुणों की उपस्थिति मानी है जिससे आकर्षण-विकर्षण दोनों गुणों को बता कर, सूक्ष्म कर्मों के व्यवहार को जानने में स्पष्टता प्रकट की है।

नया चिन्तन

भगवती सूत्र में जीव और पुद्गल के बंध को समझाते हुए बताया है कि जीव और पुद्गल परस्पर बद्ध, स्पृष्ट, अवगाढ़, स्नेह-प्रतिबद्ध और एक घटक के रूप में रहते हैं। इसमें स्नेह-प्रतिबद्ध का अर्थ, स्नेह होना माने तो स्नेह दूर से भी रह सकता है। आवश्यकता यह है कि वे एक घटक के रूप में हो। इस पक्ष की पुष्टि हमें भौतिक विज्ञान के प्रायिकता सिद्धान्त से मिलती

है। जहाँ यह माना जाता है कि परमाणु में न्यूक्लियस से आकर्षित उसके इलेक्ट्रॉन्स कक्षा (ऑर्बिटस) में तो रहते ही हैं लेकिन यह भी संभव है कि कोई इलेक्ट्रॉन अत्यन्त दूर रहता हुआ भी न्यूक्लियस से आकर्षित रह सकता है। ऐसा इलेक्ट्रॉन उसी परमाणु का भाग कहलाता है। यही संभावना कर्म वर्गणाओं पर लागू हो सकती है क्योंकि यह सूक्ष्म जगत का नियम है।

जैन आगम में वर्णन है कि तेरहवें गुणस्थान के जीवों के प्रथम समय कर्म बंध और स्पर्श का है और दूसरा समय में कर्म का वेदन होता है तथा कर्म-क्षय होता है अर्थात् जघन्यतम स्थिति और अनुभाग के ये अघाति कर्म के पुद्गल आकर्षित होते हैं और विकर्षित हो जाते हैं। यह तभी संभव है कि जब कर्म तन्त्रों को गति न करनी पड़े और जहाँ हैं वहीं आकर्षण-विकर्षण हो जाए। ऐसी कर्म वर्गणाएं जघन्य वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाली होनी चाहिए। अतः हमें कर्म की इस परिभाषा को महत्त्व देना चाहिए कि कर्म आकृष्ट हो जाते हैं — यह मूल बात है। आचारांग सूत्र में कहा है —

1. जो कर्म को आकर्षित करते हैं, वे उसका बन्ध करते हैं।
2. जो कर्म का बन्ध करते हैं, वे उसे आकर्षित करते हैं।
3. जो कर्म को आकर्षित नहीं करते, वे उसका बंध नहीं करते।
4. जो कर्म का बंध नहीं करते, वे उसे आकर्षित नहीं करते।

आत्मा से एकाकार होने का अभिप्राय यह नहीं मानना चाहिए कि वे चिपकते ही हैं। लम्बी स्थिति और गहरे अनुभाग वाले, कर्मों के लिए आत्मा से आकर निकटता से संसर्ग करे, यह मानना उचित लगता है। लेकिन सभी कर्म प्रगाढ़, अवगाढ़ करे, इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। कर्म-बन्ध का इस दृष्टि से सोचना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रारम्भ है, न कि अन्त।

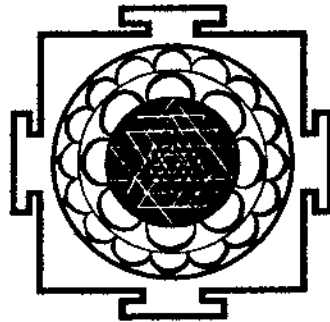
सूक्ष्म तंत्र

सूक्ष्म पुद्गल इस लोक में खचाखच भरे हैं। विज्ञान के अनुसार आकाश का कोई भाग खाली नहीं है। गुरुत्वाकर्षण बल तथा फोटॉन्स आकाश के दूरतम छोर पर भी उपलब्ध है। सूक्ष्म का नेटवर्क अत्यन्त रहस्यमय है, आज विज्ञान गणित के माध्यम से सूक्ष्मतम और बृहदतम, दोनों को जानने के प्रयास में लगा है। अतीत की प्रत्येक घटना, सूक्ष्म तन्त्र में परिवर्तित होकर, आकाश में लम्बे समय तक ठहर सकती है। इसलिए प्रयास जारी है कि हम अतीत को जान सकें। इस आकाश में इतने सूक्ष्म सिस्टम्स (Systems) हर जगह उपलब्ध हैं कि हमारे किसी सोच के लिए जैसा ही पदार्थ चाहिए, तुरन्त

उपलब्ध हैं। हम ऐसा कुछ सोच भी नहीं सकते जिसका तन्त्र उपलब्ध न हो। यह कहा जा सकता है कि ऐसी कोई नई घटना संभव नहीं, जो अतीत में कभी न हुई हो। जैन साहित्य में जातिस्मरण ज्ञान आदि का वर्णन है जो अतीत का ज्ञान कराता है— पूर्व भव को दिखा देता है। ऐसा लगता है कि सूक्ष्म के व्यवहार के संबंध में जैन साहित्य में सर्वाधिक सूचनाएं उपलब्ध हैं जो आधुनिक विज्ञान के परिणामों से सुसंगत प्रतीत होती है। यह जैन दर्शन की विलक्षण देन है कि कर्म सिद्धान्त पर अत्यधिक साहित्य लिखा गया है।

श्रुत घटना

एक श्रुत घटना के अनुसार, दक्षिण भारत के किसी जैन विद्वान ने, जर्मन विद्वान डॉ. आल्सडोर्फ को सूचित किया कि जैन आगम का लुप्त बारहवां आगम दृष्टिवाद उपलब्ध हो गया है। इस पर आल्सडोर्फ को सुखद आश्चर्य हुआ और उसके कुछ पृष्ठ मंगवाए। उनको अध्ययन करने के बाद उन्होंने, सूचित किया कि यह तो कर्म-ग्रन्थ के पृष्ठ हैं। भूल यह हुई थी कि इस कर्मग्रन्थ के इतने अधिक वाल्यूमस् थे कि भारतीय विद्वान ने सोचा कि इतना विशाल साहित्य केवल दृष्टिवाद का ही हो सकता है। इससे ज्ञात होता है कि कर्म-मीमांसा पर बहुत लिखा गया है फिर भी इसके भौतिक पक्ष की कम विवेचना हुई है। आज विज्ञान के सहारे सूक्ष्म पदार्थ को समझा जा सकता है तथा कर्म वर्गणाओं को विस्तार से जाना जा सकता है।



कर्मवाद की गणितीय मीमांसा

आचार्य महाप्रज्ञ ने कर्मवाद को समझने के लिए मनोविज्ञान और गणित दोनों को आवश्यक बताया है। वे लिखते हैं कि 'मनोविज्ञान के अतिरिक्त कर्मवाद, गणित की जटिलताओं से बहुत गुंफित है।' पिछले अध्याय में हमने मनोविज्ञान के बारे में पढ़ा है, अब हम गणित संबंधी चर्चा करेंगे। कर्म सूक्ष्म पदार्थ है। सूक्ष्म पदार्थ तरंगित हैं और तरंग की गणित में उच्च गणितीय समीकरणों का उपयोग होता है जो साधारण पाठक के अध्ययन के लिए कठिन है। इस दृष्टि से हम यहां केवल विषय प्रवेश करेंगे।

जैन गणित के क्षेत्र में प्रो. एल.सी.जैन, जबलपुर का कार्य उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय है। जैन कर्मवाद की गणितीय मीमांसा में लिखा है कि —

- (i) किसी भी गणितीय प्रणाली में अध्ययन के पूर्व उसमें प्रविष्ट प्रतीकों की जानकारी आवश्यक है। गौम्मटसारादि ग्रन्थों की टीकाओं में इस प्रणाली के सार संक्षेप रूप अध्ययन हेतु, साथ ही उन्हें स्मरण रखने हेतु प्रतीकमय सामग्री निर्मित की गई, जो पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। तिलोयपण्णत्ती जैसे ग्रन्थों में कुछ प्रतीकबद्ध सामग्री है और कुछ धवला टीका ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती है। किंतु विशाल पैमाने पर यह सामग्री अंक संदृष्टि तथा रेखा संदृष्टि रूप में केशववर्णी की कर्णाटकी टीका में दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार लब्धिसार, क्षपणसार की टीका में संभवतः माधवचंद्र त्रैविद्य तथा ज्ञानभूषण के शिष्य नेमीचन्द्र (16 वीं सदी) द्वारा जो संदृष्टि प्रयोग हुआ वह भी विलक्षण है और विशेषकर धर्म के मर्म को कर्म के गणित द्वारा प्रकट करता प्रतीत होता है।
- (ii) प्रतीकों के ज्ञान के बाद, अविभागी प्रतिच्छेद का वर्णन किया है। द्रव्य के गुणों में गुणांश का विकल्प ही अविभागी प्रतिच्छेद है। कर्म सिद्धान्त के अध्ययन में परमाणुओं के स्निग्ध रुक्ष स्पर्श के गुणांशों का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि आकर्षण-विकर्षण का कारण ये ही स्पर्श है।

जब पुद्गल आत्मा से बंध कर कर्म बनते हैं तो आकर्षित होते हैं और उदय अवस्था में जब आत्मा से छूटते हैं तो विकर्षित होते हैं। जैन साहित्य में कर्म आठ प्रकार के बताए हैं। वे हैं — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय। यहां यह जानना आवश्यक है कि कर्मों के बंध का कारण मुख्यतः मोहनीय तथा नामकर्म है शेष कर्म नहीं। अतः गणित में मोह कर्म तथा नामकर्म के गुणांशों का विशेष महत्व है।

द्रव्य के गुणांशों के संबंध में हमने पूर्व में चर्चा की है कि द्रव्य का कोई गुणांश अगर शून्य की ओर जाएगा तो दूसरा कोई गुण अनन्त को प्राप्त कर लेगा। अतः कर्मों के स्पर्श, रस, गंध और वर्ण के अविभागी प्रतिच्छेद (गुणांश) स्निग्ध, रुक्ष के मूल अविभागी प्रतिच्छेदों से संबंध बनाए रखते हैं। कर्मों के संक्रमण, उद्वर्तन और अपवर्तन इसी आधार से होते हैं।

प्रोफेसर जैन ने प्रतीक गुणांश के बाद संदृष्टियों के संबंध में लिखा है कि संदृष्टियों और उसके अर्थ (प्रमाण) आधार पर डाटाबेस बनता है। इस हेतु बताया गया है कि —

(i) विवक्षित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जो प्रमाण आदि हैं, उसे अर्थ कहते हैं।

(ii) अर्थ की संदृष्टि अथवा सहनानी को संदृष्टि कहते हैं।

अतः अंक, अर्थ एवं आकार रूप, संदृष्टि को सावधानी से समझ लेने पर कर्म सिद्धान्त की गणितीय प्रणाली को भली भांति समझा जा सकता है और उसके प्रायोगिक रूप पर अनुसंधान किया जा सकता है। आधुनिक जैव भौतिकी से कर्म-सिद्धान्त के गणितीय नमूनों की तुलना कर नई विधाएं और आयाम खोले जा सकते हैं जो मुख्यतः न्यूरोनल (नाड़ी संबंधी) मस्तिष्क की रचना और क्षमता से संबंधित है। ज्ञान प्रणाली पर आधारित सूचना तंत्र जीव और पुद्गल के कर्म संबंध को मस्तिष्कादि के कृत्रिम नमूने बनाकर अध्ययन किया जा सकता है।

कर्म के मुख्य दो भेद हैं — द्रव्य कर्म और भाव कर्म। पुद्गल द्रव्य का पिण्ड द्रव्य कर्म है और उससे जो आत्मीय शक्ति प्रभावित होती है वह भाव कर्म है। गणित में द्रव्य कर्म के डाटा काम आते हैं। कर्म एक्शन (action) का रूप लेकर अपनी अवस्था को प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग, स्थिति के प्रमाणों से अनेक समीकरण देता है। इसके अतिरिक्त औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपमिक औदयिक एवं पारिणामिक भावों का भी अर्थ ग्रहण होता है। एक दूसरे की

अपेक्षा न्यूनाधिक का ज्ञान अल्प बहुत्व कहलाता है। अल्प बहुत्व (Comparability) समीकरणों के परिणाम, गणितीय विद्या से प्राप्त होते हैं।

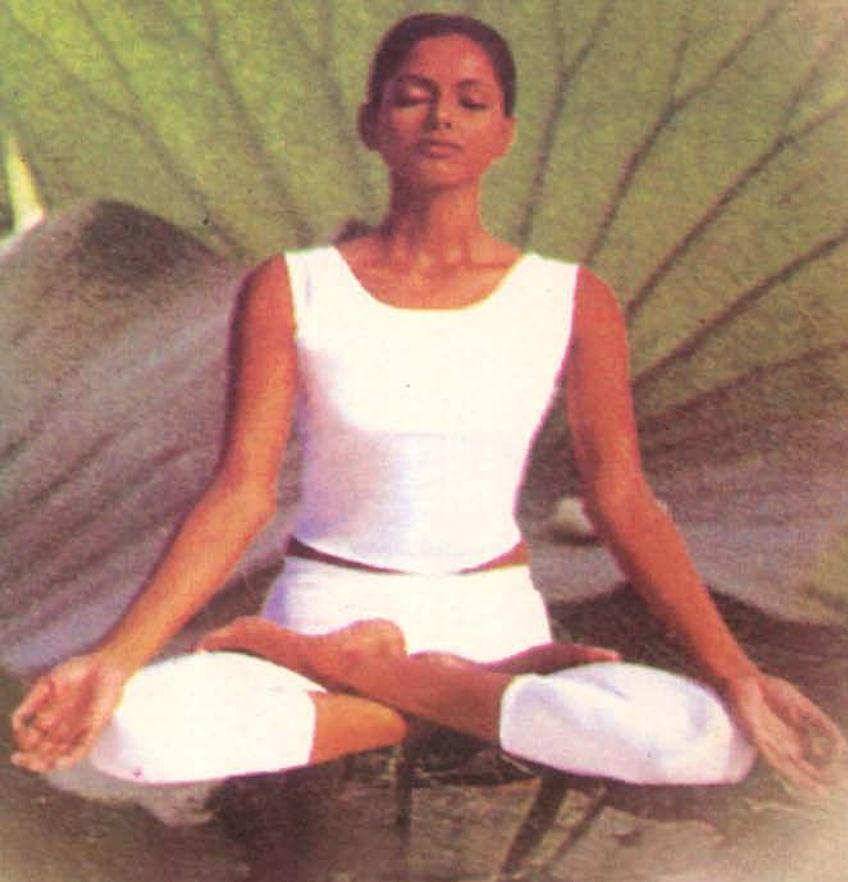
डॉ. जैन के अनुसार जब अर्थ संदृष्टिमय रूप लेगी तब बीजगणित (Algebra) का प्रवेश हो जाएगा और भी गहराई में जाने हेतु आधुनिक रूप में विकसित मेट्रिक्स यांत्रिकी, नवीन बीजगणित, स्थलविज्ञान (Topology) तथा अन्य विश्लेषक फलनों का उपयोग करना होगा। कारण यह कि समयप्रबद्ध में विभिन्न प्रकृतिमय कर्म परमाणु की प्रवेश संख्या, उनकी स्थिति तथा अनुभाग अंश न केवल योग, कषायादी के अनुसार परिणमित होते हैं, किंतु इनकी मन्दता होने पर विशुद्धि के अनुसार भी परिणमित होने लगते हैं और ये घटनाएं सूक्ष्म जगत में होने के कारण, साथ ही समूह रूप में होने के कारण, सहज होते हुए भी कुटुम्ब विश्लेषण के विषय बन जाती है।

कर्म के गणितीय अध्ययन से भूत-भविष्य का फलाफल ज्ञात हो सकेगा। जीन्स के द्वारा रोगों का पता लग जाता है, उसी प्रकार यह गहरी संभावना है कि कर्म का गणितीय अध्ययन उपयोगी होगा। लेकिन इस अध्ययन को भी विकसित होना है जिसमें गणितज्ञ ही योगदान कर सकेंगे।

□□□



प्रेक्षाध्यान और रोग निदान



प्रेक्षाध्यान और रोग निदान

प्रेक्षा	246
1. प्रेक्षा की मूल अवधारणा	246
2. प्रेक्षा के तीन आयाम	247
3. ध्वनि चिकित्सा	248
4. रंग चिकित्सा	248
मनोविज्ञान	253
1. मनोवृत्तियों का परिष्कार	253
2. आदत कैसे बदलें	254
3. चित्त और मन	254
4. भावुकता व (इमोशन)	256
5. भय	256
6. क्रोध और हिंसा आदिम मस्तिष्क की देन	257
7. संकल्प-शक्ति—भावात्मक प्रयोग	258
8. नए मस्तिष्क का निर्माण	260
9. नए मस्तिष्क की संरचना	261
शरीर के शक्ति केन्द्र	
(i) सामान्य विवरण	268
(ii) ग्रन्थियां	275
(iii) नाड़ी तंत्र	284
शरीर रोगों में प्रेक्षा के प्रयोग	290
हृदय रोग	290
उच्च रक्तचाप—हाइपरटेंशन	293
दमा	294
उदर रोग	296
मानसिक अवसाद (डिप्रेशन)	299

जीव विज्ञान	300
संतुलन का अभिप्राय	300
आधार और प्रक्रिया	302
महाप्राण ध्वनि	303
कायोत्सर्ग	303
आसन	304
दो दिशाएं	304

प्रेक्षाध्यान और रोग निदान (थैरेपी)

साधना के क्षेत्र में आचार्य महाप्रज्ञ के दो महत्त्वपूर्ण अवदान हैं।

- (1) प्रेक्षाध्यान
- (2) जीवन विज्ञान

ये दोनों प्रवृत्तियाँ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों पर ही आधारित नहीं हैं बल्कि विज्ञान, शरीर शास्त्र और मनोविज्ञान संबंधी अधुनातन खोजों पर आश्रित हैं। इस कारण ये प्रवृत्तियाँ जहाँ आध्यात्मिक चेतना के विकास में सहयोगी हैं वहाँ प्रेक्षाध्यान शरीर चिकित्सा में तथा जीवन विज्ञान मूल्यपरक शिक्षा में लोकप्रिय हो रही हैं। व्यक्तित्व का निर्माण, तनाव-विसर्जन, स्वास्थ्य और जीवन दर्शन जैसे महत्त्वपूर्ण विषय प्रेक्षाध्यान के मूल स्रोत हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने विज्ञान की प्रमुख विधाओं का गहनता से अध्ययन किया है। उसी के आधार पर दर्शन और शरीर विज्ञान की पूरकता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं कि दर्शन से ज्ञात होता है कि स्थूल दिखाई देने वाला शरीर, सूक्ष्म शरीर के कारण है और शरीर विज्ञान, शरीर के सूक्ष्म कोशों की सूचना देता है। दर्शन और विज्ञान दोनों सूक्ष्म को खोज रहे हैं अतः इनकी पूरकता में संदेह नहीं किया जा सकता। जैन दर्शन में आत्मा को चेतना रूप कहा है और चेतना का देह-विस्तार होता है। इस दृष्टि से शरीर के शक्ति केन्द्र, नाड़ी तंत्र आदि का ज्ञान आवश्यक है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अध्यात्म और विज्ञान को निकट लाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। इस अध्याय में हम प्रेक्षा, मनोविज्ञान के सिद्धान्त और थैरेपी में हुए अनुप्रयोगों का अध्ययन करेंगे। उसके मुख्य बिंदु निम्न प्रकार हैं -

- (i) प्रेक्षा
- (ii) मनोविज्ञान
- (iii) शरीर के शक्ति केन्द्र - ग्रन्थियाँ तथा नाड़ी तंत्र
- (iv) शरीर रोगों की चिकित्सा में प्रेक्षा के प्रयोग

प्रेक्षा

1. प्रेक्षा की मूल अवधारणा

प्रेक्षाध्यान का प्रेरक सूत्र है — सत्य की खोज स्वयं करो।

प्रेक्षाध्यान का मूल मंत्र है — आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो।

प्रेक्षा शब्द का अर्थ है — प्र + ईक्ष (धातु) अर्थात् गहराई से देखना।

प्रेक्षाध्यान का अभिप्राय है — स्वयं को इतनी गहराई से देखो कि अपने श्वास, शरीर, प्राण और संस्कारों के स्पन्दनों को देख सको।

प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है — चित्त की निर्मलता, आधि, व्याधि और उपाधि से परे समाधि की अवस्था का वरण।

प्रेक्षाध्यान का परिणाम है — चैतन्यकेन्द्रों का जागृत होना।

प्रयोग

इस सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि में आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षा के विभिन्न प्रयोग निर्धारित किए हैं, वे आठ प्रकार के हैं।

- (i) कायोत्सर्ग
- (ii) अंतर्यात्रा
- (iii) श्वासप्रेक्षा
- (iv) शरीरप्रेक्षा
- (v) चैतन्यप्रेक्षा
- (vi) लेश्याध्यान
- (vii) भावना
- (viii) अनुप्रेक्षा

इनमें प्रारम्भिक प्रयोग शरीर प्रेक्षा का है। मेडिकल साइंस बताता है कि हमारे शरीर में सत्तर प्रतिशत पानी है। शरीर पानी का ही पुतला है और समुद्र से कम नहीं है। इतना बड़ा समुद्र और इतनी ऊर्मियां जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। शरीरप्रेक्षा का अर्थ है कि उन ऊर्मियों को देखना, उन प्रकंपनों को देखना जो हमारी प्रवृत्तियों का संचालन कर रही है। यह जैविक रासायनिक प्रक्रिया है, जहां विभिन्न प्रकार के रसायन (Chemicals) पैदा

होते हैं उनसे विभिन्न प्रकार के परिणाम घटित होते हैं — शरीरप्रेक्षा में इन्हें देखना है। उनसे शरीर के दोष विसर्जित होते हैं।

परिभाषा

आचार्य महाप्रज्ञ ने ध्यान साधना के लिए शरीर को भी उतना ही मूल्य दिया है जितना आत्मा को। शरीर को साधे बिना, आत्मा सधती नहीं। इसी दृष्टि से उन्होंने शरीर, श्वास, प्राण, मन, भाव, कर्म और चेतना के संयुक्त नाम को प्रेक्षाध्यान कहा है और इन सातों सूत्रों पर विचार और प्रयोग किए हैं।

2. प्रेक्षा के तीन आयाम हैं।

- (i) योग
- (ii) ध्यान
- (iii) थेरेपी

योग और ध्यान का परस्पर संबंध अति प्राचीन काल से रहा है। योग आध्यात्मिक चिकित्सा है। उससे मनुष्य के स्वभाव को बदला जा सकता है। वर्तमान में जो बड़ी बीमारी है वह न शारीरिक है, न मानसिक है, बल्कि वह भावनात्मक है। इसकी चिकित्सा प्रेक्षाध्यान से संभव है। महाप्रज्ञजी का यह विश्वास इस तथ्य पर आधारित है कि प्रेक्षा से क्रोध, अहंकार, वासना (आवेग और संवेग) को नियंत्रित किया जा सकता है। प्रेक्षा पद्धति से मस्तिष्क जागृत होता है, ग्रंथि तन्त्र के स्रावों में परिवर्तन होता है और श्रेष्ठ भावों का निर्माण होता है जो कि रोग को मिटाने में सहायक होता है। इस धारणा की पुष्टि में आचार्य महाप्रज्ञ ने अनेक शिविरों का आयोजन किया है और अनेक व्यक्तियों पर प्रेक्षा के प्रयोग किए हैं। उससे उनका यह विचार पुष्ट हुआ है कि वैज्ञानिक शोध से प्रेक्षाध्यान अधिक उपयोगी हो सकता है।

वैज्ञानिक शोध

यह महत्वपूर्ण अवधारणा है कि ध्यान/योग मस्तिष्क की विभिन्न क्रियाओं में तथा अन्तः स्रावी ग्रंथियों के स्राव में परिवर्तन कर अपना असर रोगों पर करता है। कुछ वैज्ञानिक अनुसंधानों में यह पाया गया है कि ध्यान ऑक्सीजन की आवश्यकता कम करता है, खून में लेक्टेट कम करता है तथा हृदय के कार्यभार को 25 प्रतिशत तक कम कर सकता है। कई वैज्ञानिक शोध पत्रों में इस तरह के ध्यान तथा यौगिक क्रियाओं में यह पाया

है कि ई.ई.जी. में अल्फा तरंगें बढ़ जाती हैं जो कि मानसिक शांति की द्योतक हैं।

उपर्युक्त आधार से प्रेक्षाध्यान के प्रयोग थेरेपी में किए गए हैं। थेरेपी में प्रेक्षा का प्रयोग नया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा है “हृदय रोग, हाइपरटेंशन, उच्च रक्तचाप, डिप्रेशन, उदर विकार आदि रोगों को मिटाने में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। काम मनोरोगों के निवारण में प्रेक्षाध्यान अचूक प्रयोग है। कैंसर की बीमारी का कोई ईलाज तो अभी हमारे पास नहीं है पर इस भयंकर बीमारी में होने वाले कष्ट को कम किया जा सकता है।”

3. ध्वनि चिकित्सा

प्रेक्षाध्यान में ध्वनि चिकित्सा के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि शक्ति जागरण का एक प्रमुख उपाय है — मंत्र विद्या। इस विद्या के द्वारा सुप्त केन्द्रों को जागृत किया जा सकता है। मंत्र के साथ लयबद्ध श्वास का प्रयोग और शुद्ध लयबद्ध उच्चारण दोनों चाहिए। श्वास और उच्चारण के साथ भावना का योग भी बहुत जरूरी है। भावना के योग के साथ एकात्मकता सघती है, मंत्र भी चैतन्य हो जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने ध्वनि चिकित्सा के माध्यम से कुछ रोगों के निदान बताए हैं।

1. हृदय रोग में ‘लं’ मंत्राक्षर का जप उपयोगी है।
2. लीवर के रोग में “हूँ” मंत्राक्षर का जप उपयोगी है।

अ-हं-म् का उच्चारण

उनका मानना है कि ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मंत्र नहीं बन सकता। प्रेक्षाध्यान में साधक सर्वप्रथम अर्हम् की नौ बार मंगल भावना कर उस नाद से अपने चारों ओर एक रक्षा कवच बनाता है। ध्वनि की शास्त्रीय भीमांसा में कहा गया है कि अ-हं-म् के उच्चारण से क्रमशः विद्युत केन्द्र (कंठ थायराइड ग्रन्थि) मस्तिष्क का अगला भाग — शांति केन्द्र और उदान प्राण-केन्द्र सक्रिय होते हैं जिसका प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। भारतीय चिकित्सा पद्धति में भी ऐसे प्रयोग हैं जिनमें कम से कम चीरफाड़ करनी पड़ती है।

4. रंग चिकित्सा — कलर थेरेपी

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार व्यक्तित्व की व्याख्या का महत्त्वपूर्ण सूत्र है — लेश्या, भावधारा और आभामण्डल। जो बाहर से दिखाई दे रहा है,

उसकी भीतर के साथ संवादिता है अथवा नहीं, उसकी कसौटी है लेश्या। लेश्या आत्म परिणामों की संवाहिका है। लेश्या का पुद्गल पदार्थ रंग प्रधान होता है। लेश्याएं छह हैं। उनके रंग कृष्ण, नील, कापोत, तेजस, पद्म और शुक्ल हैं। प्रथम तीन अप्रशस्त है, अंतिम तीन प्रशस्त हैं। ये रंग व्यक्ति के शरीर और मन की स्थिति के सूक्ष्म हस्ताक्षर हैं। इनका शरीर के चारों ओर आवागमन बना रहता है इसे आभामण्डल कहा जाता है।

रंग चिकित्सा का संबंध मुख्यतः आभामण्डल से है। आभामण्डल एक तरह का रंगीन औरा है जो व्यक्ति के चारों ओर देखा जाता है लेकिन उसका घनीभूत रूप मस्तक के पीछे चारों ओर होता है।

आभामण्डल द्वारा रोगों की सूचना

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार हमारे शरीर के चारों ओर रश्मियों का एक वलय होता है। वह सूक्ष्म तरंगों के जाल जैसा या रुई के सूक्ष्म तंतुओं के व्यूह जैसा होता है। ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं — चारों ओर फैला हुआ होता है। यह आभामण्डल है। जैसी भावधारा होती है, वैसी ही उसकी संरचना हो जाती है। वह एकरूप नहीं होता, बदलता रहता है। निर्मलता, मलिनता, संकोच और विकोच — ये सारी अवस्थाएं उसमें घटित होती रहती हैं। इसके माध्यम से चेतना के परिवर्तन जाने जा सकते हैं, शरीर और मन के स्तर पर घटित होने वाली घटनाएं जानी जा सकती हैं। घटनाएं पहले सूक्ष्म शरीर में घटित होती हैं। वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि शरीर में जो रोग होगा उसकी पूर्व सूचना तीन महीने पहले मिल जाएगी। तीन महीने से पहले उनका प्रतिबिम्ब आभामण्डल पर हो जाता है। इसके अध्ययन से भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पता लगाया जा सकता है। रोग और मृत्यु एवं स्वास्थ्य और जीवन आदि अनेक तथ्यों के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है।

जीवन प्रसंग

आभामण्डल विशेषज्ञ श्री सुंदर राजन ने आचार्य महाप्रज्ञ के आभामण्डल का विश्लेषण करते हुए कहा — 'महाराज, ऐसा आभामण्डल किसी विरल व्यक्ति का होता है। सारे रंग पवित्र, प्रकाशमय और शक्तिशाली है। आपका आभामण्डल चमकते हुए पीले, नीले और हरे रंग से आकीर्ण है। प्रज्ञा, अन्तर्दृष्टि, और अतीन्द्रिय चेतना से सम्पन्न होने की सूचना देता है, आपका आभामण्डल। सबसे दुर्लभ और विशिष्ट बात यह है कि इस आभामण्डल में एक भी अशुद्ध और विकृत रंग नहीं है।'

आचार्य महाप्रज्ञ ने आभामण्डल के बारे में लिखा है कि 'मनुष्य हमारे सामने प्रत्यक्ष है। उसका स्वभाव प्रत्यक्ष नहीं है। आकृति को जानना सरल काम है। प्रकृति को समझना बहुत कठिन है। इस कठिनाई का पार कैसे पाया जा सकता है? पार पाने के उपाय किए गए पर कोई भी उपाय पूर्ण रूपेण विश्वास देने वाला नहीं है। सम्बन्ध और सहवास के बाद पता चले उसका अर्थ कम हो जाता है। ज्यादा अर्थवान बात यह है कि सम्बन्ध से पहले समझने का सूत्र हाथ लग जाए। यदि आभामण्डल को पढ़ने की विद्या का विकास हो जाए तो परोक्ष को साक्षात् करना सहज हो जाए।'

एटम एण्ड ओरा

एक अमेरिकन महिला डॉ. जे.सी. ट्रस्ट ने हाई प्रीक्वेंसी के कैमरों से फोटो लिए हैं। वह अपनी पुस्तक 'एटम एण्ड ओरा' में लिखती हैं — मैंने साफ-सुथरे और सुंदर शरीर वाले व्यक्तियों के फोटो लिए, किंतु उनका आभामण्डल बहुत मैला, धिनौना, भद्दा देखते ही घृणा उत्पन्न करने वाला था। यह उनके मनोभावों का प्रतीक था। ऐसे लोगों के फोटो लिए जो दिखने में भद्दे, मैले-कुचले थे किंतु उनका आभामण्डल उज्ज्वल, निर्मल और पवित्र था। आज के आदमी का विश्वास बाहरी शुद्धि में अधिक है, भीतरी शुद्धि में कम है।

भावधारा और आभामण्डल

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के आधार पर कहा गया है कि भावधारा (लेश्या) से आभामण्डल बदलता है और लेश्या ध्यान के द्वारा आभामण्डल को बदलने से भावधारा भी बदल जाती है। आचार्य महाप्रज्ञ की अवधारणा है कि मस्तिष्क का एक हिस्सा, 'लिम्बिक सिस्टम' वह बिंदु है जहां आत्मा और शरीर का मिलन होता है। इस दृष्टि से लेश्याध्यान या चमकते हुए रंगों का ध्यान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावधारा जैसी होती है, उसी के अनुरूप मानसिक चिंतन तथा शारीरिक मुद्राएं और इंगित तथा अंग संचालन होता है। क्रोध की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति में क्रोध के अवतरण की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। क्षमा की मुद्रा में रहने वाले व्यक्ति के लिए क्षमा की चेतना में जाना सहज हो जाता है। इस भूमिका में लेश्या-ध्यान की उपयोगिता बढ़ जाती है। लेश्या जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है और इसका विस्तार से वर्णन हमें जैन आगम साहित्य में उपलब्ध होता है। वहां द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का अलग से वर्णन हुआ है।

लेश्या का सिद्धान्त

रंग और आभामण्डल के बारे में उनका कहना है कि रंगों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। रंग व्यक्ति की मनःस्थिति को प्रभावित ही नहीं, परिवर्तित भी कर देते हैं। देखा गया है कि लाल रंग से गुस्सा बढ़ता है, नीले रंग से सुस्ती बढ़ती है। यह रंगों का प्रभाव अर्थात् लेश्या का सिद्धान्त जीवन से जुड़ा है। हमारे जीवन की सफलता या असफलता में यह बहुत बड़ा कारक है। हम इसे समझकर अपने जीवन को सफलता की दिशा में ले जा सकते हैं। इस सारे सिद्धान्त को जैन दर्शन की भाषा में लेश्या का सिद्धान्त कहा गया है। लेश्या हमारे जीवन से जुड़ी सच्चाई है। भाव की विशुद्धि से लेश्या विशुद्ध हो जाती है। आभामण्डल बदल जाता है। आभामण्डल से उस बीमारी का भी पता चल सकता है जो होने वाली है। अच्छा भाव है तो आभामण्डल अच्छा होगा और बुरा भाव है तो आभामण्डल विकृत हो जाएगा। बड़ी बीमारियों से बचना है तो भाव केन्द्र शुद्ध करना होगा।

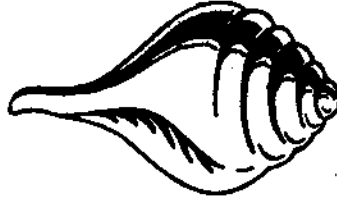
श्वास और-रंग का संबंध

प्रेक्षाध्यान में आभामण्डल के ध्यान के बहुत प्रयोग हैं। लेश्या ध्यान पूर्ण रूप से इसके लिए ही है कि किस तरह से हम विभिन्न रंगों का ध्यान कर अपना आभामण्डल शुद्ध कर सकते हैं। हमारे रंग श्वास के साथ जुड़े हैं। बाहर के जितने रंग हैं हमारे श्वास में भी रंग हैं। इन सभी पुद्गलों से आभामण्डल संबंधित हैं। प्रेक्षाध्यान में श्वास के साथ रंगों का ध्यान करके आभामण्डल शुद्ध किया जा सकता है और उन बीमारियों से बचाव किया जा सकता है जिसका आभास आभामण्डल से होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

वैज्ञानिकों ने रंगों का मानवीय प्रकृति से सम्बन्ध बताया है। लाल, नारंगी रंगों से मानव की प्रकृति में उष्मा बढ़ती है। प्रकाश के वर्णपट्ट में भी लाल रंग, अधिक उष्मा वाला माना गया है। नीला रंग शीतल होता है आदि अतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण आज कलर थेरेपी से सामान्यतः सहमत है। कुछ वैज्ञानिकों ने अल्ट्रा वायलेट किरणों के द्वारा मनुष्य के चारों ओर बने आभामण्डल को देखा है, उसका रंग पहचानकर, बीमारियों की भविष्यवाणी भी की है जो सही साबित हुई है। आभामण्डल केवल प्राणियों का ही नहीं होता अपितु पौधों के आसपास भी सूक्ष्म विद्युतीय गतिविधियां देखी गई हैं। अतः आभामण्डल की अवधारणा वैज्ञानिक क्षेत्र में मान्य होती जा रही है।

प्रेक्षाध्यान की पद्धति में लेश्या का प्रायोगिक रूप लेश्या ध्यान के रूप में उपलब्ध है। यह ध्यान मानसिक और भावात्मक समस्या सुलझाने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक समस्या को भी सुलझाने के लिए भी कम मूल्यवान नहीं है। कई संस्थानों में कलर थैरेपी भी इलाज का एक माध्यम बन गया है जो यह साबित करता है कि रंगों का जीवन में बहुत महत्त्व है तथा बीमारियों के उपचार में विशेष रंगों का प्रयोग असर कर सकता है। सफेद रंग के चिन्तन से शांति तथा लाल रंग का चिन्तन क्रोध पैदा कर सकता है। इसके अतिरिक्त सभी अलग रंग अपना महत्त्व रखते हैं। यही कलर थैरेपी का सिद्धान्त है और प्रयोग है। विभिन्न चैतन्य केन्द्रों पर विभिन्न रंगों के साथ प्रेक्षा के जो प्रयोग विकसित हुए हैं वे सर्वथा नए हैं अतः लेश्या ध्यान आचार्य महाप्रज्ञ का मौलिक अवदान है।



मनोविज्ञान

विज्ञान की दो शाखाएं हैं। एक चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) और दूसरा मनोविज्ञान (Psychology)। मेडीकल साइंस के लोगों ने सारी बीमारियों का आधार कीटाणु और विषाणु बताया है किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने बताया है कि इन से भी बड़ा कारण है — मानसिक विकृतियां, मनोबल की कमी। जिसका मनोबल कमजोर होता है, वह व्यक्ति रोग से आक्रान्त हो जाता है।

जैन मनोविज्ञान आत्मा, कर्म और नो-कर्म की त्रिपुटीमूलक है। आचार्य महाप्रज्ञ ने आधुनिक मनोविज्ञान और जैन दर्शन की मनोवैज्ञानिक धारणाओं में समानता प्रदर्शित करते हुए अनेक प्रकरण प्रस्तुत किए हैं, वे पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं।

1. मनोवृत्तियां का परिष्कार

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य में कुछ मौलिक मनोवृत्तियां होती हैं। भूख, प्यास, काम, लड़ना आदि चौदह मौलिक मनोवृत्तियां बतलाई हैं। जैन दर्शन की भाषा में कहें तो मनुष्य में कर्म का संस्कार होता है। हम बन्धे हुए हैं। मनोविज्ञान की भाषा में हम मौलिक मनोवृत्तियों से बंधे हुए हैं और दर्शन की भाषा में हम कर्म-संस्कार से बन्धे हुए हैं।

बुराइयां छोड़ी जा सकती हैं

आचार्य महाप्रज्ञ ने कर्म संक्रमण की नई परिभाषा देते हुए उल्लेख किया है कि कर्म-संस्कारों को बदला जा सकता है। मनोविज्ञान का भी सिद्धान्त है कि मौलिक मनोवृत्तियों का परिष्कार किया जा सकता है। अगर बदलने की और परिष्कार करने की बात नहीं होती तो आदमी जैसा है, वैसा ही रहता, कोई परिवर्तन नहीं आता। भूख एक मौलिक मनोवृत्ति है। भूख कर्मशास्त्रीय भाषा में वेदनीय कर्म का उदय है। एक आदमी जो एक दिन भूखा नहीं रह सकता वह लम्बी तपस्या कर लेता है। यह परिवर्तन का परिणाम है। इसी प्रकार इन्द्रिय जगत में रागात्मक भाव से रहने वाला व्यक्ति, वैराग्य को उत्पन्न कर सकता है। अतः बुराइयां छोड़ी जा सकती हैं। लेखक की दृष्टि में कर्म संक्रमण के द्वारा व्यक्ति के लिए अपनी मूलों को सुधारने का

निरंतर अवसर बना रहता है। व्यक्ति के आत्म-विकास का पथ कभी अवरुद्ध नहीं होता।

2. आदत कैसे बदलें ?

मनोविज्ञान में आज व्यावहारिक मनोविज्ञान का अध्ययन हो रहा है। व्यवहार के आधार पर मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन हो रहा है, वृत्तियों का अध्ययन हो रहा है। लगता है मनुष्य ने समग्रता की दिशा को पकड़ा है। आचार्य महाप्रज्ञ का कहना है कि हमने प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में भी इस मूल बात को पकड़ा है कि बच्चे की प्रवृत्ति को बदलना है तो हमें वृत्ति पर ध्यान देना होगा। जब तक पिट्यूटरी और थायराइड ग्रन्थि (ग्लैंड) को जागृत नहीं किया जाता तब तक हजार बार कहने पर भी, हजार प्रयत्न करने पर भी बच्चे को नहीं बदला जा सकता। सीधा उपाय एक ही है, बच्चे की आदतों को बदलना है तो दर्शन-केन्द्र पर ध्यान का अभ्यास कराओ। प्रवृत्तियाँ अपने आप बदल जायेंगी। क्रोध, अहंकार, अनुशासनहीनता की समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। दर्शन केन्द्र, दोनों भृकुटियों के बीच अवस्थित है।

3. चित्त और मन

(i) फ्रायड का मत

पुरुष अनेक चित्त वाला है। मन तो एक ही है। चित्त की वृत्तियों के कारण और अनेक चित्त के कारण मन भी अनेक जैसा प्रतिभासित होने लग जाता है। अनेक हैं, हमारे चित्त। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने ठीक कहा था कि मनुष्य का मन एक हिमखण्ड जैसा होता है। हिमखण्ड का बहुत सारा भाग समुद्र में छिपा होता है। केवल थोड़ा सा ऊपर का सिरा दिखाई देता है। जितना दिखाई देता है हिमखण्ड, उतना ही नहीं है। बहुत बड़ा है। दिखने वाला छोटा और न दिखने वाला बहुत बड़ा। ज्ञात छोटा, अज्ञात बड़ा।

(ii) जुंग का मत

एक अन्य मनोवैज्ञानिक जुंग ने मन की तुलना एक महासागर से की है। मन एक महासागर है। उसमें ज्ञात मन केवल एक द्वीप जैसा है। अज्ञात मन महासागर जैसा और ज्ञात मन महासागर में होने वाले द्वीप जैसा, एक छोटे टापू जैसा है। हम लोग अपने

सारे व्यवहारों की, आचरणों की, व्याख्या ज्ञात मन के माध्यम से करना चाहते हैं। यह कभी संभव नहीं होगा केवल ज्ञात मन के द्वारा जो व्याख्या की जाएगी, वह अधूरी होगी, मिथ्या होगी। जब ज्ञात और अज्ञात दोनों मनों की समष्टि करेंगे तो सम्पूर्ण व्याख्या होगी, अज्ञात मन के लिए फ्रायड ने 'डेप्ट साइकोलॉजी' की व्याख्या की। 'डेप्ट साइकोलॉजी' में केवल ज्ञात मन की व्याख्या नहीं होती, अज्ञात मन की व्याख्या होती है। प्रत्येक व्यवहार के लिए अज्ञात मन की व्याख्या होती है कि मनुष्य का व्यवहार अज्ञात से ही हो रहा है। ज्ञात मन के द्वारा यह ऐसा व्यवहार नहीं हो रहा है।

चित्त और मन की भिन्नता

आज के मनोविज्ञान ने जो अवचेतन मन की व्याख्या की, वह व्याख्या भारतीय दर्शनों ने कर्मवाद के आधार पर की। सूक्ष्म चेतना और चित्त के आधार पर की। मनोविज्ञान में मन और चित्त — दोनों में भेद नहीं किया गया किन्तु जैन दर्शन में बहुत स्पष्ट भेद किया गया है कि मन भिन्न है और चित्त भिन्न है। मन अचेतन है और चित्त चेतन है। मन ऊपर का हिस्सा है जो चित्त का स्पर्श पाकर चेतना जैसा प्रतीत होता है। चित्त हमारी भीतर की सारी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। अज्ञात मन, अवचेतन मन को चित्त कहा जा सकता है और ज्ञात मन को मन कहा जा सकता है। चेतन मन में जितनी शक्ति हैं, उससे अनंतगुनी शक्ति है अवचेतन मन में। चेतन मन चालाक हैं, अवचेतन मन भोला है, पर है अनन्त शक्ति का भंडार। यह काम करना है, यह नहीं करना है, चेतन मन आपकी बात सुन लेगा, परन्तु करेगा वही जो पहले जंचा हुआ है। अवचेतन मन ऐसा नहीं है। अवचेतन मन आप जो कहेंगे और यदि उसने उस बात को पकड़ लिया तो वही करेगा जो आपने कहा है। जैसे चेतन मन और अवचेतन मन का अन्तर है, वैसे ही स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर की शक्ति में अन्तर है। स्थूल शरीर की शक्ति एक पैसा है तो सूक्ष्म शरीर की शक्ति निन्यानवे पैसे हैं। कितना बड़ा अन्तर है ? सूक्ष्म शरीर को जागृत करने का अर्थ है — विद्युत भंडार का निर्माण करना। किंतु हमें चलना होगा इसी स्थूल शरीर से। यह हमारी शक्तियों को प्रकट करने का पहला साधन है। साधना की दृष्टि से इस शरीर का मूल्य है।

4. भाव (इमोशन)

इमोशन बड़ी समस्या है। वह नेगेटिव हो तो एकांत आग्रह बन जाता है। इसलिए आवश्यकता है कि सबसे पहले इमोशन पर कन्ट्रोल करना चाहिए। इसका शिक्षण आवश्यक है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हमने इसका कारण खोजा है। मस्तिष्क का दायां हेमिस्फियर जागृत हो जाए तो बहुत सारे झगड़े समाप्त हो सकते हैं। इसे बुद्धि से नहीं सुलझाया जा सकता है। ध्यान के प्रयोग से, सिंपेथेटिक एवं पैरासिंपेथेटिक नाड़ी तंत्र के संतुलन से इसे सुलझाया जा सकता है। शरीर का अपना एक नियम है। अभी मेडिकल साइंस प्राण तक नहीं पहुंचा है। इसका कन्सेप्ट (Concept) स्पष्ट नहीं है। विद्यार्थियों को छोटी उम्र में ही यदि प्रशिक्षण दिया जाए तो इस समस्या से निपटा जा सकता है। मेडिकल साइंस के अनुसार साधारणतः सीधे हाथ से काम करने वाले व्यक्ति में बायां हेमिस्फियर (Left Hemisphere) प्रमुख होता है। लेकिन अवचेतन प्रतिक्रियाएं दायां हेमिस्फियर से नियंत्रित होती हैं। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार क्रोध और अहंकार (Ego) से बचने के लिए फ्रंटल लोब का जो हमारा इमोशनल एरिया है उस पर लम्बे समय तक ध्यान करना बहुत जरूरी है। उससे नेगेटिव भाव बदलते हैं। पोजीटिव भाव बढ़ते हैं। मस्तिष्क का एक भाग लिम्बिक सिस्टम है। हाइपोथेलेमस पर ध्यान करने से हायर कोन्सेन्स के स्पन्दन उभरते हैं। इसलिए हाइपोथेलेमस पर सफेद रंग का ध्यान करने से क्रोध का आवेग क्षीण हो जाता है।

5. भय

मनोविज्ञान की दृष्टि से संवेगात्मक व्यवहार और संवेगात्मक अनुभव ये दोनों हाइपोथेलेमस से पैदा होते हैं। ये दोनों इमोशन हैं। हमारे शरीर में ऐसे केन्द्र हैं जहां से नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का संचालन होता है। संवेग का संचालन शरीर से होता है। सारे संवेग हाइपोथेलेमस से पैदा होते हैं। भय का यही स्थान है।

कर्म शास्त्रीय कारण है कि मूर्च्छा है, मोह है इसलिए भय पैदा होता है। मोह की अनेक प्रकृतियों में एक प्रकृति है — भय। मोह के कारण ही मनुष्य यथार्थ को नहीं समझ सकता। सच्चाई को न समझ सकने के कारण वह जाने अनजाने भय की स्थिति में चला जाता है। उसे लगता है कि यदि शरीर छूट गया तो सब कुछ छूट गया। शरीर चला गया तो सब कुछ चला गया। उसका आदि दर्शन है शरीर, मध्य दर्शन है शरीर, अन्त दर्शन है शरीर।

शरीर के अतिरिक्त उसका कोई दर्शन नहीं है। शरीर के प्रति इतनी प्रगाढ़ आस्था होती है तब भय पैदा होना स्वाभाविक है। भय का एक संवेग है। मनोविज्ञान की भाषा में पलायन एक प्रवृत्ति है और उसका संवेग है भय। जिस समय भय का संवेग जागृत होता है उस समय एड्रीनल बहुत सक्रिय हो जाती है। अधिक शक्ति चाहिए। एड्रीनल का स्राव अतिरिक्त नहीं होता है तो शक्ति नहीं होती। भय की स्थिति में एड्रीनल का स्राव बढ़ता है।

6. क्रोध और हिंसा आदिम मस्तिष्क की देन

स्थानांग सूत्र में क्रोध का वर्णन आया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसका मनोविज्ञान से तालमेल करते हुए लिखा है कि स्थानांग सूत्र में क्रोध दो प्रकार का बताया है — आत्म-प्रतिष्ठित, पर-प्रतिष्ठित

इन सूत्रों में सूत्रकार ने एक मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया है। एक समस्या दीर्घकाल से उपस्थित होती रही है कि क्रोध का सम्बन्ध मनुष्य के अपने मस्तिष्क से ही है या बाह्य परिस्थितियों से भी है। वर्तमान के वैज्ञानिक भी इस शोध में लगे हुए हैं। इन्होंने मस्तिष्क के वे बिन्दु खोज निकाले हैं, जहाँ क्रोध का जन्म होता है। डा. जोस.एम. आर. डेलगाडो ने अपने परीक्षणों द्वारा दूर शान्त बैठे बन्दरों में विद्युत धारा से उन विशेष बिन्दुओं को छूकर लड़वा दिया। यह विद्युत धारा के द्वारा मस्तिष्क के विशेष बिन्दु की उत्तेजना से उत्पन्न क्रोध है। इसी प्रकार अन्य बाह्य निमित्तों से भी मस्तिष्क का क्रोध बिन्दु उत्तेजित होता है और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यह पर-प्रतिष्ठित क्रोध है। आत्म-प्रतिष्ठित क्रोध अपने ही आन्तरिक निमित्तों से उत्पन्न होता है।

क्रोध चतुः प्रतिष्ठित होता है

1. आत्म-प्रतिष्ठित (स्व-विषयक) जो अपने ही निमित्त से उत्पन्न होता है।
2. पर-प्रतिष्ठित (पर-विषयक) जो दूसरे के निमित्त से उत्पन्न होता है।
3. तदुभय प्रतिष्ठित-जो स्व और पर दोनों के निमित्त से उत्पन्न होता है।
4. अप्रतिष्ठित — जो केवल मोहनीय के उदय से उत्पन्न होता है, आक्रोश आदि बाह्य कारणों से उत्पन्न नहीं होता।

क्रोध की उत्पत्ति के निमित्तों के विषय में वर्तमान मनोविज्ञान की जानकारी जितनी आकर्षक है, उतनी ही ज्ञानवर्धक भी है। कुछ प्रयोगों का विवरण इस प्रकार है -

व्यक्ति जो कुछ भी करता है, वह चेतन अथवा अवचेतन मस्तिष्क के निर्देश पर ही होता है। साधारणतः हम जब भी मस्तिष्क की बात करते हैं हमारा तात्पर्य चेतन मस्तिष्क से ही होता है, क्रोध, और हिंसा के बीज इस चेतन मस्तिष्क से नीचे कहीं और गहरे हुआ करते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि चेतन मस्तिष्क-सैरेब्रल कोरटेक्स तो मस्तिष्क के सबसे ऊपर की परत है जो मनुष्य के विकास की अभी हाल की घटना है। इसके बहुत नीचे 'आदिम मस्तिष्क' है - हिंसा और क्रोध की जन्मभूमि।

वैज्ञानिक प्रयोग

वैज्ञानिक डेलगाडो ने परीक्षण में पाया कि सामने एक बड़े से पिंजड़े में एक बंदर बैठा केला खा रहा है और आप बिजली का बटन दबाते हैं- बंदर केला छोड़ कर पिंजड़े की सलाखों पर झपट पड़ता है। दांत किटकिटा रहा है। हाँ हिंसक हो गया है। यह प्रयोग डेलगाडो ने मस्तिष्क के उस विशेष बिन्दु को विद्युत धारा द्वारा उत्तेजित करके किया है। यही क्यों, उनके सांड वाले प्रयोग ने तो कमाल ही कर दिया - क्रोधित सांड उनकी ओर झपटा और उन तक पहुँचने से पहले ही शान्त होकर चला गया। उन्होंने विद्युत से सांड का क्रोध शान्त कर दिया।

पर आदमी जानवर से कुछ भिन्न होता है। हम तभी हिंसक होते हैं, जब हम हिंसक होना चाहते हैं क्योंकि साधारण स्थितियों में ही हम अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखते हैं। पर कुछ लोगों का यह नियंत्रण काफी कमजोर होता है। प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री डा. इर्विन तथा डा. मार्क के अनुसार ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क के अग्रिम हिस्से में कुछ विशेष घटता रहता है।

7. संकल्प-शक्ति - भावात्मक प्रयोग

भावना का प्रयोग और संकल्प-शक्ति के विकास का प्रयोग ये दो हमारी चेतना के रूपान्तरण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण प्रयोग हैं।

आटोजेनिक चिकित्सा पद्धति

संकल्प-शक्ति के विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है सुझाव का (Suggestion) या स्वतः सुझाव (Auto Suggestion) का जो बहुत महत्त्वपूर्ण

प्रक्रिया है। पश्चिम के लोगों ने एक चिकित्सा प्रणाली का विकास किया है— आटोजेनिक चिकित्सा पद्धति। आटोजेनिक चिकित्सा पद्धति में स्वतः प्रभाव डालने वाली बात होती है। वे कल्पना करते हैं और कल्पना के सहारे वैसा अनुभव करते हैं। यह आटोजेनिक प्रणाली, इसे योग की भाषा में भावात्मक प्रयोग कहा जा सकता है। भावना हमारी चेतना को और वातावरण को बदलती है। यह ठीक भावना का प्रयोग है — आटोजेनिक चिकित्सा पद्धति। इस पद्धति के द्वारा रोगी अपने आप अपने को स्वस्थ करता है।

जानवरों पर प्रयोग

आज का युग वैज्ञानिक युग है। प्रत्येक बात पर शोध और अनुसंधान हो रहा है। अब बदलने की बात असम्भव नहीं रही है। मस्तिष्क के वे केन्द्र खोज लिए गए हैं जिन्हें स्टिम्युलेट, उत्तेजित करने से प्राणी के स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। दो बिल्लियाँ हैं। एक के सिर पर इलेक्ट्रोड लगाकर उसके भूख के केन्द्र को शान्त कर दिया गया है। दोनों के सामने भोजन लाया गया। एक बिल्ली तत्काल उसे खाने लग गई और दूसरी बिल्ली शान्त बैठी रही। इसी प्रकार बन्दर पर भी सफल प्रयोग किया गया। आहार, भय, नींद, वासना, उत्तेजना इनके उत्पत्ति केन्द्र विद्युत के झटके देकर शान्त कर दिए जाते हैं। विज्ञान ने इन केन्द्रों को खोज निकाला है। चूहे और बिल्ली का जन्मजात विरोध है। चूहा बिल्ली से डरता है और बिल्ली चूहे को देखते ही उस पर झपटती हैं। दोनों के सिर पर इलेक्ट्रोड लगा दिए गए। अब न चूहा बिल्ली से डरता है और न बिल्ली चूहे पर झपटती है। चूहा बिल्ली की गोद में खेलता है। बिल्ली उसे अपने बच्चों की भाँति प्यार करती है। यह व्यवहार का परिवर्तन कैसे हुआ ? इन सब प्रयोगों के आधार पर माना जा सकता है कि आदमी कि आदतें बदल सकती है। उसका व्यवहार और आचार बदल सकता है हमारी प्राण-विद्युत और जैविक-विद्युत हमारे आचार व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। यदि इस विद्युत की धारा को बदला जा सके तो भावना में परिवर्तन आ जाता है।

तनाव का मूल कारण — ग्रन्थियों का स्राव

तनाव का मूल कारण है भावना। शरीरशास्त्र की भाषा में जो एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स हैं, उनके स्राव हमारे व्यवहार और आचरण को ज्यादा प्रभावित करते हैं। आचरण को प्रभावित करती है पिट्यूटरी और एड्रीनल ग्लैण्ड। सबसे ज्यादा हमें प्रभावित करने वाली तीन ग्रन्थियाँ हैं। एक पिट्यूटरी और दो एड्रीनल। जितना भय, जितनी वृत्तियाँ, अहंकार, लोभ उत्तेजना सारे आवेग

और आवेश पैदा होते हैं, एड्रीनल ग्लैण्ड के द्वारा। काम-वासना पैदा होती है, गोनाड ग्लैण्ड के द्वारा यानि नाभि के आस-पास। यहां हमारी सारी वृत्तियां जन्म लेती हैं और उन पर कन्ट्रोल करने वाला है — मास्टर ग्लैण्ड। पिट्यूटरी का संबंध जुडा है, पीनियल ग्लैण्ड और हाइपोथेलेमस से। सिर का फ्रन्टल लाब सारा नियंत्रण कर रहा है और सारी अभिव्यक्तियां, जो वृत्तियों की हो रही हैं वह इसके आस-पास हो रही हैं। यह नियंत्रण की बात वैज्ञानिक स्तर पर आज का प्रमुख चिन्तक या विद्यार्थी ही समझ सकता है।

8. नए मस्तिष्क का निर्माण

विकास की प्रक्रिया निरन्तर गतिमान है। हर युग में मनुष्य ने कल्पना की — विकास हो, आदमी अधिक अच्छा बने। वर्तमान दशकों में वैज्ञानिक जगत में भी विकास की प्रक्रिया का चिन्तन चला है। उसी का प्रतीक साहित्य है डाप्लर का 'थर्ड वेव' एवं काप्लर का 'ताओ फिजिक्स'। ये पुस्तकें इस ओर इंगित करती हैं कि कुछ नया होना चाहिए। किन्तु अभी जो मस्तिष्क काम कर रहा है, उसके रहते हुए नए विश्व और नए समाज के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती। मनोविज्ञान की भाषा में हमारा मस्तिष्क कण्डीशन्ड माइन्ड है, प्रतिबद्ध मस्तिष्क है। वहाँ कुछ बनी-बनाई मान्यताओं और धारणाओं की प्रतिबद्धता को नहीं तोड़ा जाता, तब तक नए समाज के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती।

एनिमल ब्रेन — आदिम मस्तिष्क

मस्तिष्क का एक हिस्सा है — एनिमल ब्रेन। यह आज बहुत सक्रिय है। यह पशु-मस्तिष्क है। इसे आदि मस्तिष्क भी कहा जा सकता है। जैन दृष्टि के अनुसार जीवों का मूल स्रोत है, वनस्पति जगत। हर जीव वनस्पति से निकलता है। यह अक्षय कोष है। इसे पारिभाषिक शब्दावली में 'निगोद' कहा जाता है। प्रत्येक प्राणी का, चाहे वह अल्प विकसित हो या पूर्ण, सब का आदि स्रोत है निगोद। प्रत्येक प्राणी में यह वनस्पति का मस्तिष्क विद्यमान है। जैन दर्शन की भाषा में इसे 'ओध संज्ञा' कहा जाता है। हयूमन मनोविज्ञान इसे 'क्लेक्टिव माइन्ड' कहता है। दो प्रकार के माइन्ड है। एक है पर्सनल माइन्ड और दूसरा है कलेक्टिव माइन्ड। ओध संज्ञा प्राणी मात्र में मिलती है। वनस्पति से लेकर मनुष्य बन जाने तक यह संज्ञा बनी रहती है। यह पशु मस्तिष्क है। यह आज बहुत सक्रिय है। इसलिए समाज में अपराध, अन्याय, अत्याचार, आदि का बोलबाला है। नए समाज के निर्माण के लिए मस्तिष्क की दूसरी

परत को खोलना होगा। जीवन परिवर्तन की प्रक्रिया है ध्यान। परिवर्तन के लिए मस्तिष्क के नव निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता हैं। तभी नए आदमी का निर्माण संभव है।

9. नए मस्तिष्क की संरचना

मस्तिष्क विज्ञानियों ने मस्तिष्क की तीन परतें बतलाई हैं —

- लिंबिक सिस्टम
- रेप्टेलियन
- नियोकॉर्टेक्स

मनोविज्ञान की दृष्टि से जब-जब आदमी मस्तिष्क की रेप्टेलियन परत के प्रभाव में होता है, तब-तब अन्याय और अत्याचार करता है, अतिक्रमण करता है, आतंक फैलाता है। सारे अपराध इस रेप्टेलियन मस्तिष्क के प्रभाव काल में होते हैं। जैन दृष्टि से मोह कर्म के प्रभाव से होते हैं। गीता के अनुसार — काम और क्रोध, ये अपराध करा रहे हैं।

मस्तिष्क विद्या के अनुसार माना गया — यह परत लाखों वर्ष पुरानी है। सरीसृप जाति में इसका विकास हुआ था। वही परत आज तक मनुष्य के मस्तिष्क में है। आज के वैज्ञानिक यह नहीं मानते — सांप्रदायिक उन्माद मुल्ला-पंडितों के कारण होता है। अगर मस्तिष्क में यह परत न हो तो हजार प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं होगा।

नए मनुष्य की परिकल्पना का तात्पर्य है — मस्तिष्क की नई संरचना हो और मस्तिष्क का प्रभाव क्षेत्र हम दूसरी दिशा में ले जाएं। जो पाशविक मस्तिष्क (एनीमल ब्रेन) है, उसके प्रभाव को सीमित कर नियोकॉर्टेक्स जो हमारे मस्तिष्क की सबसे अंतिम परत है, के प्रभाव में ले जायें। इससे हमारी दिशा बदल जाएगी। वास्तव में नए मनुष्य का जन्म होगा, जो अनावश्यक हिंसा नहीं करेगा।

काम-वासना

शरीर शास्त्र और मनोविज्ञान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण मानवीय भावना का आवेग है काम-वासना। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस ज्वलंत किन्तु नाजुक विषय पर सार्थक टिप्पणी दी है। सामान्यतः यह समझा जाता है कि स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्पर्क में आने से कामवासना जागती हैं। यह एक कारण है। शरीर शास्त्र की दृष्टि में इसका सूक्ष्म कारण हैं — पीनियल और पिट्यूटरी ग्रन्थि

के स्राव का गोनाड्स पर स्रावित होना। जैन दर्शन के अनुसार इसका सूक्ष्म कारण हैं मोहनीय कर्म का उदय और उसमें भी सूक्ष्म कारण है भाव संस्थान की सक्रियता। शरीर शास्त्र और जैन दर्शन की मान्यता को एकीभूत करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ मानते हैं कि जहाँ पीनियल और पिट्यूटरी ग्रन्थि है, वही आज्ञाचक्र है जिसे तृतीय नेत्र भी कहा जाता है। इस स्थान पर ध्यान करने से पिट्यूटरी और पीनियल ग्रन्थि के स्राव बदल जाते हैं और गोनाड्स पर नहीं जा पाते। तब काम वासना अपने आप समाप्त हो जाती है।

शरीर शास्त्रीय मीमांसा

उपर्युक्त कथन की शरीर शास्त्रीय मीमांसा यह है कि ध्यान से पिट्यूटरी, पीनियल ग्रन्थि के स्राव बदल जाते हैं, कुछ सीमा तक सही हैं। वास्तव में पिट्यूटरी के सारे स्राव हाइपोथेलेमस से नियन्त्रित होते हैं और हाइपोथेलेमस का संबंध सीधा मस्तिष्क में पहुँचने वाले संकेत पर निर्भर करता है। अतः व्यक्ति ध्यान या अन्य साधनों से विचारों को नियंत्रित कर सकता है तो कामवासना के लिए होने वाले स्राव नियंत्रित हो सकते हैं। डर, क्षोभ आदि की स्थिति में यह देखा गया है कि कामवासना की भावना जाग्रत नहीं होती। इसका कारण है कि मस्तिष्क में अन्य विचारों के चलते हाइपोथेलेमस को संदेश नहीं पहुँच पाते अतः पिट्यूटरी से स्राव नहीं हो पाते। लेकिन यह एक अस्थायी प्रक्रिया है। ध्यान से स्थाई रूप से इन स्रावों को रोका जा सकता है अथवा नहीं, इसका ज्ञान विस्तृत अध्ययन से ही लग सकता है। लेकिन यह असंभव नहीं लगता क्योंकि स्रावों से नाड़ी तन्त्र उत्तेजित होता है और यह क्रिया काम वासना को और तीव्र करती है। चिकित्सा विज्ञान में यह स्थापित हो चुका है कि ध्यान व योग की क्रियाएं नाड़ी तन्त्र का शमन कर सकती हैं, बशर्ते व्यक्ति विचारों को स्थिर करने में सफल हो सके। अतः निश्चित ही यह शमन, काम वासना के वेग को रोक पायेगा।

वासना का शमन

काम वासना के शमन के लिए शरीर केन्द्रों पर ध्यान करने पर विशेष बल दिया है। इससे रागात्मक दृष्टि में भी परिवर्तन होता है जो महत्त्वपूर्ण है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि अनेक बार परिस्थिति और मनःस्थिति का भी निर्णय करने में कठिनाई होती है क्योंकि हमारी दृष्टि को सेराटोनिन रसायन प्रभावित करता है। जैन दर्शन की भाषा में दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय को इसका कारण माना जाता है। प्रसिद्ध मादक एल.एस.डी. (L.S.D.)

में सेराटोनिन रसायन रहता है जो हमारी चेतना को मूर्च्छित करता है। जैन दर्शन की भाषा में यह मूर्च्छा दर्शन मोहनीय कर्म है। इस मूर्च्छा का विघटन दर्शन मोहनीय चेतना के केन्द्रों पर ध्यान करने से होता है। इसके बाद दृष्टि बदल जाती है। हम समझते हैं कि कामवासना और स्नेह भाव-बंधन हैं, किन्तु दोनों से बड़ा बंधन है दृष्टि के प्रति राग।

शरीर शास्त्रीय दृष्टिकोण

शरीर शास्त्रीय भाषा में यह कहा जाता है कि सेरोटॉनिन रसायन प्रमुख कारण है, जो अन्य रसायन विशेषतः डोपामीन तथा नोर ऐड्रेनेलिन के साथ मस्तिष्क में भावनात्मक क्रियाएं, अर्थात् मानसिक स्थिति को नियंत्रित करता है। जितनी भी दवाइयां उदासी, अधीरता, उत्तेजना वगैरह को ठीक करने के लिए प्रयुक्त होती है, उनमें से अधिकतर दवाइयां एस. आर. आई. (Serotonin Reuptake Inhibitors) हैं और यह देखा गया है कि सेरोटॉनिन का नियंत्रण कई तरह के मानसिक विकारों को ठीक करता है। विशेषतः डिप्रेशन को। अतः निश्चित ही इसके नियमन से राग द्वेष के भावों में कमी आ सकती है। देखा गया है कि इन दवाओं के लम्बे समय के उपयोग के बाद व्यक्ति कई बातों के प्रति उदासीन होने लगते हैं। संभवतः राग/द्वेष की कमी/उद्वेग भी कम हो जाते हैं।

शरीर विज्ञान और काम.वासना

शरीर शास्त्र की दृष्टि से काम वासना की व्याख्या करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हमारा जो पीनियल ग्लेण्ड है उससे दो प्रकार के स्राव होते हैं — सेराटॉनिन और मेलाटॉनिन। ये दो हारमोन्स बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जो मेलाटॉनिन है वह काम पर नियन्त्रण करने वाला है। काम वासना को जगाने वाले हारमोन्स बाहर से आते हैं, पीनियल से आते हैं और उन पर नियन्त्रण करने वाला है — मेलाटॉनिन। वह तीन या चार बजे तक वृत्ति पर नियंत्रण रखने का काम करता है। चार बजे के बाद प्राण के प्रवाह को भरने लगता है। हम बाहर से, आकाश मण्डल से बहुत प्राण लेते हैं। जब तक मेलाटॉनिन अपना काम नहीं करता, प्राण को हम अपने भीतर ले नहीं सकते। चार बजे का समय है कि इस समय प्राण का प्रवाह मेलाटॉनिन के द्वारा पूरे शरीर में भरता है। आकाश मण्डल से आने वाले विकिरणों के अनुदान का यही समय होता है। अतः इस समय जो व्यक्ति उठता है वह प्राण से भरा हुआ अनुभव करता है।

काल-निमित्त

हमारी वृत्तियां निमित्तों के साथ व्यक्त होती हैं। क्षेत्र, काल, परिस्थितियां और वृत्तियां निमित्त बनती हैं। हम सूक्ष्मता से देखें एक वृत्ति प्रातः काल नहीं जागती, किन्तु वह सांयकाल जागती है। प्रत्येक वृत्ति के जागरण का अपना-अपना समय होता है। इसी आधार पर जैविक घड़ी के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया — कौनसा कार्य कब करना चाहिए ? यह काल का निमित्त है। आंतरिक शोधन का भी एक समय है। मेलाटॉनिन के स्राव का समय मन की चंचलता को कम करने का सबसे उचित समय है। जिस समय पीनियल ग्लैण्ड काम करे, वह समय आंतरिक परिष्कार के लिए सबसे उत्तम समय हैं। मेलाटॉनिन बाहरी क्रियाओं को निष्क्रिय कर आंतरिक क्रियाओं को उद्दीप्त करता है। विचार, मन, भाव और वृत्तियां ये ही तो हिंसा को बढ़ावा दे रही हैं। आचार्य महाप्रज्ञ का उपर्युक्त निष्कर्ष सही प्रतीत होता है। क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानव शरीर भी एक जैविक घड़ी (Biological Clock) की तरह चलता है (Circadian Cycle)। शरीर का तापमान सुबह 4-5 बजे से न्यूनतम तथा शाम 6 बजे अधिकतम तापमान रहता है। इसी प्रकार मेलाटॉनिन जो कि भावना के आवेग को, मन की चंचलता को बढ़ाता है, यदि सबसे कम स्राव के वक्त ध्यान किया जाय तो एकाग्रता सही रहेगी।

काम-शक्ति

काम-शक्ति के संबन्ध में वैज्ञानिक फ्रायड कहता है कि मनुष्य के जीवन में कामशक्ति आदि से अन्त तक रहती हैं। आदमी जीवन पर्यन्त कामैषणा में रत रहता है और येनकेन प्रकारेण काम सुख पाना चाहता है। इसलिए फ्रायड का यह दृढ़ कथन है कि काम-वासना का दमन नहीं होना चाहिए। फ्रायड के अनुसार काम-शक्ति और सृजनात्मक शक्ति दो नहीं हैं। आचार्य महाप्रज्ञ का कथन है कि फ्रायड के इस सिद्धान्त ने कुछ सचाई प्रकट की है तो कुछ भ्रान्तियां भी पैदा की हैं। इससे कामुकता और यौनाचार बढ़ा है। 'एडस' का रोग उसी का एक परिणाम है। इसका कारण है समलैंगिक व्यभिचार, अप्राकृतिक मैथुन। जब आदमी इच्छाओं का दास बन जाता है तो अमूल्य जीवन को नीरस बना देता है। इसलिए काम-शिक्षा आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक एडलर ने फ्रायड से विपरीत बात कही कि जो सेक्स प्लेजर आदमी में जीवन भर रहता है, वह मूल प्रेरणा नहीं है।

यौन शिक्षा

जीवन की मूल प्रेरणा है, शक्ति का विकास ! वैज्ञानिक हयूम ने इन दोनों मनोवैज्ञानिकों — फ्रायड और एडलर के कथन का प्रतिवाद किया। उसने कहा — सेक्स एनर्जी और शक्ति संघय — ये दोनों जीवन की मूल प्रेरणाएं नहीं हैं। जीवन की मूल प्रेरणा है — व्यक्तित्व का विकास! आचार्य महाप्रज्ञ ने व्यक्तित्व विकास के सूत्रों में यह आवश्यक माना है कि ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों पर संयम होना आवश्यक है। हम कर्मेन्द्रिय पर संयम तभी कर सकते हैं जब ज्ञानेन्द्रिय पर हमारा संयम सध जाता है। आज के वैज्ञानिकों ने और प्राचीन तन्त्राचार्यों ने इस विषय पर बहुत ऊहापोह प्रस्तुत किया है और महत्त्वपूर्ण रहस्य उद्घाटित किए हैं। स्वास्थ्य को केन्द्र में रख कर जीवन जीने के लिए आहार-संयम और काम-संयम की शिक्षा आवश्यक है। इसके लिए दिशा परिवर्तन की आवश्यकता है। परिवर्तन के लिए सिद्धान्त और प्रयोग दोनों का समन्वय महत्त्वपूर्ण है। आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में यौन शिक्षा देना हानिकारक नहीं लगता, बचाव की बात अधिक हो सकती है। यौन शिक्षा में साथ-साथ, यौन संयम की बात जोड़ दी जाय, तो हानियां कम होगी, बचाव अधिक होगा।

कृत्रिम गर्भाधान

आचार्य महाप्रज्ञ ने कृत्रिम गर्भाधान के बारे में बताया है कि स्थानांग सूत्र में उल्लेख है कि स्त्री, पुरुष से सहवास न करती हुई भी गर्भ को धारण करती है। वे पांच निम्न कारण हैं —

1. अनावृत तथा दुर्निषण्ण — पुरुष वीर्य से संसृष्ट स्थान को गूह्य प्रदेश से आक्रांत कर बैठी हुई स्त्री के योनि देश में शुक्र पुद्गलों का आकर्षण होने पर।
2. शुक्र पुद्गलों से संसृष्ट वस्त्र के योनि देश में अनुप्रविष्ट हो जाने पर।
3. पुत्रार्थिनी होकर स्वयं अपने ही हाथों से शुक्र पुद्गलों को योनि देश में अनुप्रविष्ट कर देने पर।
4. दूसरे के द्वारा शुक्र पुद्गलों के योनि देश में अनुप्रविष्ट किए जाने पर।
5. नदी तालाब आदि से स्नान करती हुई के योनि देश में शुक्र पुद्गलों के अनुप्रविष्ट हो जाने से।

प्रस्तुत सूत्र में पुरुष के सहवास के बिना भी गर्भधारण के पांच कारण का उल्लेख है। इन सबमें पुरुष के वीर्य पुद्गलों का स्त्री योनि में समाविष्ट होने से गर्भधारण होने की बात कही गई है। वीर्य पुद्गलों के बिना गर्भधारण का उल्लेख नहीं है। वर्तमान में कृत्रिम गर्भाधान की प्रणाली से इसकी तुलना हो सकती है। सांड या पाडे के वीर्य पुद्गलों को निकाल कर रासायनिक विधि से सुरक्षित रखा जाता है और आवश्यकतावश गाय या भैंस की योनि से उनके शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है। गर्भाविधि पूर्ण होने पर गाय या भैंस प्रसव कर बच्चों को उत्पन्न करती हैं। वर्तमान विज्ञान द्वारा किए जाने वाले कृत्रिम गर्भाधान के तरीके स्थानांग सूत्र में वर्णित तरीकों से समानता प्रदर्शित करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि गर्भाधान स्त्री और पुरुष के सहवास के अभाव में भी होता है।

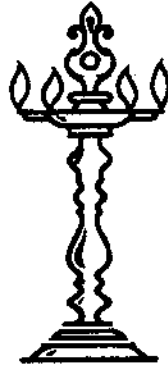
टेस्ट ट्यूब बेबीज

आज के विश्व में 'टेस्ट-ट्यूब' की बात प्रचलित है। पुरुष के वीर्य — पुद्गलों तथा स्त्री के डिम्ब कोशिका का संयोग कराया जाता है जो संयोग किसी रूकावट या अन्य कारणों से प्राकृतिक विधि से नहीं हो पाता। यह संयोग कांच की नली (टेस्ट ट्यूब) में उचित वातावरण तथा रासायनिक मिश्रण में कराया जाता है। भ्रूण के कुछ बड़ा होने पर भ्रूण को माता के गर्भाशय में स्थापित कर दिया जाता है जहां यथासमय बच्चे की उत्पत्ति होती है। यह प्रक्रिया कहने में बहुत आसान लगती है लेकिन वीर्य एवं डिम्ब संयोग से टेस्ट ट्यूब में भ्रूण का बनना कई परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अधिकांशतः असफल रहते हैं तथा भ्रूण के बनने के बाद माता के गर्भाशय में भी भ्रूण के स्थापित होने में कई बार असफलता मिलती है, फिर भी कुछ प्रयोगों में सफलता मिली है। भारत में प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी का जन्म दस वर्ष पूर्व हुआ था। आचार्य महाप्रज्ञ ने टेस्ट ट्यूब बेबीज के संबंध में जैन आचार्यों द्वारा रचित एक प्राचीन ग्रन्थ की चर्चा की है जो निम्न प्रकार से है।

योनि प्रामृत

जैन आचार्यों द्वारा रचित एक प्राचीन ग्रन्थ है योनि प्रामृत (जोणि पाहुड)। इस ग्रन्थ में जीव और अजीव, चेतन और अचेतन की जितनी योनियां हो सकती हैं, उनका वर्णन है। आश्चर्य होता है कि आज इतनी वैज्ञानिक गवेषणाओं के बाद भी 'परखनली' में शिशु को उत्पन्न करने की प्रक्रिया पूर्णतः

सफल नहीं हुई। किन्तु उस योनिप्राभृत ग्रन्थ में बतलाया गया है कि किसी भी प्रकार के प्राणी को उत्पन्न किया जा सकता है। उसमें उदाहरण मिलते हैं कि अमुक व्यक्ति ने हजारों भैंसे बनाए, घोड़े बनाए आदि-आदि। एक प्रसंग है। आचार्य मध्यरात्रि में अपने शिष्यों को योनि प्राभृत की वाचना दे रहे थे। उस दिन का प्रसंग था - मत्स्यों के उत्पादन की विधि। रास्ते में एक मच्छीमार गुजर रहा था। उसने कान लगाकर सारी विधि सुन ली। दूसरे दिन उसने उस विधि का प्रयोग किया। तालाब मछलियों से लबालब भर गया। दूसरे शब्दों में हम इस उत्पादन विधि को जिनेटिक इन्जीनियरिंग कह सकते हैं। यह विधि बहुत प्राचीन है।



शरीर के शक्ति केन्द्र

(i) सामान्य विवरण

शरीर अनंत शक्ति का स्रोत

आचार्य महाप्रज्ञ अध्यात्म क्षेत्र के पक्षधर हैं। वे आत्मा की अनन्त शक्ति को स्वीकार करते हैं तो शरीर को भी अनन्त शक्ति का स्रोत मानते हैं। उनका मानना है कि शरीर की शक्ति के बिना आत्मा की शक्ति कार्यरत नहीं होती और आत्मा की शक्ति के बिना शरीर का यह यंत्र संचालित नहीं होता। हमारी चेतना का प्रकाश इस शरीर में प्रकट होता है। शरीर के बिना वह प्रकट नहीं हो सकता इसलिए शरीर भी आत्मा बन जाता है। शरीर और आत्मा के संबंधो को समझाते हुए कहते हैं कि शरीर की शक्ति और आत्मा की शक्ति दोनों का प्रगाढ़ संबंध है।

स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर की भिन्नता

स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर की भिन्नता को दर्शाते हुए कहते हैं कि जो दिखता है, वह शरीर नहीं है। वह तो स्थूल शरीर है। यह शक्तिशाली है पर दूसरे शरीरों की तुलना में कम शक्तिशाली है। शरीर दो है — सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मतर शरीर। नास्तिकों ने इस स्थूल शरीर में आत्मा को खोजने का प्रयत्न किया है। आत्मा नहीं मिली। आज के वैज्ञानिक भी इस स्थूल शरीर को मुख्य मानकर आत्मा की खोज में लगे हैं। मरने से पूर्व शरीर को तोलते हैं, मरने के बाद पुनः शरीर को तोलते हैं और यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि दोनों शरीर के वजन में कितना अन्तर आया। यदि वजन घटा है तो कोई वस्तु शरीर से निकलकर चली गई है, यही आत्मा है। यदि वजन बराबर होता है तो कोई वस्तु बाहर नहीं गई। जैसा पहले था, वैसा ही अब है। किन्तु यह बहुत ही स्थूल बात है।

तैजस शरीर

आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि हम सूक्ष्मतर शरीर को जानें। ये अनंत शक्ति के स्रोत हैं। एक है तैजस शरीर और एक है कर्मण शरीर। तैजस शरीर तापमय शरीर है। वह हमारी ऊष्मा, सक्रियता और शक्ति का संचालक है। यह न हो तो ऊष्मा पैदा नहीं हो सकती, पाचन नहीं हो सकता, रक्त का संचालन नहीं हो सकता। यह तैजस शरीर ही हमारे स्थूल शरीर की

सारी क्रियाओं का संचालन करता है। स्थूल शरीर में शक्ति का सबसे बड़ा भंडार है — तैजस शरीर। जिसका तैजस शरीर मंद है, अग्नि मंद है, उसकी सारी क्रियाएं मंद हो जाती है। अग्नि तीव्र है तो सारी क्रियाएं तीव्र हो जाती है। आज के विज्ञान ने इस तथ्य को भली-भांति पकड़ लिया है।

सूर्य के ताप का प्रभाव

डॉ. स्टीवाक ने यह प्रतिपादन किया था कि सूर्य का प्रकाश हमारे भोजन की पूर्ति करता है। सूर्य का ताप हमारे खाद्य का पूरक है। यदि सूर्य का ताप न मिले तो हम केवल खाद्य पर जीवित नहीं रह सकेंगे।

वैज्ञानिक प्रयोग

माइकेल और उसके कुछ सहयोगियों ने चूहों पर प्रयोग किए। उन्होंने अठारह चूहों को खाद्य पदार्थ खिलाए जिनमें कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि नहीं थे। खाद्य में पूरे तत्त्व न होने के कारण चूहे बीमार हो गए। उनको अंधेरे कमरे में रखा गया। वे बीमार ही रहे। फिर उन्हें सूर्य की धूप में रखा। एक-दो दिन में स्वस्थ हो गए। भोजन वही कमी वाला चलता रहा। दूसरे चूहों को कम तत्त्वों वाला भोजन दिया गया। वे बीमार हो गए। इस बार उन्हें धूप में नहीं छोड़ा गया। उन्हें बन्द कमरे में ही रखा गया। किन्तु उन्हें जो भोजन दिया जा रहा था उसे बहुत समय तक सूर्य की धूप में रखा जाता था। दो चार दिनों में वे चूहे स्वस्थ हो गए। तब डॉक्टर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सूर्य का ताप भोजन को केवल पचाता ही नहीं है, वह स्वयं खाद्य है और भोजन का पूरक है। सूर्य के प्रकाश के बिना वनस्पति का विकास नहीं होता। मनुष्य के शरीर का भी विकास नहीं होता और भोजन का भी पाचन नहीं हो सकता।

आतापना

इन वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर एक विचार मन में आया। जैन परंपरा में मुनियों के आतापना लेने की बात सर्वसामान्य है। अनेक मुनि आतापना लेते थे। वे सूर्य का ताप घंटों तक लेते। वे दो-दो, तीन-तीन दिन तक नहीं खाते। उनकी भूख कम हो जाती। भोजन की पूर्ति सूर्य के आतप से हो जाती। वे इस रहस्य को जानते थे, इसलिए इस क्रिया में संलग्न हो जाते थे। साधना का मतलब है कि हम स्थूल शरीर की शक्तियों को जागृत

करें, और साथ ही साथ सूक्ष्म शरीर की शक्तियों को भी सक्रिय करें। स्थूल शरीर से लाभ उठाएं। इस दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन दर्शन में वर्णित तैजस और कार्मण शरीर को अनन्त शक्ति का स्रोत कहा है।

आयु और शरीर शक्ति

आचार्य महाप्रज्ञ आत्मा को जानने और देखने के प्रयत्न को जितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं, शरीर को जानने के प्रयत्न को कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। वे कहते हैं कि डा. कार्लसन का कथन है कि यद्यपि गणित से मानव की आयु एक सौ पचास वर्ष आती है फिर भी चिकित्सा विशेषज्ञों को मोटे तौर पर सौ वर्ष की आयु तो स्वीकार कर ही लेनी चाहिए।

मानव जीवन के इस काल में उसकी विभिन्न शक्तियां भी एक क्रम से क्षीण होती हैं। सबसे पहले लक्षण आंख पर प्रकट होता है। आंख के लेंस के लचीलेपन की कमी दसवें वर्ष में ही प्रारम्भ हो जाती है, साठ वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते वह समाप्त हो जाती है। आंख की शक्ति के दूसरे लक्षण हैं — दृष्टि के प्रसार में कमी, किसी चीज का साफ-साफ नजर न आना तथा हल्के प्रकाश में दिखलाई न पड़ना। ये लक्षण चालीस वर्ष की उम्र में प्रारम्भ होते हैं। इसी प्रकार मानव की दूसरी शक्तियां भी कम होती हैं। स्वाद की तेजी पचास वर्ष की उम्र से घटने लगती है और घ्राण शक्ति साठ वर्ष की उम्र से। श्रवण शक्ति का क्षय तो बीस वर्ष की उम्र से ही प्रारम्भ हो जाता है। तो बीस वर्ष की उम्र से ही पेट के पाचक रस कम होने लगते हैं और साठ की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते उनका उत्पादन आधा हो जाता है। पचास वर्ष की उम्र में 'पेपसिन' और 'ट्रिपसिन' का उत्पादन बहुत ही घट जाता है। ये चीजें पाचन शक्ति को ठीक करने के लिए आवश्यक हैं। वस्तुतः इन्हीं की कमी से हाजमें की तकलीफें उम्र के साथ बढ़ती हैं। अतः आयु और शरीर शक्ति का ध्यान रखते हुए जीवन में कार्य को करना चाहिए।

रात्रि भोजन

आचार्य महाप्रज्ञ ने जैन संस्कृति में प्रचलित रात्रि भोजन न करने के संबंध में वैज्ञानिक कारण बताते हुए कहते हैं कि हम जो भोजन करते हैं उसका पाचन होता है तैजस शरीर के द्वारा। हमारे पाचन की शक्ति है तैजस। उसको अपना काम करने के लिए सूर्य का आतप आवश्यक होता है। जब उसे सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तब वह निष्क्रिय हो जाता है। पाचन कमजोर हो जाता है। यह कारण वैज्ञानिक है।

वैज्ञानिक प्रयोग

(i) भीतर के स्पन्दन

शरीर शक्ति के विभिन्न पक्षों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने शरीर प्रेक्षा को महत्त्वपूर्ण कहा है। जब एकाग्रता आती है तो पता लगता है कि शरीर के स्पन्दन हो रहे हैं। इस मांस और चमड़ी के पुतले के भीतर जो प्राण और चेतना का प्रवाह है, उससे सम्पर्क स्थापित होता है। जब तक बाहर की आवाजें आती रहती हैं, भीतर की सुनाई नहीं देती। उक्त तथ्य की पुष्टि में एक वैज्ञानिक घटना का वर्णन किया है कि — एक बार वैज्ञानिक ने साउंड-प्रूफ मकान बनाया। उसमें बाहर की आवाज भीतर प्रवेश नहीं करती और अन्दर की आवाज बाहर नहीं जाती। कुछ वैज्ञानिक, प्रयोग के लिए उस मकान के भीतर बैठे। मशीन की-सी आवाजें आने लगीं। उन्हें आश्चर्य हुआ कि ये आवाजें कहां से आ रही हैं ? शब्द निरोधक मकान में बाहर से आवाजें कैसे आ सकती हैं ? सोचने पर ज्ञात हुआ कि बाहर से कुछ भी नहीं आ रहा है। शरीर के जो भीतर एक विशाल फैक्ट्री चल रही हैं सारी उसकी आवाजें हैं, रक्त चल रहा है, धमनियां कार्यरत हैं, सारा नाडी तन्त्र सक्रिय है — ये सब आवाजें उनकी हैं।

(ii) शीतलीकरण

आज के वैज्ञानिक एक नई विधि का विकास कर रहे हैं, जिससे आदमी पांच सौ वर्षों तक या हजार वर्षों तक जी सके। यह विधि है — शीतलीकरण की। आदमी को ठंड में जमा दिया गया। दस वर्ष तक वह ठंड में जमा रहा। दस वर्ष के बाद उसे गरमाया और वह जी उठा। यदि बार-बार इस शीतलीकरण की प्रक्रिया को दोहराते जाएं तो वह पांच सौ वर्ष भी जी सकता है और हजार वर्ष भी जी सकता है। वैज्ञानिकों ने चींटियों को ठंड में जमा दिया। सब चींटियां मृतवत् हो गईं। दस मिनट बाद उन्हें गरमाया गया। वे पुनः जी उठीं। उनमें हलचल प्रारम्भ हो गई। हम बहुत बार देखते हैं, मक्खियां और चींटियां जब बहुत ठंडे पानी में गिर जाती हैं तब वे मृत जैसी हो जाती हैं फिर जब उन्हें आग से गरमाया जाता है या धूप में रखा जाता है तो वे पुनः जीवित हो उठती हैं।

मस्तिष्क की कोशिकाएं

इसके निष्कर्ष में आचार्य महाप्रज्ञ का मानना है कि हमारे जीवन का आधार है — मस्तिष्क की कोशिकाएं। मस्तिष्क सारे शरीर तंत्र का नियामक है। सुनने का तन्त्र मस्तिष्क में है। सारे ज्ञान का ग्राहक और संचालक स्थान मस्तिष्क है। सारी स्मृतियां यहाँ संग्रहित हैं। मस्तिष्क को जागृत करना स्मृति कोशों को जागृत करना है। हमारा मस्तिष्क बहुत शक्तिशाली है। अरबों कोश है, अरबों संस्कार संग्रहित है, स्मृतियां संग्रहित हैं। अवधान विद्या उन्हीं स्मृतिकोशों का चमत्कार है। अतः यह मानना उचित प्रतीत होता है कि जब तक कोशिकाएं जीवित रहती हैं तो हृदय गति बन्द हो जाने पर भी आदमी मरता नहीं है। यह मस्तिष्क जितना ठंडा रहता है उतना ही जीवन अच्छा रहता है और उतना ही चिन्तन स्वस्थ होता है।

स्मृति कोश

आज के मस्तिष्क विज्ञानी कहते हैं -- हम अपने मस्तिष्क की सिर्फ चार या पांच प्रतिशत शक्ति का ही उपयोग कर पाते हैं। यदि कोई सात-आठ प्रतिशत शक्ति का उपयोग करने लग जाए तो वह दुनिया का एक बहुत बड़ा विचारक बन जाता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस संबंध में अपनी जिज्ञासा रखते हुए प्रश्न किया है कि जैसे हमारे मस्तिष्क में वर्तमान जन्म के स्मृति कोश होते हैं, वैसे ही पूर्वजन्म के स्मृति-कोश होते हैं या नहीं ? यह एक जटिल प्रश्न है। आज के शरीर शास्त्री और मनोवैज्ञानिक इन कोशों को खोज नहीं पाए हैं किन्तु कर्म-शास्त्रीय दृष्टि से जिसमें पूर्वजन्म की स्मृति की संभावना है, उसमें उन कोशों की विद्यमानता की संभावना भी की जा सकती है। इसका कारण है कि मस्तिष्क का एक बहुत बड़ा भाग मौन क्षेत्र (Silent Area) या अंधकार क्षेत्र (Dark Area) है। इसके विकास की संभावनाएं हो सकती हैं। हो सकता है, उस क्षेत्र में वे स्मृतिकोश उपलब्ध हो जाएं।

संस्कार और व्यवहार

जीवन के गहरे रहस्यों को प्रकट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ आयु, शरीर और मस्तिष्क की सापेक्षता का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जीवन का पहला अध्याय है — बचपन। बच्चा बहुत कुछ लेकर आता है उसमें अच्छाइयां भी है और बुराइयां भी है। वह आनुवंशिकता के सूत्र में बंधा हुआ होता है। क्रोमोसोम और जीन गुणसूत्र और संस्कार-सूत्र वह लेकर आता है। उसमें अनेक संस्कार हैं। इसमें भी आगे चलें तो उसमें कर्म के संस्कार विद्यमान

हैं। उसके पास इन कर्म-संस्कारों का असीम खजाना है। इसलिए यह नहीं माना जा सकता कि बच्चा बिलकुल रिक्त है, कोरी पाटी के समान है। यह सापेक्ष सत्य है, पूर्ण सत्य नहीं। बच्चे में जो है, जो संस्कार-बीज वह साथ में लेकर आया हैं, वह भी उसके व्यक्तित्व का घटक बनता है, उसे प्रभावित करता है। वे संस्कार-बीज प्रकट होते हैं। सामाजिक संदर्भ, वातावरण उसमें निमित्त बनता है। आज के आनुवंशिकी वैज्ञानिक भी बतलाते हैं कि व्यक्ति के स्वभाव का निर्माण भीतर में होता है, जीवन के साथ होता है तथा यह भी माना जाता है कि आदमी का स्वभाव हार्मोन्स के द्वारा निर्धारित होता है।

व्यक्तित्व का निर्माण

शरीर के दो तत्त्व हैं — ग्रन्थि तंत्र और नाड़ी तंत्र। ये हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व के निर्माण में इनकी प्रमुख भूमिका रहती है।

ग्रन्थि तंत्र को व्यक्तित्व निर्माण से भिन्न नहीं माना जाता। जिस व्यक्ति का थायराइड ग्लेण्ड काम नहीं करता, जिसमें थायरोक्सिन की कमी होती है, वह व्यक्ति चिड़चिड़ा बन जाता है। उसकी चिन्तन और स्मृति की शक्ति कम हो जाएगी। थायरोक्सिन की मात्रा अधिक है तो तत्काल उत्तेजना आ जाएगी। बात-बात पर आवेश आ जाएगा। ऐसा होना व्यक्तित्व निर्माण में बाधा है, पर इसके पीछे जो कारक तत्त्व है, वह है ग्रन्थि तंत्र। व्यक्तित्व निर्माण और परिष्कार के लिए इसका ध्यान रखना आवश्यक है।

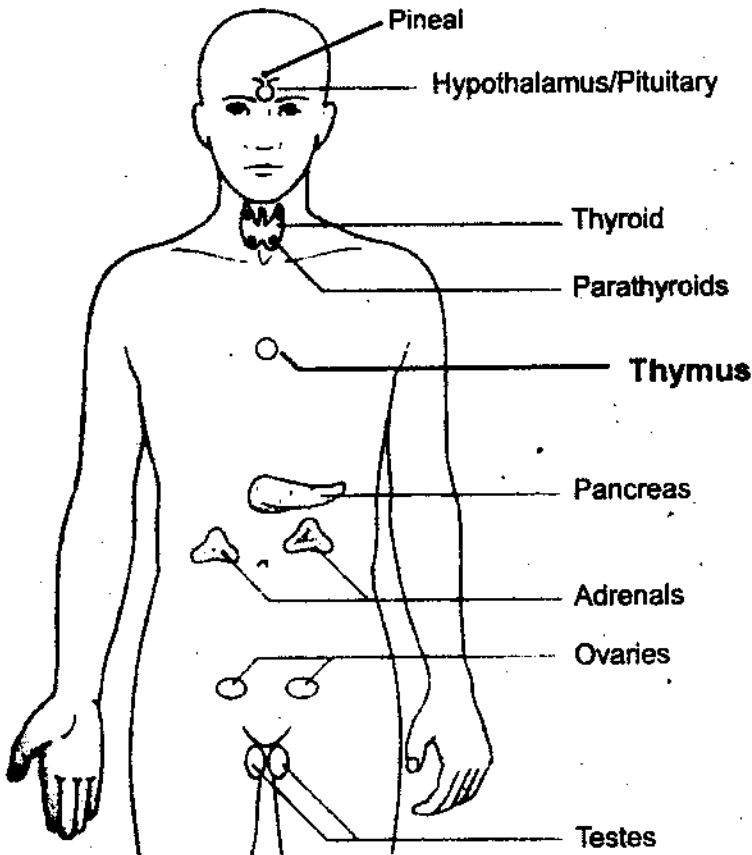
दूसरा तत्त्व है नाड़ी तंत्र। हमारे प्राण तंत्र के तीन प्रवाह हैं।

- इडा
- पिंगला
- सुषुम्ना

आज की वैज्ञानिक भाषा में उन्हें सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम, पेरसिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम और सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम कहा है। एक व्यक्ति बहुत आक्रामक बन रहा है, एक बच्चा हर बात पर आक्रामक मुद्रा में आ जाता है, कहीं सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम तो इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। एक व्यक्ति हीन भावना से हमेशा ग्रस्त रहता है, प्रतिक्षण भयभीत और शंकाशील रहता है। यह जांच करानी जरूरी है कि कहीं पेरसिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम ज्यादा सक्रिय तो नहीं हो गया है।

अगले अध्याय में पाठकों के लिए हम शरीर के ग्रन्थि तंत्र और नाडी तंत्र के बारे में शरीर शास्त्र के आधार से चर्चा करेंगे।

शरीर के शक्ति केन्द्र – ग्रन्थियां (Glands)



- (i) हाइपोथेलेमस / पिट्यूटरी
- (ii) थायराइड
- (iii) पैराथायराइड
- (iv) पैंक्रियाज – अग्नाशय
- (v) एड्रीनलस् – अधिवृक्क
- (vi) थायमस
- (vii) टेस्टीज अथवा ओवरीज

(ii) ग्रन्थियां

आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान में ग्रन्थियों (Glands) से होने वाले स्रावों को महत्त्वपूर्ण कहा है। हम इन ग्लेण्डस के व्यवहार को शरीर शास्त्र की दृष्टि से चिन्तन करेंगे कि प्रेक्षा में ये किस प्रकार उपयोगी है।

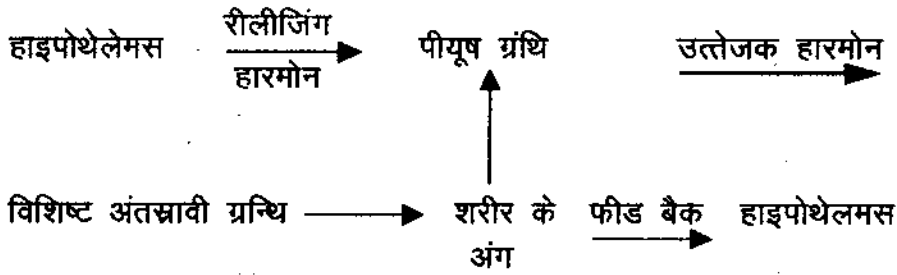
हमारे स्नायुतंत्र के माध्यम से हमारी विभिन्न शारीरिक गतिविधियों में सामंजस्य बना रहता है। केवल स्नायु तंत्र ही हमारे शरीर की सभी क्रियाएं निर्धारित नहीं करते वरन् शरीर की वृद्धि तथा विभिन्न ऊर्जा उत्पादक क्रियाएं शरीर में उत्पन्न होने वाले कुछ विशिष्ट रसायनों (हारमोन्स) से भी नियंत्रित होती है जो विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में बनते हैं।

शरीर में जो अंग स्राव पैदा करते हैं उन्हें ग्रन्थि कहा जाता है और जो ग्रन्थियां रसायन को सीधे रक्त वाहिनी में भेजती है उन्हें अन्तः स्रावी ग्रन्थि कहा जाता है। इन स्रावों का व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं, मनोदशाओं, व्यवहार, आचरणों पर प्रभाव पड़ता है। इनके स्राव जैव रासायनिक योगिक (Organic – Chemical Compounds) के रूप में होते हैं। स्राव को ग्रीक भाषा में हारमोन (Harmones) कहते हैं। अब हम ग्रन्थियों के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करेंगे। ग्रन्थियाँ कुल आठ हैं।

- पीयूष ग्रन्थि
- थायराइड
- पेरार्थाइराइड
- अंतःस्रावी अग्नाशय
- अधिवृक्क
- थायमस
- वृषण अथवा डिंब ग्रन्थियां
- पीनियल।

कार्यप्रणाली – अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का मुख्य कार्य शरीर के आंतरिक वातावरण को बनाए रखना है। हाइपोथेलेमस के जरिए पीयूष ग्रन्थि अन्य सभी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के कार्य को नियंत्रित करती है।

हाइपोथेलेमस नाडी तंत्र अथवा कुछ रसायनों द्वारा पीयूष ग्रन्थि को हारमोन बनाने को प्रेरित करता है। इसके द्वारा स्रावित रसायन रीलीजिंग फैक्टर कहलाते हैं। इसे इस तरह से समझा जा सकता है।



कभी कभी शरीर के अंग अंतःस्रावी ग्रन्थियां को सीधे भी नियंत्रित कर सकते हैं।

1. पीयूष/पिट्यूटरी ग्रन्थि

इसे नियंत्रक ग्रन्थि भी कहते हैं। यह सेम के आकार की छोटी सी ग्रन्थि है जो मस्तिष्क के नीचे हड्डी से बनी छोटी खाली जगह में स्थित है। इसके दो भाग होते हैं।

- अग्र पीयूष
- पश्च पीयूष

इसके द्वारा स्रावित हारमोन्स निम्न हैं

- (i) सोमेटोट्रोफिक हारमोन – यह मांसपेशियों, हड्डियों तथा शरीर की वृद्धि को नियंत्रित करता है।
- (ii) थायरॉइड स्टीमुलेटिंग हारमोन्स – यह हारमोन्स थायरॉइड ग्रन्थि को उसके हारमोन बनाने के लिए प्रेरित करता है।
- (iii) फोलीक्युलर स्टीमुलेटिंग हारमोन – यह हारमोन स्त्री/पुरुष जनित गुणों को बनाने में मदद करता है।
- (iv) ल्यूटीनाइजिंग हारमोन – यह हारमोन भी स्त्री जनित गुणों को बनाने में मदद करता है।
- (v) प्रोलेक्टिन – स्त्रियों में दूध का उत्पादन करने में मदद करता है।
- (vi) एंटी डाययुरेटिक हारमोन – शरीर में नमक व पानी की मात्रा आवश्यकतानुसार रखने में मदद करता है।
- (vii) आक्सीटोसिन – मांसपेशियों के संकुचन में सहायक है।
- (viii) ए सी टी एच – यह अधिवृक्क के स्राव को नियंत्रित करता है।

पीयूष ग्रन्थि के लिए यह कहा जाता है कि यह शारीरिक विकास के साथ, मनोबल, निर्णायक शक्ति स्मृति और श्रवण शक्ति का नियमन करती है। पीयूष ग्रन्थि की जागृत अवस्था विकास के लिए आवश्यक है।

2. थायरायड

यह ग्रन्थि गले के मूल पर श्वास नली के ऊपर तथा आस-पास स्वर यंत्र के ठीक नीचे स्थित होती है। यह अग्रेजी के अक्षर H की तरह होती है जिसके दो भाग बीच के भाग (इसथेमस) से जुड़े रहते हैं।

यह दो हारमोन्स स्रावित करती है

(i) थाइरोक्सीन (आयोडीन युक्त हॉरमोन)

(ii) थाइरोक्लेल्सीटोनिन

थाइरोक्सीन:— यह चयापचय के दर को नियंत्रित करता है। शरीर का ईंधन (भोजन) जो हम खाते हैं, उससे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए आक्सीजन की सहायता से भोजन पचाया जाता है। इस क्रिया को चयापचय कहते हैं। इस क्रिया को थाइरोक्सीन नियंत्रित करता है। इसकी कमी से कई रोग हो जाते हैं। यदि जन्म से या बचपन से इसकी कमी हो जाय तो व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक विकास रुक जाता है। इसे क्रीटीन (Cretin) कहते हैं। वयस्कता के बाद इसकी कमी से Myxedema रोग हो जाता है। मनुष्य सुस्त तथा मोटा, झुर्रीदार हो जाता है।

थाइरोक्सीन का मूल रसायन आयोडिन है। रक्त के आयोडिन मुक्त कणों को अपनी ओर आकर्षित करने की इस ग्रन्थि में विशेष समता है। भय, क्रोध आदि संवेगों में इसका स्राव असन्तुलित हो जाता है।

थायरायड की अधिकता से थाइरोक्टोसीकोसिस हो जाता है। जिसमें आंखें बाहर आने लगती हैं। गर्मी को बिल्कुल ही सहन नहीं कर सकता। स्वभाव चिड़चिड़ा व गुस्सैल हो जाता है।

थायरायड ग्लैण्ड को विशुद्धि केन्द्र का स्थान कहा जा सकता है।

3. पैराथायरायड

थायरायड के पश्च भाग में यह चार छोटी-छोटी ग्रंथियां होती हैं इनके द्वारा स्रावित हारमोन पैराथोरमोन (Parathormone) कहलाता है। यह कैल्सियम के चयापचय को नियंत्रित करता है। कैल्सियम केवल हमारी हड्डियों या दांतों के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् स्नायुओं के बीच के तथा स्नायुओं

और मांस पेशियों के बीच के जोड़ों पर मनोवेगों के प्रेषण के लिए भी आवश्यक है। सभी मांसपेशियों यहां तक कि हृदय के संकुचन के लिए केलिसियम अनिवार्य है। इसके चयापचय के लिए पेराथोरमोन आवश्यक है। इसकी कमी से टिटैनी हो जाती है। प्रेम, सद्भाव और मानवीय गुणों के विकास में इनका महत्त्वपूर्ण योग माना जाता है।

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है तो संभव है कि पेराथाइराइड का भी यही क्षेत्र होगा।

4. अंतःस्रावी अग्नाशय

यह भाग लेंगरहंस का प्रायद्वीप कहलाता है। यह भाग सारे अग्नाशय में बिखरा होता है। यह दो हारमोन्स बनाता है -

- इन्सूलिन
- ग्लूकागोन

दोनों हारमोन्स खून में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करते हैं। इन्सूलिन की कमी से मधुमेह रोग हो जाता है।

नाभि के पास स्थित तेजस केन्द्र संभवतः इससे संबद्ध हो सकता है।

5. अधिवृक्क

प्रत्येक गुर्दे के ऊपर यह ग्रन्थि होती है। इसके दो भाग होते हैं बाहरी भाग वल्कल अन्तःस्रावी होता है तथा भीतरी भाग नरम तथा भज्जा कहलाता है।

कारटेकस (वल्कल) - यह जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके द्वारा तीन हारमोन्स स्रावित किए जाते हैं -

- मिनरलोकोरटीकोइड्स
- ग्लूकोकोरटीकोइड्स
- प्रोजेस्ट्रोन एवं टेस्टोस्टेरोन (सेक्स हारमोन)

पहले दोनो हारमोन्स नमक, पानी आदि के चयापचय को नियंत्रित करते हैं, जिससे रक्त दबाव, शरीर में द्रवों की मात्रा आदि नियंत्रित होते हैं। इन हारमोन्स का स्रावण भी दिन में अलग-अलग समयों पर अलग होता है। सुबह इनकी मात्रा सबसे अधिक होती है इसलिए यह समय सबसे चुस्त होता है। तीसरा हारमोन्स काम भावना को नियंत्रित करता है और

इनका स्रावण रात्रि में ज्यादा होता है। शायद प्रकृति ने सभी कामों के लिए अलग-अलग समय निर्धारित किया हैं और शरीर में हारमोन्स उसी प्रकार से स्रावित होते हैं।

मज्जा :- इससे एड्रीनलीन और नारएड्रीनलीन ये दो हारमोन्स बनते हैं। भय, चिन्ता और क्रोध के समय इनका स्राव बढ़ जाता है। जिससे दिल की धड़कन बढ़ जाती है, घबराहट महसूस होती है तथा रोहें खड़े हो जाते हैं।

तेजस केन्द्र नाभि पर स्थित है और सम्भवतः इस ग्रन्थि से नियंत्रित हैं।

तेजस केन्द्र पिशूनता, कषाय, तृष्णा, मोह आदि वृत्तियों को नियंत्रण करने के लिए होते हैं और एड्रीनल से स्रावित हारमोन्स इन क्रियाओं से सीधे जुड़े हैं। अतः इस केन्द्र का महत्त्व इस अन्तःस्रावी ग्रन्थि से समझा जा सकता हैं।

6. थायमस

सीने के मध्य में स्थित यह हड्डी के पीछे स्थित होती है। इसका आकार अनिश्चित होता हैं। इसका कार्य बचपन से वयस्क होने तक अधिक रहता है। वयस्कता के बाद यह ग्रन्थि धीरे-धीरे अपना कार्य कम कर देती है। इसके द्वारा अंतःस्रावी गतिविधियां पूर्णतया ज्ञात नहीं हैं फिर भी शरीर की प्रतिरोध क्षमता के लिए यह जरूरी है।

आनन्द केन्द्र का संबंध इस ग्रन्थि से किया जा सकता है क्योंकि यह केन्द्र सीने के मध्य में स्थित है।

7. वृषण

यह पुरुष यौन ग्रन्थि है जो लिंग के पीछे त्वचा की थैलियों में स्थित होती हैं। इसके दो कार्य है -

- (1) शुक्राणु बनाना
- (2) टेस्टोस्टीरोन का स्रावण करना

यह हारमोन पुरुष गुणों को उत्पन्न करता है जैसे दाढ़ी मूछ का आना। स्वास्थ्य केन्द्र का संबंध गोनाड्स के प्रभाव क्षेत्र में माना जाता हैं।

डिंब ग्रन्थियाँ - सेव के आकार की दो ग्रन्थियाँ जंघाओ के मध्य में नीचे की ओर पेल्विस में स्थित होती हैं। इनका कार्य है - डिंब स्खलित

करना तथा स्त्री हारमोन इस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रोन को बनाना। इनका कार्य स्त्री गुण उत्पन्न करना तथा मासिक धर्म का संचालन करना है।

यह स्वास्थ्य केन्द्र का संबधित प्रभाव क्षेत्र है।

8. पीनियल ग्रंथि

इसका स्थान मस्तिष्क के मध्य में होता है। यह परिमाण में गेहूँ के दाने जितनी होती है। इस ग्रंथि का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है काम ग्रंथियों के स्रावों का निरोध करना। इस प्रकार यह ग्रंथि शैशवास्था में व्यक्ति का काम नियमन कर उसे यौवन प्राप्ति को रोकती है। इसके अतिरिक्त मेलेटॉनिन नामक एकमात्र स्राव इससे निकलता है जो जागृति — सुषुप्तावस्था के चक्र को निर्धारित करता है। रात में मेलेटॉनिन ज्यादा स्रावित होकर निद्रा को बढ़ाता है। काम-वासना पर इस हारमोन का प्रभाव पूर्णतया स्पष्ट नहीं है।

शक्ति केन्द्र

आचार्य महाप्रज्ञ ने शरीर के शक्ति केन्द्रों का वर्णन किया है। इन्हें तंत्रशास्त्र में चक्र व आयुर्वेद में मर्मस्थान कहा जाता है। प्रेक्षाध्यान में उनका नाम चैतन्य केन्द्र है। केन्द्रों में शक्ति होने पर भी, सुप्त अवस्था में रहते हैं इसलिए शक्ति होने पर भी उसका पता नहीं चलता।

1. शक्ति केन्द्र — पृष्ठ रज्जु के नीचे विद्युत भंडार का केन्द्र।
2. स्वास्थ्य केन्द्र — पेड़ के नीचे स्थित यह केन्द्र मोनाडस का प्रभाव क्षेत्र है। इसके द्वारा मनुष्य का अचेतन मन नियंत्रित होता है।
3. तैजस केन्द्र — नाभि का स्थान है। इसका संबंध एंड्रीनल व गुर्दे के साथ है।
4. आनंद केन्द्र — फेफड़े के नीचे हृदय का पार्श्ववर्ती स्थान है। यह थाइमस का प्रभाव क्षेत्र है।
5. विशुद्ध केन्द्र — यह स्थान कंठ देश है। यह थायरॉइड का प्रभाव क्षेत्र है।
6. ब्रह्म केन्द्र — जीभ का अग्रभाग है।
7. प्राण केन्द्र — नासाग्र पर स्थित है। ध्यान के लिए इसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण है।
8. अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान है। इसका जागरुकता से संबंध है।

9. चाक्षुष केन्द्र — चक्षु पर स्थित जीवनी शक्ति का केन्द्र है।
10. दर्शन केन्द्र — दोनों भृकुटियों के बीच अवस्थित है। यह पिट्यूटरी ग्लैण्ड का प्रभाव क्षेत्र है।
11. ज्योति केन्द्र — ललाट में मध्य में स्थित पीनियल ग्रंथि का प्रभाव क्षेत्र है।
12. शान्ति केन्द्र — अग्रमस्तिष्क में स्थित भावधारा से संबंध रखता है। इसका क्षेत्र हाइपोथेलेमस है।
13. ज्ञान केन्द्र — यह अतीन्द्रिय चेतना का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

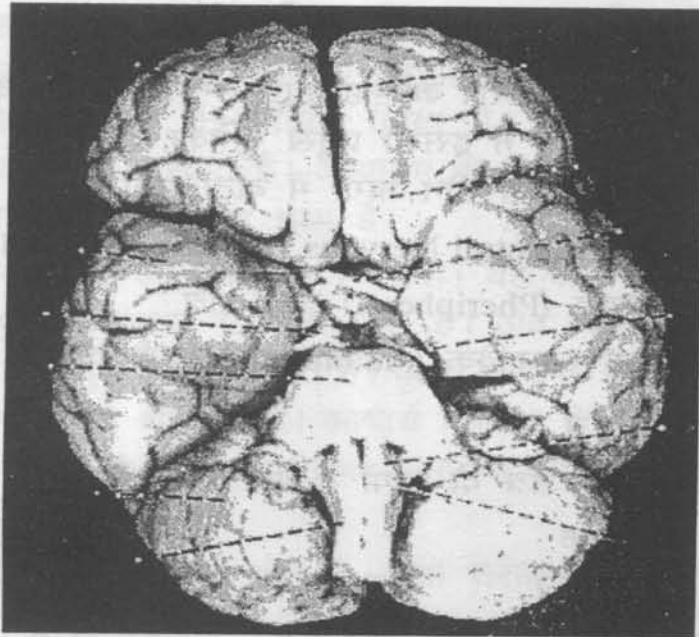
चैतन्य केन्द्रों को जागृत करने के शक्तिशाली उपायों में से एक है प्रेक्षाध्यान। एकाग्रता के साथ जिस चैतन्य केन्द्र को देखा जाता है, उसमें प्रकंपन शुरू हो जाते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ की यह मौलिक देन है कि उन्होंने इस नियम को स्वीकार किया है कि शरीर के जिस भाग पर ध्यान करते हैं, वह विकसित हो जाता है। जहां प्राणधारा का प्रवाह जाता है, वह भाग सक्रिय हो जाता है।

चैतन्य केन्द्र और मेडिकल साइंस

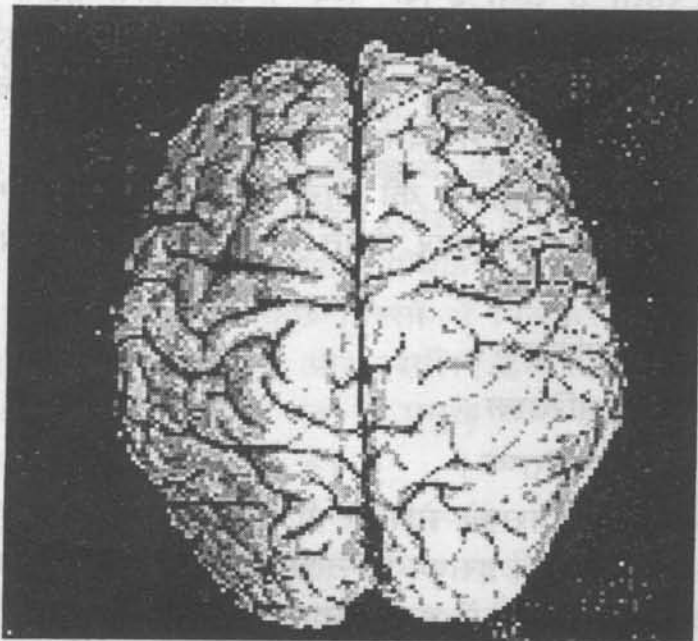
प्रेक्षा से संभव है कि चैतन्य केन्द्र जागृत हो जाए लेकिन मेडिकल साइंस में इस तरह के केन्द्रों की मान्यता नहीं है। जहां तक यह धारणा है कि अन्तःस्रावी ग्रन्थि तंत्र के पास/या उस पर अवस्थित केन्द्र पर ध्यान करने से वे जागृत होंगे या वह ग्रन्थि स्राव करने लगेगी या स्राव रुक जाएंगे, यह चिन्तनीय है। क्योंकि ग्रन्थियां अपने आप में कुछ भी स्रावित नहीं करती जब तक कि नियंत्रक ग्रन्थि से रक्त में संबंधित रसायन न पहुंच जाए।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार विभिन्न केन्द्रों की मान्यता एकाग्रता के लिए की गई है। किसी विशेष केन्द्र पर एकाग्रता (ध्यान) करने से उस ग्रन्थि से संबंधित हार्मोन्स क्रिया करने लगते हैं क्योंकि हाइपोथेलेमस के द्वारा सिगनल्स या नियंत्रक हार्मोन सक्रिय हो जाते हैं। इस विधि में विशेष कुछ करना नहीं है केवल किसी विशेष केन्द्र पर एकाग्र होना है।

शक्ति केन्द्र पर प्रेक्षा का प्रयोग कर हम भाव संस्थान को पवित्र बना सकते हैं। लिम्बिक सिस्टम मस्तिष्क का एक महत्त्वपूर्ण भाग है जहां भावनाएं पैदा होती हैं। इसका विस्तृत अध्ययन, इसकी उपयोगिता में वृद्धि करेगा।



Inferior view of the Brain



Superior view of the Brain

(iii) नाड़ी तंत्र

नाड़ी तन्त्र, यह शरीर का महत्त्वपूर्ण तन्त्र है। शरीर के अन्य तन्त्रों के नियंत्रण और संयोजन में इसकी प्रमुख भूमिका रहती है। शरीर शास्त्र के आधार से नाड़ी तंत्र को तीन भागों में बांटा गया है।

- (1) केन्द्रिय (Central Nervous System) नाड़ी तंत्र
- (2) परिधिगत (Pheripheral) नाड़ी तंत्र
- (3) स्वतन्त्र स्नायविक (Autonomic) नाड़ी तंत्र

केन्द्रिय नाड़ी तंत्र

केन्द्रिय नाड़ी तंत्र दो भागों में बना होता है -

1. मस्तिष्क
2. मेरु रज्जु

यह नाड़ी तंत्र वह प्रमुख जगह है जहां सभी नाड़ी तंत्रों की सूचनाएं इकट्ठी होती हैं और उनका एकीकरण और आपसी संबंध स्थापित होता है।

मस्तिष्क और मेरु रज्जु एक झिल्ली जिसे कपालरन्ध्र (मेन्निजिस) कहते हैं, से ढकी रहती है तथा इनके मध्य में और चारों तरफ एक द्रव पदार्थ रहता है जिसे सी.एस.एफ. कहते हैं। यह केन्द्रीय तंत्र करोड़ों-अरबों न्यूरॉन से बना होता है। इस तंत्र का बाहरी हिस्सा कारटेक्स कहलाता है जो भूरा पदार्थ और सफेद पदार्थ में विभक्त होता है।

मस्तिष्क - सजकता से की जाने वाली सभी क्रियाएं मस्तिष्क के द्वारा होती हैं। यह खोपड़ी के अंदर स्थित होता है। मस्तिष्क को तीन भागों में बांटा जा सकता है -

1. अग्र मस्तिष्क
2. मध्य मस्तिष्क
3. पश्च मस्तिष्क।

अग्र मस्तिष्क जिसको सेरिब्रम भी कहते हैं, यह व्यक्तित्व, आचरण एवं संचलन का निर्वाहक है। इसका निम्नतम बायां भाग हमारी वाणी का नियंत्रक केन्द्र है। यह दो हिस्सों में बंटा होता है, दायां और बायां। प्रत्येक हिस्सा शरीर के दूसरी ओर से समस्त एच्छिक क्रियाकलापों का नियंत्रण करता है। प्रयोगों से यह सिद्ध किया गया है कि तर्क, गणित, भाषा के सम्बन्ध में बायां

पटल सक्रिय रहता है। अनुशासन, सहिष्णुता, समरसता, संयम, उदारता आदि में दायां पटल सक्रिय रहता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने मेडिकल साइन्स के इन निष्कर्षों का प्रेक्षा पद्धति में उपयोग किया है। वह, प्रत्येक पटल पर आवश्यकतानुसार ध्यान करवाते हैं। अध्यात्म के विकास में दायां पटल पर किया गया ध्यान उपयोगी सिद्ध हुआ है।

मध्य मस्तिष्क में एक ही भाग होता है। यह अग्र मस्तिष्क के साथ आपस में कारपस केलोसम से जुड़े रहते हैं। अग्र मस्तिष्क और मध्यम मस्तिष्क मिलकर वृहद् मस्तिष्क बनाते हैं। वृहद् मस्तिष्क के गोलाद्धों के तल पर थेलेमस और हाईपो थेलेमस है। आचार्य महाप्रज्ञ ने हाईपो थेलेमस को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। हमारे शारीरिक, मानसिक एवं भावानात्मक स्थितियों में यह महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

पश्च मस्तिष्क में 3 भाग होते हैं — दो सेरीब्रम, मेडुला तथा पोन्स। अभी हम इनकी विस्तार में चर्चा नहीं करेंगे।

मस्तिष्क ही शरीर का वह हिस्सा है जहां से शरीर तथा मन की सभी गतिविधियां नियंत्रित होती हैं। यदि मस्तिष्क कार्य करना बंद कर दें तो फिर चाहे श्वसन और हृदय चलता रहे, शरीर शास्त्री उस व्यक्ति को मृत मान लेते हैं। हमारी सारी गतिविधियां, अनुभव करने की क्षमता, मांसपेशियों की गतिविधियां वगैरह सभी मस्तिष्क से नियंत्रित होती है। यहां तक कि ऑटोनोमिक नाड़ी तंत्र को भी मस्तिष्क कुछ हद तक नियंत्रित करता है।

लिम्बिक तंत्र — याददाश्त व अन्य अवचेतन (Subconscious)
क्रियाएं इस तंत्र के द्वारा नियंत्रित होती है। यह तंत्र हिप्पोकैम्पस, एमीग्डेला तथा एन्टोराइनस जिसे पेरा लिम्बिक तंत्र कहते हैं तथा थेलेमस, स्ट्राइटम तथा हाइपोथेलेमस के कुछ हिस्सों से मिलकर बनता है। ये सभी मस्तिष्क के छोर पर स्थित होते हैं और इसलिए इसे लिम्बिक तंत्र कहते हैं। हिप्पोकैम्पस तथा एमीग्डेला इस तंत्र के प्रमुख अंग होते हैं और मस्तिष्क से विभिन्न न्यूरोनस् से जुड़े होते हैं।

कार्य — मस्तिष्क के कार्य के अन्तर्गत स्पर्श, स्वाद, गंध, दृष्य, ध्वनि की इन्द्रिय संवेदना होती है। यह तंत्र ऑटोनोमिक नाड़ी तंत्र तथा हाइपोथेलेमस के द्वारा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव को यह नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त यह इमोशन तथा विशेषतः गुस्सा डर और सेक्स से संबंधित इमोशन को नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त यह तंत्र लंबे समय की

याददाशत को बनाए रखता है। अतः जो बातें याददाशत का हिस्सा बन गई हैं वे बनी रहती हैं। लिंबिक तंत्र के रोगग्रस्त होने पर वर्तमान याददाशत चली जाती है लेकिन पुरानी बातें याद रहती हैं।

मेरु रज्जु — केन्द्रिय नाड़ी तन्त्र का यह दूसरा मुख्य अंग है। मेरु दंड इसके भीतरी भाग में स्थित मेरु रज्जु मस्तिष्क के आखिरी हिस्से मेडुला का निरंतर क्रम कहा जा सकता है। मेरु रज्जु प्रायः आयताकार होती है तथा कमर के नीचे के हिस्से में समाप्त होती है। इससे कई नाड़ियां निकलती हैं जो शरीर के अंगों की स्वैच्छिक गतिविधियों को नियंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिबिम्बित गतिविधियां भी मेरु रज्जु के कारण ही होती हैं। मेरु रज्जु का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इसकी लम्बाई में ज्ञानवाही और क्रियावाही दो प्रकार की नाड़ियां होती हैं। दोनों मिलकर सूचनाओं का आदान-प्रदान का कार्य करती हैं। ज्ञानवाही नाड़ियां इन्द्रियों द्वारा संग्रहित संदेशों को मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं। और क्रियावाही मस्तिष्क से प्राप्त संचालन सम्बन्धी संदेशों को धड़ एवं पैर की मांसपेशियों तक पहुंचाती हैं।

परिधिगत (Peripheral) नाड़ी तंत्र

विभिन्न अंगों को मस्तिष्क से जोड़ने वाले नाड़ी तंत्र को परिधिगत (Peripheral) नाड़ी तंत्र कहा जाता है। इसके मुख्य भाग हैं —

1. क्रेनियल नाड़ियां
2. स्पाइनल नाड़ियां
3. गेन्गलियान

12 जोड़ी क्रेनियल नाड़ियां तथा 31 जोड़ी स्पाइनल नाड़ियां मिलकर यह नाड़ी तंत्र बनाती हैं। स्पाइनल नाड़ियां मेरु रज्जु से दो मूल से जुड़ी रहती हैं, अग्र मूल तथा पश्च मूल। अग्र मूल में मांसपेशियों की गति के तंतु होते हैं जबकि पश्च मूल में संवेदन के तंतु होते हैं। दर्द, कम्पन, छुअन, गर्म, ठंडा ये सभी अहसास पश्च मूल से होते हुए मस्तिष्क तक पहुंचते हैं। इसके अतिरिक्त क्रेनियल नाड़ियां भी इसी तरह मध्य मस्तिष्क और पश्च मस्तिष्क से जुड़ी रहती हैं और चेहरे, जीभ तथा निगलने का यंत्र वगैरह को नियंत्रित करने में मदद करती हैं।

स्पाइनल नाड़ियां गर्दन तथा कमर में गुच्छे के रूप में निकलती हैं तथा हाथ व पैर में फिर अलग-अलग होकर पहुंचती हैं। हाथ में जानें वाली

नाड़ियों सरवाइकल प्लेक्सस तथा पैरों में जाने वाली नाड़ियां लम्बर व सेक्रल प्लेक्सस कहलाती हैं।

ऑटोनोमिक नाड़ी तंत्र (तंत्रिका तंत्र)

यह तंत्र शरीर में नाड़ी तंत्र का एक हिस्सा है जो कि केन्द्रीय नाड़ी तंत्र के सीधे नियंत्रण में नहीं है। यह अपना कार्य स्वतंत्र रूप से करता है। यह तंत्र मुख्यतः धमनी तंत्र, शरीर के आंतरिक अंग जैसे आमाशय, आंतें, हृदय, ग्रंथिका तंत्र, अंतःस्रावी ग्रंथियां (Endocrines) तथा गुर्दे आदि को नियंत्रित करता है।

यह नाड़ी तंत्र अवचेतन स्थिति में होने वाले सारे कार्य करता है। शरीर में होने वाली वे क्रियाएं जो आंतरिक अंगों के वातावरण को बदल सकती हैं। इस तंत्र के शिथिल या उत्तेजित होने पर होती है। जब भी शरीर को किसी परिवर्तन की आवश्यकता होती है तुरंत ही यह तंत्र क्रिया करता है। इस तंत्र के द्वारा संचालित होने वाली मुख्य क्रियाओं में खून का विभिन्न अंगों में वितरण, रक्त चाप को सामान्यतः रखना, श्वसन को सामान्य रखना, आंतों को गति बनाए रखना, आंसू, लार तथा अन्य पाचक एन्जाइम का स्रावण है।

संरचना

यह नाड़ी तंत्र एक गेन्गलियोन (गांठ के आकार का अंग) से प्रारम्भ होता है। इस तंत्र में दो प्रकार की नाड़िया होती हैं -

1. सिम्पेथेटिक
2. पैरासिम्पेथेटिक

गेन्गलियोन से पोस्ट गेन्गलियोनिक नाड़ियां निकलती हैं जो शरीर के सभी अंगों में जाती हैं। मस्तिष्क के वक्कुल (कारटेक्स) से कुछ नाड़ियां ऑटोनोमिक नाड़ी तंत्र से जुड़ती हैं तथा इस नाड़ी तंत्र व शरीर की आवश्यकताओं को संतुलित करती है।

सिम्पेथेटिक तंत्र

इसके नाड़ी तंतु कमर के पास रीढ़ की हड्डी के पहले थोरेसिक से दूसरे लम्बर तक 14 तंतु निकलते हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों में जाते हैं।

प्रायः सिम्पेथेटिक व पेरासिम्पेथेटिक तंत्र एक दूसरे के विरोधाभासी होते हैं और यह विरोधाभास मस्तिष्क की जटिल प्रक्रिया के फलस्वरूप होता है। ये दोनों तंत्र आपस में मिलकर क्रिया करते हैं। यह क्रियाएं विभिन्न रसायन तत्वों के स्रावण से होती हैं। पेरासिम्पेथेटिक तंत्र एसीटाइल कोलीन का स्रावण करता है तथा सिम्पेथेटिक तंत्र नारएड्रीनेलीन, एड्रीनेलीन तथा डोपामीन का स्रावण करता है तथा ये सभी न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में कार्य करते हैं।

कार्य प्रणाली — ये न्यूरोट्रांसमीटर शरीर के विभिन्न अंगों में स्थित रिसेप्टर पर स्थित प्रोटीन पर क्रिया करते हैं तथा उससे बीच में कई ट्रांसमीटर निकलते हैं तथा अंत में ए.एम.पी. के द्वारा क्रिया सम्पन्न होती है।

प्रभाव — सिम्पेथेटिक तंत्र शरीर के कई अंगों पर कार्य करता है।

(1) अन्तः स्रावी ग्रन्थियां — इसके कारण निम्न हार्मोन्स का स्राव बढ़ता है —

- (i) रेनिन जो शरीर में रक्त चाप को बढ़ाता है।
- (ii) इन्सुलिन का स्रावण कम होता है तथा शरीर में शक्कर की मात्रा बढ़ती है।
- (iii) इसके अतिरिक्त — पेराथारमोन, थाइरोक्सिन का स्रावण भी बढ़ाता है। गेस्ट्रिन आदि का स्रावण कम होता है।

हृदय — सिम्पेथेटिक तंत्र हृदय की गति बढ़ाता है, हृदय की कार्यक्षमता बढ़ता है तथा धमनियों को संकुचित कर रक्त चाप बढ़ाता है।

पेरासिम्पेथेटिक तंत्र

इस नाड़ी तंत्र के तंतु केन्द्रीय नाड़ियों से (तृतीय, सप्तम, नवम व दशम) से तथा नीचे कमर में दूसरे तथा तीसरे सेक्रेल नाड़ियों से निकलते हैं। यहां से निकल कर ये नाड़ियां शरीर के सभी हिस्सों में जाती हैं विशेषतः आंसू ग्रन्थि, लार ग्रन्थि, हृदय, डायफ्राम आमाशय, प्रजनन अंग तथा मूत्राशय में जाती है।

कार्यप्रणाली — एसीटाइल कोलीन शरीर में स्थित रिसेप्टर पर दो तरह से कार्य करता है —

निकोटिनिक तथा मस्कीनिक। निकोटिनिक रिसेप्टर एड्रीनलसं पर कार्य करता है तथा दूसरे रिसेप्टर शरीर के दूसरे अंगों पर कार्य करते हैं।

प्रभाव

हृदय — यह तंत्र वेगस तंत्रिका के जरिए असर करता है। इससे हृदय की गति कम होती है। हृदय की संकुचन क्षमता कम करता है। यह धमनियों को शिथिल करके रक्त चाप कम करता है।

आमाशय — यह तंत्र आमाशय व आंतों की गति बढ़ाता है तथा मांसपेशियों का संकुचन भी करता है। इसके अतिरिक्त पाचक एन्जाइम्स का स्रावण भी बढ़ाता है।

श्वसन तंत्र — यह तंत्र सांस की नलियों का संकुचन बढ़ाता है तथा स्रावण भी बढ़ाता है।

इसके अतिरिक्त यह तंत्र मूत्र के विसर्जन में प्रमुख भूमिका रखता है।



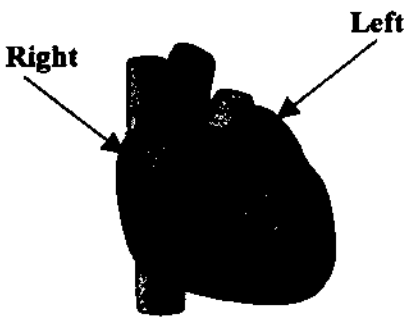
शरीर रोगों में प्रेक्षा के प्रयोग

प्रेक्षा सिद्धान्त और प्रयोग की आधुनिक शरीर शास्त्र की दृष्टि से हम कुछ बीमारियों और उनके चिकित्सा के संबंध में चर्चा करेंगे। वे हैं -

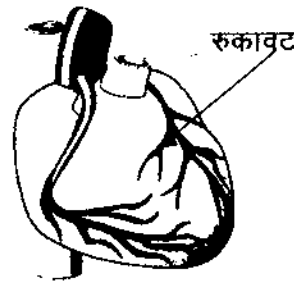
1. हृदय रोग
2. उच्च रक्तचाप
3. दमा
4. उदर रोग
5. मानसिक अवसाद (डिप्रेशन)

हृदय रोग

आयुर्विज्ञान के अनुसार हृदय रोग विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं—वाल्व के, मायोकार्डियम के, पेरिकार्डियम के, नाड़ी संचार के व हृदय में रक्त प्रवाह के। आज बोलचाल की भाषा में जिसे हृदय रोग माना जाता है और जो अकाल मृत्यु का कारण बनता है वह है हृदयाघात या हार्ट अटैक (Heart Attack) जिसे मेडिकल भाषा में कारोनरी आरट्री डीजीज कहते हैं। वास्तव में कारोनरी धमनी हृदय में खून का प्रवाह करती है जो दो (बायां व दायां) भागों में अलग-अलग रक्त का संचार करती है। इनमें से किसी भी हिस्से के बंद होने से हार्ट अटैक हो सकता है। खून का दौरा बंद होने के कई कारण होते हैं जिसमें से प्रमुख हैं - इन धमनियों में वसा अथवा कोलेस्ट्रॉल (Cholestrol) का जमाव होना जो धीरे-धीरे धमनी को बंद करता जाता है और धमनी के पूर्ण बंद होने पर हृदयाघात हो जाता है। प्रायः यह अचानक



हार्ट (Heart)



यह हिस्सा काम करना
बन्द/मृत प्रायः

होता है लेकिन बहुत से व्यक्तियों में श्रम करने पर जो दर्द होता है जिसे एन्जाइना (Angina) कहते हैं, वह भी इस बीमारी का पूर्व रूप है।

धमनियों में वसा जमा होने के कई कारण हैं, जिनमें निम्न प्रमुख हैं अनुवंशिकता,

- (i) डाईबिटीज,
- (ii) उच्चरक्तचाप
- (iii) धूम्रपान

वर्तमान में जीवन शैली परिवर्तन व ध्यान के द्वारा इस बीमारी को रोकने के अनेक प्रयोग किए गए हैं। ध्यान के अतिरिक्त भोजन में वसा या घी-तैल के उपयोग की कमी भी इस बीमारी को रोकने में सहायक सिद्ध होती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने प्राणायाम व कायोत्सर्ग, विभिन्न प्रकार के प्रेक्षा प्रयोग तथा 'ल' के ध्यान को हृदय रोग को रोकने में सहायक बताए हैं। भारत में इस पर कुछ स्थानों पर प्रयोग हो रहे हैं। दो स्थानों के प्रयोगों सम्बन्धित चर्चा हम निम्न प्रकार से करेंगे।

- (i) दिल्ली के आयुर्विज्ञान चिकित्सालय (एम्स) में डॉ. मनचन्दा हृदय रोग निवारण के क्षेत्र में प्रमुख रूप से कार्य कर रहे हैं। पहले हृदयाघात को रोकने में तथा एक बार जिन्हें यह रोग हो गया है उनमें पुनः इस बीमारी को बढ़ने से रोकने के लिए। उन्होंने पाया कि जो लोग नियमित रूप से प्राणायाम व कायोत्सर्ग दोनों का प्रयोग करते हैं उनमें धीरे-धीरे एन्जाइना (Angina) के लक्षण कम हो जाते हैं। प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमें सभी व्यक्ति ठीक नहीं हो पाए लेकिन करीब 30-40 प्रतिशत मरीजों को आराम मिला। इन मरीजों की एजियोग्राफिक नतीजे भी आश्चर्यजनक रूप से उत्साहवर्धक रहे हैं और यह पाया गया कि अधिकांश लोगों में जो धमनी में रुकावट थी वह बढ़ी नहीं और करीब 15-20 प्रतिशत लोगों में यह रुकावट कम हो गई या खुल गई।
- (ii) डॉ. अरविन्द जैन ने जोधपुर में अपने अध्ययन में करीब 25 हृदय रोग के मरीजों का अध्ययन किया। हृदय रोग के ये मरीज 6 माह तक प्राणायाम व कायोत्सर्ग की क्रियाएं करते रहे। इनमें

से 10 मरीजों को पर्याप्त लाभ हुआ। उनका खून में कालेस्ट्रॉल तथा वसा कम होकर सामान्य हो गई, सीने में दर्द की शिकायत कम हो गई तथा इकोकार्डियोग्राफी की रिपोर्ट में हृदय की कार्यक्षमता बढ़ गई। अतः यह निश्चित है कि प्रेक्षाध्यान की क्रियाएं हृदय रोगों में उपचार के लिए सहायक सिद्ध होती हैं।

प्रश्न है कि प्रेक्षाध्यान की क्रियाओं से ऐसा कैसे हो जाता है? विज्ञान के पास अभी पूर्णतया इसकी समझ नहीं आ पाई है, ऐसा होता है यह तो प्रयोगों से पता चल गया, क्यों हुआ, अभी समझना है।

डॉ. अरविन्द जैन के अनुसार संभवतया शारीरिक क्रियाओं से जो बाहरी वसा के आवरण हैं उनमें कुछ परिवर्तन होते हैं और वे लाइपोप्रोटीन (Lipoprotein) को खून में कम करते हैं। यह भी संभव है कि प्लेटलेट (Platelet) का जुड़ना भी इस क्रिया से कम होता है, और यह दोनों कोरोनरी आर्टरी में रुकावट को नहीं बढ़ने देते और जो रुकावट है उसे कम करते हैं। हृदय रोग के मरीजों पर प्रेक्षाप्रयोग के परिणाम निम्न सारणी में संकलित हैं।

हृदय रोग के मरीजों पर प्रेक्षा के प्रयोग

मरीजों की संख्या				दर्द/प्रतिदिन		अधिकतम एसटी. डिप्रेशन	
आयु वर्ग	कुल	पुरुष	महिलाएं	औसत प्रेक्षा से पहले	बाद	प्रेक्षा के पहले	प्रेक्षा के बाद
31-45	03	03	-	0.8 ± 0.6	06 ± 8.4	2.1 खण्ड	1.4 खण्ड
46-60	15	11	04	टी.एम.टी. के दौरान कसरत जब दर्द शुरू हो जाए (औसतन) 6.9 मिनट प्रेक्षा के पहले 9.2 मिनट प्रेक्षा के बाद			
61 +	07	04	03				
	25	18	07				

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार — 'लं' का ध्यान हृदय रोग को कम करता है। इस पर कोई वैज्ञानिक शोध नहीं हुई है अतः इसके बारे में कुछ कहना संभव नहीं है। ध्वनि का उपयोग पेरसिम्पैथेटिक सिस्टम (Parasympathetic System) को उत्तेजित करता है और यह सिस्टम कोरोनरी आर्टरी को ढीला करता है, रास्ता चौड़ा कर खून का दौरा बढ़ा सकता है, यह संभावना हो सकती है। इसके लिए वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। हृदय की अन्य बीमारियों विशेषतः वाल्व की, मायोकार्डियम अथवा पेरीकार्डियम पर अभी तक जितने प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के परिणाम प्राप्त हुए हैं तथा जो प्राप्त अभी तक करने हैं वे उत्साहवर्धक हैं और भविष्य में इस दिशा में होने वाले प्रयत्नों से प्रेक्षाध्यान की उपयोगिता सिद्ध हो सकेगी।

उच्च रक्त-चाप (Hypertension)

उच्च रक्त-चाप आज काफी साधारण बीमारी बन गई है। दुनिया के 20 प्रतिशत से ज्यादा लोग इसके शिकार हैं। बढ़ता तनाव, परिवर्तित जीवन शैली, असंतुलित भोजन व. भाग दौड़ की जिंदगी संभवतः इसके कारण हो सकते हैं। हालांकि 80 प्रतिशत मरीजों में उच्च रक्तचाप के कारण का पता लगाना बाकी है। इसीलिए मेडिकल साइंस इसे एसेन्सियल उच्च रक्तचाप (Essential Hypertension) कहती है। इसके अतिरिक्त एड्रीनल व थाइराइड के अधिक स्राव से भी हाईपरटेंशन हो सकता है। उच्च रक्तचाप अपने आप में कोई विशेष लक्षण पैदा नहीं करता। सर दर्द, चक्कर या अस्वस्थ महसूस होना ही इसके आम लक्षण हैं, जिसे अधिकांश लोग थकान के कारण मान कर उस पर गौर नहीं करते। लेकिन लम्बे समय तक उच्च रक्तचाप रहने से कई बीमारियां होने की आशंका बढ़ जाती है। जैसे लकवा, हृदयाघात या हृदय की कार्यशीलता का कम होना, गुर्दे के विकार, ब्रेन हेमरेज, आँखों में हेमरेज आदि। अतः यह आवश्यक है कि उच्च रक्तचाप को कभी भी हल्के रूप में नहीं लेना चाहिए।

प्राणायाम के परिणाम

प्रायः यह देखा जाता है कि हल्का उच्च रक्तचाप जीवन शैली परिवर्तन व आहार परिवर्तन से ही ठीक हो जाता है और यहां पर प्राणायाम बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। शिथिलीकरण से तनाव कम होता है व इससे एड्रीनल रेनिन सिस्टम पर असर होगा और उनका स्राव कम होगा। यह होने पर रक्तचाप कम हो जाएगा। यह धारणा वैज्ञानिक रूप से सिद्ध पाई गई है।

2003 में विश्व की प्रथम उच्च रक्तचाप समिति की सिफारिश में उच्च रक्तचाप के इलाज का पहला बिन्दु जीवन शैली परिवर्तन तथा ध्यान का है। उनके अनुसार उच्च रक्तचाप कम करने के लिए यह प्रयोग दवाई शुरू करने से पहले करना चाहिए। हालांकि उस समिति ने किसी विशेष ध्यान के प्रयोग के बारे में नहीं कहा लेकिन प्रेक्षाध्यान तथा प्राणायाम इस तरह के प्रयोगों में अग्रणी है। न केवल इसके माध्यम से साधारण हाईपरटेंशन पूर्णतया ठीक हो सकता है बल्कि गंभीर उच्च रक्तचाप भी कम हो सकता है। इस बारे में जोधपुर में एक प्रयोग किया गया तथा पाया गया कि 25 में से 14 मरीजों में रक्तचाप की बीमारी में अत्यन्त लाभ रहा। यहां तक कि चार मरीजों को दवा की आवश्यकता ही नहीं रही तथा शेष मरीजों में दवा की मात्रा कम हो गई।

हाइपरटेंशन में प्रेक्षा के प्रयोग

आयु वर्ग		लिंग		प्रेक्षा से पूर्व		प्रेक्षा के 3 माह बाद	
		पु.	स्त्री	सिस्टोलिक	डायस्टोलिक	सिस्टोलिक	डायस्टोलिक
31-40	07	04	03	150 + 17	98 + 9	130 + 11	90 + 4
41-50	10	06	04				
51 +	08	04	04				
	25	14	11				

इस बारे में विभिन्न प्रयोग दिल्ली के एम्स में किए गए हैं तथा 2-4 सप्ताह के प्राणायाम के अभ्यास के बाद उच्च रक्तचाप वाले व्यक्ति सामान्य जीवन बिताने लगते हैं। लेकिन प्राणायाम हमेशा करने पर ही हाइपरटेंशन हमेशा के लिए समाप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग जिन्हें अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों जैसे एड्रीनल या थाइराइड की अधिकता से हाईपरटेंशन होता है, उन्हें भी तैजस केन्द्र या विशुद्धि केन्द्र पर ध्यान करने से लाभ मिल सकता है।

दमा (Bronchial Asthma)

वर्तमान में सांस की बीमारियां बहुत बढ़ी हैं। इसका कारण संभवतया बढ़ता प्रदूषण है। फैक्ट्रियों से उठता धुआं हो या वाहनों से उठता हुआ

धुआं लेकिन एक अन्य कारण है इमोशन। बढ़ता तनाव, भागदौड़ की जिंदगी ने भी इस बीमारी को बढ़ाया है। दमा के अन्य कारण हैं - एलर्जी (Allergy) व आनुवंशिकता। देखा गया है कि ल्यूकोट्राइनस का स्राव दमा का कारण है और ल्यूकोट्राइनस न केवल एलर्जी से बनते हैं बल्कि तनाव के कारण भी बनते हैं। दमे की बीमारी श्वास की अत्यन्त जटिल बीमारी है। इस बीमारी के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने प्राणायाम को बहुत उपयोगी बताया है। श्वासप्रेक्षा भी इस बीमारी के उपचार में काफी सहायक है। विभिन्न प्रयोगों से देखा गया है कि भावों को नियंत्रित करने पर मरीजों में दमा के दौरे नहीं होते। अचानक जो स्वभाव में परिवर्तन होता है वह ल्यूकोट्राइनस की मात्रा बढ़ा देता है और श्वास की तकलीफ शुरू हो जाती है।

श्वासप्रेक्षा के प्रयोग

श्वास प्रेक्षा के प्रयोग करीब 50 मरीजों पर जोधपुर के हॉलिष्टिक सेन्टर पर किए गए। वहां पाया गया कि अधिकांश व्यक्तियों में न केवल दमा के दौरे की संख्या कम हुई साथ ही उनका वेग भी कम हो गया। इस प्रयोग में पाया गया कि 60 प्रतिशत मरीज स्वयं को स्वस्थ महसूस करने लगे, कार्य क्षमता में वृद्धि हुई, स्टीरायड इन्हेलर की मात्रा में कमी तथा स्पाइरोमीट्री में भी सुधार हुआ। इस प्रयोग के परिणाम आगे की तालिका में दर्शाए गए हैं।

यह संभवतया मानसिक शान्ति और श्वसन नली की बार बार उत्तेजना (stimulation) से संभव हुआ होगा क्योंकि यह दो बातें ल्यूकोट्राइनस के स्राव को कम करती है। प्राणायाम व श्वास प्रेक्षा का उपयोग श्वास की अन्य बीमारियां यथा क्रोनिक ब्रोन्काइटिस तथा एम्फीसीमा (Emphysema) में भी काफी उपयोगी साबित हो सकता है। यह दोनों बीमारियां भी धुएं के कारण विशेषतः धूम्रपान से होती है और अभी तक इन बीमारियों का स्थाई इलाज मेडिकल साइंस के पास नहीं है। हालांकि इन बीमारियों में श्वासप्रेक्षा का उपयोग विस्तृत अध्ययन के बाद ही बताया जा सकता है लेकिन जिस तरह से दमा के रोगी प्राणायाम व श्वास प्रेक्षा से लाभान्वित होते हैं ये मरीज भी ठीक हो सकते हैं। पूर्व में हृदय रोग, उच्च रक्तचाप और अब दमा के बारे में जिन प्रयोग और परिणामों को जाना है इससे यह सिद्ध हो रहा है कि प्रेक्षा के परिणाम लाभकारी हैं। दमा में प्रेक्षा के प्रयोग के परिणाम निम्न सारणी में संकलित हैं।

दमा मे प्रेक्षा के प्रयोग

आयु वर्ग	पुरुष	स्त्री	औसत इन्हेलर की आवश्यकता		स्पाइरोमीट्री FEV ₁		दमा के दौरों में कमी
			प्रेक्षा के पहले	प्रेक्षा के बाद	प्रेक्षा के पहले	प्रेक्षा के बाद	
16-30	25	10	4 बार	2 बार	60 प्रतिशत	60 प्रतिशत	50 प्रतिशत
31-45	5	10	6 बार	4 बार प्रतिशत	50 प्रतिशत	60 प्रतिशत	33

उदर रोग

मौलिक इच्छाओं में पहली है भोजन की इच्छा। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमारे सारे शरीर की क्रियाएं भोजन के द्वारा संचालित होती हैं। हम जो खाते हैं उसका एक रसायन बनता है और वह रसायन हमारे जीवन की प्राण ऊर्जा बनकर शरीर तंत्र का संचालन करता है। विभिन्न उदर रोग भोजन की अनियमितता से ही होते हैं। वृद्ध लोगों के लिए गरिष्ठ भोजन उपयोगी नहीं माना गया है। जैन धर्म में रात्रि भोजन का निषेध है। देखा गया है कि भोजन करने के बाद यदि 3 घण्टे तक नहीं सोया जाये तो पाचन क्रिया पूर्ण हो जाती है। लेकिन आज उदर रोगों में वृद्धि होती जा रही है। गैस, अपच, अल्सर, हाइपरएसीडिटी तो बच्चे भी पहचानने लगे हैं। इन बीमारियों का कारण स्पष्ट रूप से नहीं पता लगता है लेकिन अधिक अम्ल का बनना, जंक फूड, फास्ट फूड, अधिक शराब का सेवन, धूम्रपान व तनाव के कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त कम शारीरिक श्रम गैस बनने का कारण हो सकता है। लंबे समय तक इन बीमारियों का बना रहना कैंसर का पूर्व लक्षण भी हो सकता है और कैंसर की भयावहता तो सर्वविदित है ही। इसके उपचार के लिए यह जरूरी है कि सात्त्विक भोजन किया जाए, समय पर खाना खाया जाए और तनाव से मुक्ति पाई जाए।

प्रेक्षा से पाचन क्रिया में सुधार

आचार्य महाप्रज्ञ ने उदर रोगों से बचने व ठीक होने के लिए प्रेक्षाध्यान की बात कही है। प्रेक्षाध्यान शिथिलीकरण से आरम्भ होता है और शिथिलीकरण

सर्वप्रथम तनाव से मुक्ति देता है। तनाव का सीधा संबंध आमाशय में अम्ल के स्राव से है। यदि तनाव कम होगा तो हाईपर एसीडिटी नहीं रहेगी। उसके बाद उदर प्रेक्षा का प्रयोग भी इन रोगों को रोकने में सहायता करता है। इस क्रिया से संभवतः डायफ्राम की ऐच्छिक गति से वेगस नाड़ी को नियंत्रित किया जा सकता है। प्रेक्षा से पेरिसिम्पेथेटिक सिस्टम को शांत करने से आमाशय में न केवल अम्ल बल्कि गैस्ट्रिन का स्राव कम होता है और अल्सर व गैस दोनों परेशानियाँ कम होती हैं। इसके अलावा पाचक द्रव्यों का स्राव बढ़ने से भोजन का पाचन अच्छी तरह से होगा। इसके अतिरिक्त वेगस नाड़ी को उपशांत करने से आमाशय व आंतों की गति नियंत्रित होती है। भोजन को पाचन के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। यदि पाचन क्रिया सही होगी तो गैस, अपच व अल्सर होने की संभावना कम रहेगी तथा पाचन क्रिया पूर्ण होने पर रसायनों का मिश्रण खून में बराबर होने से शरीर स्वस्थ रहेगा।

आई.बी.एस.

आई.बी.एस. (Irritable Bowel Syndrome) प्रायः यह बीमारी तनाव के कारण होती है। अनुमान है कि 20 प्रतिशत लोग इससे ग्रसित हैं। यह जीवन भर का रोग है और इसका जीवन पद्धति, खान-पान से गहरा संबंध होता है। संतुलित, व्यवस्थित, तनाव रहित जीवन अपनाकर इसका मरीज रोग के लक्षणों से राहत पा सकता है। मानसिक तनाव, दुःख, परेशानी के कारण आंतों की चाल बदल सकती है जिसके अलग-अलग लक्षण हो सकते हैं। यदि चाल तेज है तो दस्त और कम होने पर कब्ज हो सकती है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार विशेष भोज्य पदार्थों से भी पेट में प्रतिक्रिया होकर यह बीमारी हो सकती है। इस रोग पर काबू पाने के लिए सात्त्विक भोजन व तनाव मुक्त जीवन आवश्यक है। आज के व्यस्त जीवन में खान-पान को सही रखना बहुत आवश्यक है। साधारण भोजन हितकारी भोजन है।

जीवन के मूल आधार

आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं कि जीने के मूल आधार है — पहला श्वास, दूसरा आहार। आदमी खाता है तो जीता है। खाना बंद कर दे तो वह जी नहीं पाएगा। दो मूलभूत आवश्यकताएँ हैं श्वास लेना और खाना। स्थिति यह है कि आदमी श्वास लेना अच्छी तरह नहीं जानता और खाने के बारे में भी पूरी जानकारी नहीं है। श्वास अपने आप आता है और खाए बिना मनुष्य का काम नहीं चलता। लेकिन इसे सही कैसे किया जाए? जीवन के लिए

महत्त्वपूर्ण हैं आहार विवेक। जन्म के प्रारंभिक क्षण से अंतिम क्षण तक आहार चलता रहता है। हम खाने के बारे में बहुत कम ध्यान देते हैं न जाने कितने लोग शाकाहार छोड़कर मांसाहार में चले जाते हैं। स्वास्थ्य के लिए यह हानिकारक है। शारीरिक बीमारियों को पैदा करने में भी ये प्रमुख कारण बन रहे हैं। भोजन के बारे में जैसे जानकारी बढ़ रही है मांसाहार से लोग घबरा रहे हैं। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा ऐसी चेतना जगाई जाती है जिससे ऐसी आदतें सर्वथा छूट जाती हैं। भोजन का विषय इतना ही नहीं है। चीनी व नमक का अधिक प्रयोग भी कम खतरनाक नहीं है। ज्यादा नमक और चीनी स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं।

आहार नली और श्वास नली

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार आहार के समय मौन का प्रयोग करना चाहिए। आहार के समय बोलना नहीं चाहिए, न हंसना चाहिए। शरीर की विचित्र व्यवस्था है। आहार नली और श्वास नली दोनों का ढक्कन एक है, जब हम निगलते हैं तब श्वास की नली पर ढक्कन आ जाता है और नहीं निगलते हैं तो वह फिर खुल जाता है। यदि हम बात करते हुए खाएं तो अन्न श्वास नली में जा सकता है और व्यक्ति मर भी सकता है। आहार के साथ भावक्रिया का प्रयोग भी चलना चाहिए। खाते समय केवल यही ध्यान रहे कि मैं खा रहा हूँ। खाने को भी ध्यान का प्रयोग बना ले, एक साधना बना ले तो भोजन सही हो जाएगा और यदि यह नहीं होता तो कब्ज, अपच तथा अन्य बीमारियां हो सकती हैं। यद्यपि यह अत्यंत साधारण सी बात है कि भोजन के समय अन्य बातों में व्यस्त नहीं होना चाहिए लेकिन प्रत्येक व्यक्ति यही पर असावधानी बरतता है। इस ओर ध्यान रखना चाहिए।

विजातीय का निस्सरण

इसके अतिरिक्त आचार्य महाप्रज्ञ का कहना है कि विजातीय का निर्गम एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, कि जो मूल संचित हो रहा है उसका निर्गमन ठीक हो रहा है या नहीं। यह एक ऐसी बात है जो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को ही नहीं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचाती हैं। स्वास्थ्य में बड़ी बाधा है मल का निर्गमन ठीक न होना। हम खाते हैं, खाने के साथ-साथ मल का जमाव शुरू हो जाता है। अगर मल का सम्यक् निस्सरण नहीं हो पाता है तो घमनियां अकड़ जाएंगी। संभवतः निरंतर कब्ज के होने का (Chronic Constipation) यही कारण है।

मेडीकल साइंस की भी यही धारणा है कि भोजन सात्त्विक हो तथा मन स्थिर हो तो बहुत सी पेट की बीमारियां जैसे अल्सर व आई.बी.एस. जैसे रोगों से बचा जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ का मतव्य भी यही है कि भावक्रिया व कायोत्सर्ग से भाव स्थिर होने से बहुत से पेट के रोगों से बचा जा सकता है।

मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) (Depression)

आज के भौतिक युग की एक और देन है डिप्रेशन। चिकित्सा शास्त्रियों का मानना है कि कुल आबादी का 70 प्रतिशत भाग जीवन में कभी न कभी डिप्रेशन का शिकार रहता है। डिप्रेशन के लक्षण हैं मन नहीं लगना, किसी कार्य को करने का उत्साह नहीं होना, बिना कारण क्रोधित होना, नींद नहीं आना या हर समय सोते रहना। कभी-कभी मानसिक रोग बढ़ भी सकता है तथा साइकोसिस हो सकता है, जिससे व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है। कई बार डिप्रेशन में व्यक्ति गुमसुम हो जाता है। परिस्थितियों से बेखबर हो जाता है, पुकारने पर ऐसा लगता है जैसे नींद से जगाया है।

कारण और निवारण

अभी ठीक से डिप्रेशन के कारण का पता नहीं चला है लेकिन जो औषधियां इसके उपचार में काम आती हैं वे सभी मस्तिष्क में डोपामीन की मात्रा बढ़ाती हैं, सेरोटॉनिन अपटैक को रोकती हैं। अतः कहा जा सकता है कि डोपामीन का स्रावण मस्तिष्क में होना आवश्यक है। देखा गया है कि ये रासायनिक स्राव मस्तिष्क में विद्युत तरंगें पैदा करते हैं यानि रासायनिक ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में बदल जाती है क्योंकि इनके स्रावण से कोशिकाओं में सोडियम और पोटेशियम आयन बाहर-अन्दर होते हैं और कोशिकाओं में एक विद्युत् प्रारंभ हो जाती है। ई.सी.टी. या बिजली के शॉट जो कि गंभीर मानसिक रोगियों व पागल व्यक्ति को दिए जाते हैं उसका भी यही सिद्धान्त है कि बाहर से विद्युत प्रवाह मस्तिष्क के भीतरी प्रवाह को उतार देता है और व्यक्ति का मानसिक संतुलन वापस आने की संभावना हो जाती है।

दवाइयों के अतिरिक्त आत्म नियंत्रण एक ऐसी विधा है जिससे मनुष्य डिप्रेशन से बाहर आ सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ का कहना है कि भगवान महावीर की वाणी है कि अनशन से आत्म नियंत्रण करो। आत्मा के नियंत्रण में भोजन बड़ी बाधा है। ऊर्जा के साथ भोजन आलस्य भी लाता है और आलसी आदमी आत्म नियंत्रण नहीं कर पाता है।

जीवन विज्ञान

आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा के क्षेत्र में जीवन विज्ञान के नए अध्याय को प्रारम्भ किया है। पाठकों के लिए यहां जीवन विज्ञान की धारणा और उसके प्रयोग की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करेंगे। मनुष्य में विकास की तीन वृत्तियां उपलब्ध हैं —

1. जिज्ञासा
2. बुभूषा
3. चिकीर्षा

मनुष्य में जिज्ञासा है। वह प्रतिदिन नए-नए तथ्य जानना चाहता है। उसमें भूषा है। वह कुछ होना चाहता है। वह अपने आपको बदलना चाहता है। वह जैसा है, वैसा ही रहना नहीं चाहता। उसमें चिकीर्षा है। वह कुछ करना चाहता है।

शिक्षा प्रत्येक विकास की अधिष्ठात्री रही है। शिक्षा का मूल अर्थ है, अभ्यास। आज यह अर्थ विस्मृत हो गया है। आज शिक्षा का अर्थ हैं, अध्ययन। अभ्यास दो प्रकार का होता है —

1. ग्रहणात्मक अभ्यास
2. आसेवनात्मक अभ्यास

जानना शिक्षा है लेकिन जानना मात्र ही शिक्षा नहीं है। आसेवन भी शिक्षा है और यह शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। जीवन विज्ञान आसेवनात्मक शिक्षा का विशिष्ट उपक्रम है।

संतुलन का अभिप्राय

जीवन विज्ञान की परिकल्पना यही है कि शिक्षा प्रणाली संतुलित हो। संतुलित का अभिप्राय है कि जैसे शारीरिक विकास और बौद्धिक विकास का प्रयत्न किया जा रहा है, वैसे ही प्रयत्न मानसिक विकास और भावनात्मक विकास के लिए भी प्रयत्न हो। ऐसा होने पर ही शिक्षा प्रणाली संतुलित हो सकेगी।

संतुलन को प्रतिस्थापित करने वाले चार तथ्य हैं -

- ▶ प्राणधारा का संतुलन।
- ▶ जैविक संतुलन।
- ▶ क्षमता की आस्था का जागरण।
- ▶ दृष्टिकोण, व्यवहार और भावना का परिष्कार।

इनका प्रतिफलन चार आयामों में होता है -

- ▶ शारीरिक विकास।
- ▶ बौद्धिक विकास।
- ▶ मानसिक विकास।
- ▶ भावनात्मक विकास।

जीवन विज्ञान को जीवन के परिष्कार की प्रक्रिया कहा है। पाठकों के लिए संतुलन के चार तथ्यों का शरीर शास्त्रीय दृष्टिकोण यहां प्रस्तुत करेंगे।

1. संतुलन के लिए पहला तथ्य है - प्राण धारा का संतुलन। प्राण के दो प्रवाह हैं - इडा और पिंगला। आज की शरीर शास्त्रीय दृष्टि से इसे सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम और पैरासिम्पेथेटिक नर्वस सिस्टम कहा जा सकता है। प्राण के इन दोनों प्रवाहों में संतुलन होना आवश्यक है। जब प्राण का दायां प्रवाह अधिक सक्रिय हो जाता है तो उद्वेगता पनपती है, हिंसा और तोड़फोड़ की वृत्ति बढ़ती है। यदि प्राण का बायां प्रवाह सक्रिय होता है तो व्यक्ति में हीन भावना का विकास होता है, भय बढ़ता है, दुर्बलता आती है। दोनों का प्राण संतुलन संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।
2. संतुलन का दूसरा तथ्य है - जैविक संतुलन। इसका अर्थ है ग्रन्थियों का संतुलित स्राव। जब स्राव संतुलित होता है तो आदमी का बौद्धिक विकास होता है।
3. संतुलन का तीसरा तथ्य है - क्षमता की आस्था का जागरण। विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मनुष्य के मस्तिष्क में अपार क्षमता है। इसके संतुलन से मानसिक विकास होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य इस क्षमता का पांच-सात प्रतिशत का ही

उपयोग कर पाता है। जो दस प्रतिशत उपयोग करने लग जाता है वह महान व्यक्ति बन जाता है।

4. संतुलन का चौथा तथ्य है — परिष्कार। दृष्टिकोण का परिष्कार, व्यवहार का परिष्कार और भावना का परिष्कार। हमें यह जानना चाहिए कि इन तीनों का संचालक कौन है ?

वैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हाइपोथेलेमस तथा अतः स्नायी ग्रन्थियों का इन पर नियन्त्रण है अतः इनका परिष्कार आवश्यक है। यह मुख्य है क्योंकि यह उपादान कारण है। परिस्थितियाँ भी हमारे दृष्टिकोण, व्यवहार तथा भाव को प्रभावित करती हैं। किंतु इनका स्थान पहला नहीं है, यह निमित्त मात्र है।

परिष्कार का यह सूत्र ही मूल्यपरक शिक्षा है और यही जीवन विज्ञान है।

आधार और प्रक्रिया

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार जीवन विज्ञान के आधारभूत चार तत्त्व हैं—

- (1) शरीर
- (2) श्वास
- (3) वाणी
- (4) मन

इन चारों तत्त्वों के सम्यक् संचालन के लिए चार प्रक्रियाएं प्रस्तावित की हैं।

- (1) श्वास दर्शन
- (2) शरीर दर्शन
- (3) कायोत्सर्ग
- (4) जागरूकता

जीवन विज्ञान की प्रायोगिक बारह इकाइयाँ हैं —

- | | |
|---------------------|-------------------------|
| 1. ध्वनि | 2. संकल्प |
| 3. योगासन | 4. सम्यक् श्वास |
| 5. कायोत्सर्ग | 6. प्रेक्षाध्यान |
| 7. शरीर विज्ञान | 8. स्वास्थ्य विज्ञान |
| 9. मानसिक स्वास्थ्य | 10. भावनात्मक स्वास्थ्य |
| 11. मूल्यपरक शिक्षा | 12. अहिंसा प्रशिक्षण |

इनमें से ध्वनि, कायोत्सर्ग और आसन अत्यंत प्रभावकारी तथा लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं।

महाप्राण ध्वनि

- (i) महत्त्व — महाप्राण ध्वनि ध्यान की पूर्व भूमिका का निर्माण करती है। मस्तिष्क के स्नायुओं को सक्रिय बनाती है। मन की चंचलता को कम करती है। एकाग्रता बढ़ती है। इसके निरंतर अभ्यास से स्मरण शक्ति अच्छी होती है। पढ़ने में मन लगता है। बाहर के अशुद्ध वातावरण से बालक प्रभावित नहीं होता। श्वास-प्रश्वास मंद और दीर्घ होता है। स्वास्थ्य अच्छा रहता है, मन शांत और भाव निर्मल होते हैं।

महाप्राण ध्वनि पूरे वातावरण को तरंगित करती है।

- (ii) प्रयोग — समपादासन में खड़े रहें। शरीर को स्थिर एवं शिथिल रखें। नाक द्वारा धीरे-धीरे श्वास को भरें। अपने चित्त को कण्ठ-कूप स्वरयंत्र पर केन्द्रित करें। अब कंठ और नाक से म..... मं..... ध्वनि करते हुए मस्तक में गूंज का अनुभव करें। इस प्रकार महाप्राण ध्वनि करते समय भरा हुआ संपूर्ण श्वास धीरे-धीरे स्वतः ही बाहर जाता है। पुनः श्वास को भरें। भावना करें कि शरीर के चारों ओर महाप्राण ध्वनि से गुंजित तरंगों का वलय बन रहा है। ध्वनि का पांच बार गूंजन करें।

यह प्रयोग दिन में किसी भी समय किया जा सकता है। अपने समय का नियोजन करते हुए महाप्राण ध्वनि को प्रतिदिन करना अत्यंत लाभकारी है।

कायोत्सर्ग

- (i) महत्त्व — कायोत्सर्ग का अर्थ है — शिथिलीकरण। हम आज के इस एलोपैथिक और मेडिकल साइंस के जमाने में जी रहे हैं। इन सारी बातों को बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि सारी कठिनाइयां मानसिक तनाव से पैदा होती हैं। बीमारियां, जटिल आदतें और चिंतन की विकृतियां इन सबके लिए जिम्मेदार होता है — मानसिक तनाव। शिथिलीकरण या कायोत्सर्ग एक प्रक्रिया है तनाव विसर्जन की। जब तनाव कम होता है तो उसके साथ-साथ ये समस्याएं भी सुलझती हैं। अधिकांश साइकोसोमेटिक

बीमारियां तनाव के कारण होती हैं। जब तनाव कम होता है तो ये मनोकायिक बीमारियां अपने आप कम हो जाती हैं। अनिद्रा, चिंता, इनसे होने वाली कठिनाइयां, अपने आप मिटती हैं।

(ii) प्रयोग -

1. शरीर को स्थिर, शिथिल और तनाव-मुक्त करें। मेरुदण्ड और गर्दन को सीधा रखें। मांसपेशियों को ढीला छोड़ें, शरीर की पकड़ छोड़ें।
2. प्रतिभा की भांति शरीर को स्थिर रखें। चित्त को पैर से सिर तक क्रमशः प्रत्येक भाग पर ले जाएं। शिथिलता का सुझाव दें। शरीर शिथिल हो जाए। प्रत्येक मांसपेशी और प्रत्येक स्नायु शिथिल हो जाए।
3. अनुभव करें - शरीर का एक-एक भाग शिथिल होता जा रहा है। शरीर के प्रत्येक भाग में हल्केपन का अनुभव करें। पैर से सिर तक पूरा शरीर शिथिल हो गया है।

आसन

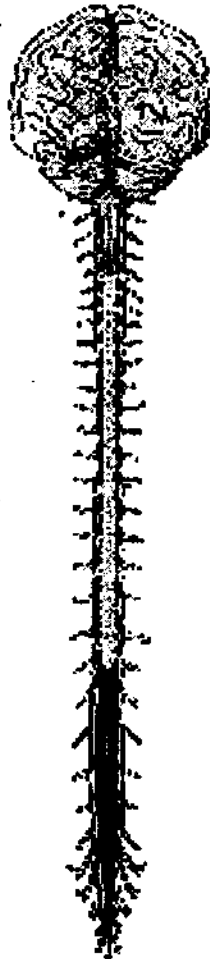
जीवन विज्ञान में 'आसनों' को विशेष महत्त्व दिया गया है। विभिन्न प्रकार के आसन मस्तिष्क के सभी भागों को जागरूक करते हैं। इसके अभाव में होने वाले परिणामों से आचार्य महाप्रज्ञ अवगत कराते हैं कि जब रक्त में, मस्तिष्क में तथा मूत्र में एमीनो एसिड की मात्रा बढ़ जाती है तो आदमी हिंसक बन जाता है। इनकी मात्रा में संतुलन स्थापित करना योगासन के द्वारा संभव है।

दो दिशाएं

शिक्षा के क्षेत्र में हमारे समक्ष दो दिशाएं हैं। एक है ज्ञान की दिशा और दूसरी है चरित्र की दिशा। इन दोनों में महत्त्वपूर्ण है चरित्र का विकास। बौद्धिक विकास अध्ययन से हो सकता है किन्तु नैतिक मूल्यों का विकास केवल अध्ययन से नहीं हो सकता। उसके लिए आवश्यक है - अभ्यास, ध्यान आदि के प्रयोग। जीवन विज्ञान का प्रयत्न विकास की चार दिशाओं में है।

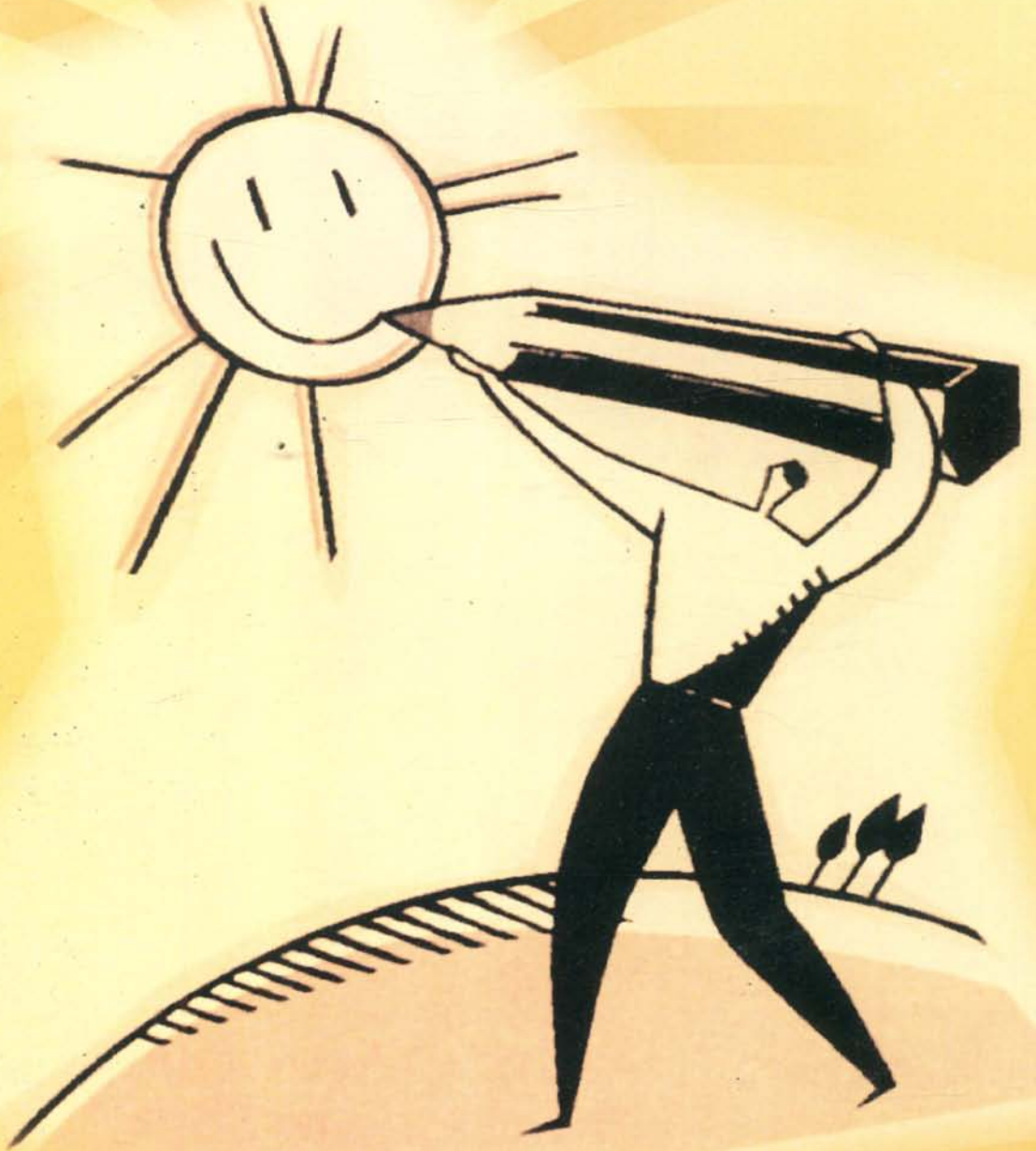
- (1) भावनात्मक विकास
- (2) संवेग नियंत्रण की क्षमता का विकास
- (3) सृजनात्मक शक्ति का विकास
- (4) सामुदायिक चेतना का विकास

मनुष्य में मौलिक मनोवृत्तियां और भाव होते हैं। वृत्तियों का परिष्कार किया जा सकता है और भाव संवेग बनकर नैतिक मूल्यों के विकास में बाधक न बनें, यह योग विद्या द्वारा किया जा सकता है। चरित्र का विकास जीवन विज्ञान की शिक्षा के बिना संभव नहीं है। ध्यान और कुछ नहीं है। वह है जीवन विज्ञान की शाखा को विकसित करना, अपने आपको जानना, अपने मन को शिक्षित करना, अपनी सहिष्णुता की शक्ति को बढ़ाना। वर्तमान में जीवन विज्ञान एक पाठ्यक्रम के रूप में शिक्षा क्षेत्र में प्रविष्ट हो चुका है। आचार्य महाप्रज्ञ का विश्वास है कि इससे शिक्षा क्षेत्र में ज्ञान और अभ्यास की दिशाएं संतुलित होंगी।



- Brain
- Spinal Cord
- Spinal Nerve Roots
- Spinal Nerves

आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व



आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व

आचार्य महाप्रज्ञ और डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
के वक्तव्य और वार्ता का संकलन
(तेरापंथ का साप्ताहिक मुखपत्र 'विज्ञप्ति' में से उद्धृत
झंवरलाल चौपड़ा जयपुर के सौजन्य से प्राप्त)

वक्तव्य	309
1. 15 फरवरी, 2003 को मुम्बई में 'शिक्षा में नैतिक मूल्य' विषयक सेमिनार के उद्घाटन का अवसर	309
2. 15 अक्टूबर, 2003 को सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र का अवसर	311
वार्ताएं	320
1. 13 अगस्त, 2002 को अहमदाबाद में हुई वार्ता के अंश	320
2. 14 फरवरी, 2003 को मुम्बई में हुई वार्ता के अंश	323

वक्तव्य

15 फरवरी, 2003 को मुम्बई में 'शिक्षा में नैतिक मूल्य' विषयक सेमिनार के उद्घाटन के अवसर पर दिए गए वक्तव्य

राष्ट्रपति डॉ. कलाम का वक्तव्य

सेमिनार का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा - 'आध्यात्मिक और वैज्ञानिक सोच के समन्वय से ही अच्छे मनुष्य, बेहतर समाज और विश्वशांति का सृजन हो सकता है।'

डॉ. कलाम ने आचार्यवर के साथ हुई क्रिस्तुत चर्चा का उल्लेख करते हुए कहा - 'जागरूक, नैतिक एवं सुसंस्कृत मानव के निर्माण के लिए मैंने आचार्यजी से मार्गदर्शन प्राप्त किया। आचार्यश्री ने सुझाया कि बौद्धिक और भावात्मक विकास के समन्वय से ही अच्छे मनुष्य का निर्माण हो सकता है। ध्यान इस दिशा की ओर ले जाने वाला एक मार्ग है।'

नवदीक्षित मुनियों की मुस्कान की चर्चा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा- 'भारत की एक अरब की जनसंख्या में एक तिहाई संख्या बच्चों और किशोरों की है। सुन्दर मस्तिष्क वाले सुन्दर नागरिकों के निर्माण से आने वाले समय में घृणा को दूर किया जा सकेगा।'

राष्ट्रपति जी ने अनेक बार आचार्यवर के कथन को उद्धृत करते हुए कहा - 'घृणाविहीन, हिंसारहित और शांतिपूर्ण मस्तिष्क के विकास के लिए नए वातावरण का निर्माण जरूरी है। ऐसा वातावरण बनाया जाए, जिससे मैं और मेरा - इन दोनों वृत्तियों का शमन हो जाए। 'मैं और मेरा' इन दो तत्त्वों ने समस्याओं की सृष्टि की है, युद्ध और अशांति के वातावरण का निर्माण किया है।'

राष्ट्रपति ने आचार्यवर के मार्गदर्शन को समग्र विश्व के लिए उपयोगी बताते हुए कहा - 'धर्म और विज्ञान मिलकर आदमी को नई दिशा दे सकेंगे। विज्ञान को अध्यात्म का सहारा चाहिए।'

राष्ट्रपति ने अपने शिक्षागुरु डॉ. विक्रम साराभाई और विशप परेल की घटना का उल्लेख करते हुए कहा - 'धर्मगुरु की सहायता नहीं मिलती तो

विज्ञान आगे नहीं बढ़ता। वैज्ञानिक प्रश्न पूछता है, तर्क खोजता है। वह संचारक्रान्ति, कृषि उत्पादन से धन-सम्पदा का सर्जन कर सकता है, बशर्ते उसे इसी तरह धर्म का सहारा मिलता रहे। केवल विज्ञान को ही नहीं, समग्र देश को अध्यात्म की आवश्यकता है। आचार्य महाप्रज्ञजी इस दिशा में जो कार्य कर रहे हैं, वह बहुत मूल्यवान हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ का सम्बोधन

आचार्य महाप्रज्ञ ने सेमिनार को संबोधित करते हुए कहा — 'कल हमारी राष्ट्रपतिजी से तीन विषयों पर चर्चा हुई — नैतिक और चारित्रिक मूल्यों का विकास कैसे हो ? भावात्मक विकास कैसे हो ? मैं और मेरेपन का भाव कैसे मिटे ? इतनी शिक्षा, चर्चा और आंदोलनों के बाद भी नैतिक मूल्यों का विकास नहीं हो रहा है तो इसका कारण यही है कि बीमारी कहीं और है और इलाज किसी दूसरी जगह पर किया जा रहा है। बदलने के लिए जरूरी है कि अनकांसियस माइंड (Unconscious mind) तक पहुंचना। हमारा सारा प्रयत्न कांसियस माइंड को बदलने में चल रहा है। इमोशन, व्यवहार, आदत, मेमोरी — ये सब अनकांसियस माइंड के अंतर्गत आते हैं। नैतिक और चारित्रिक विकास के लिए ऐसे कारगर प्रयोगों और विधियों को अपनाना होगा जो अनकांसियस माइंड को प्रभावित कर सके। वहां जो समस्या है, उसे सुलझा सके। जीवनविज्ञान ऐसी प्रयोग पद्धति है, जिसके द्वारा अनकांसियस माइंड को प्रभावित किया जा सकता है।'

जीवन विज्ञान के प्रयोगों की चर्चा करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा— 'जिसका सिंपैथेटिक नर्वस सिस्टम अति सक्रिय है, वह बच्चा उददण्ड, उच्छृंखल और अनुशासनहीन होगा। जिसका पैरासिंपैथेटिक सक्रिय है, वह बच्चा डरपोक, भीरु और दबू होगा। जब तक हम किसी प्रयोग द्वारा दोनों का संतुलन न कर सकें, तब तक किसी बच्चे को ठीक नहीं किया जा सकता। जीवन विज्ञान का प्रयोग इन दोनों के संतुलन का प्रयोग है।'

अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का उल्लेख करते हुए आचार्यवर ने कहा — 'अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की चर्चा चलती रही है, किंतु इन दोनों को प्रयोगात्मक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य तुलसी को है। उन्होंने अपनी मेधा और प्रज्ञा से इसे आगे बढ़ाया। उन्होंने आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण की कल्पना की और इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य भी किया। कोरा अध्यात्म दुनिया के लिए बहुत उपयोगी नहीं होता।

कोरा विज्ञान भी खतरनाक हो सकता है। अध्यात्म और विज्ञान — दोनों का विकास जिस व्यक्ति में होता है, वह दुनिया के लिए कल्याणकारी बनता है।

सुकरात ने कहा था — शासक को दार्शनिक होना चाहिए। मैं कहना चाहता हूँ — शासक को वैज्ञानिक होना चाहिए। वैज्ञानिक समस्या पर विचार ही नहीं करेगा, उसका समाधान भी खोजेगा। आज अध्यात्म और विज्ञान का संगम हो रहा है। दोनों सत्य की खोज करने वाले हैं। हमने राष्ट्रपतिजी से अनेक विषयों पर चर्चा की है। यह विचार-विमर्श आगे भी चलता रहेगा, ऐसा निश्चय किया है। हम मिलकर देश की समस्याओं के समाधान में योग दे सकें, यह आज की अपेक्षा है।

15 अक्टूबर, 2003 को सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र के अवसर पर दिए गए वक्तव्य

15 अक्टूबर, 2003 को आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने विभिन्न धर्मों के आचार्य, मौलवी, फादर, संत और दार्शनिकों के साथ देश की समस्याओं पर संवाद किया। 'यूनिटी ऑफ माइंड्स (Unity of minds) विषयक इस संवाद की परिणति सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र के लोकार्पण के रूप में प्रकट हुई। इस अवसर पर आचार्य महाप्रज्ञ और डॉ. कलाम द्वारा दिए गए वक्तव्य पाठकों के लिए प्रेषित हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ का संबोधन

आचार्य महाप्रज्ञ ने सम्मेलन के लिए प्रदत्त अपने संदेश में कहा — 'आध्यात्मिक चेतना का जागरण और नैतिक मूल्यों का विकास — यह सार्वभौम धर्म का मंच है। इस मंच पर सभी धर्म एकता का संदेश दे सकते हैं।'

साम्प्रदायिक सौहार्द

उपासना और भक्ति का मंच अपना-अपना हो सकता है और इसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती। धार्मिक अवधारणा में जो दूरी है, वह उपासना पद्धति के आधार पर है।

हम वैचारिक स्वतंत्रता और श्रद्धा की निष्ठा को मूल्य दें तो दूरी के रहते हुए भी हम निकट आ सकते हैं, अध्यात्म और नैतिकता के मंच पर एक साथ बैठ सकते हैं और एक समान कार्य कर सकते हैं। चिन्तन की

इस भूमिका का निर्माण कर सकें तो विश्व के क्षितिज पर नए सूर्य का उदय हो सकता है।

नैतिक मूल्यों की अपेक्षा क्यों?

धर्म के क्षेत्र में नैतिक मूल्यों को महत्त्व नहीं दिया जा रहा है। इसलिए धार्मिक आदमी असदाचार करने में संकोच नहीं करता। धर्म के क्षेत्र में आध्यात्मिकता को महत्त्व नहीं दिया जा रहा है, इसलिए मानवीय एकता का स्वप्न साकार नहीं हो रहा है। मानवीय सम्बन्धों में सुधार नहीं हो रहा है।

धर्म का आध्यात्मीकरण

अध्यात्म विशुद्ध चेतना के विकास का मार्ग है। वह चेतना, जो राग और द्वेष के मंदीकरण से विकसित होती है, उसके तीन फलित हैं —

- उपशांत मनोवृत्ति, वास्तविक शांति का अनुभव
- अनासक्ति
- करुणा

ये धर्म के प्रमुख परिणाम हैं। यह धर्म ही व्यक्ति और समाज — दोनों के लिए हितकर हो सकता है। इसकी उपलब्धि के लिए आवश्यक है—

- एकाग्रता का विकास
- संकल्प शक्ति का विकास
- संवेग-नियंत्रण का अभ्यास

इन तीनों शक्तियों का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं है। यह सब सम्प्रदायों द्वारा सम्मत मंच हो सकता है।

आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व

हमारा मूलभूत लक्ष्य होना चाहिए — आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण। केवल आध्यात्मिक व्यक्तित्व अध्यात्म के चिंतन को युग की भाषा में प्रस्तुत नहीं कर सकता, युगचिंतन को प्रभावित नहीं कर सकता। केवल वैज्ञानिक व्यक्तित्व पदार्थ की सीमा से ऊपर उठकर चेतना का स्पर्श नहीं कर सकता और चेतना से उपजने वाली समस्याओं को सुलझा नहीं सकता। इसलिए प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति आध्यात्मिक वैज्ञानिक बने, यह युग की अपेक्षा है।

बंही व्यक्ति आध्यात्मिक हो सकता है, जिसका अपने संवेगों पर नियंत्रण हो। धार्मिक व्यक्ति भी संवेग-नियंत्रण की साधना नहीं करते तो यह आश्चर्य का विषय है। संवेग-नियंत्रण के लिए केवल सिद्धान्त-बोध पर्याप्त नहीं है। इसके लिए संवेग के नियामक तत्वों को जानना जरूरी है। इस संदर्भ में शरीर रचनाविज्ञान, शरीर क्रियाविज्ञान, मनोविज्ञान, जैविक रसायन विज्ञान आदि वैज्ञानिक प्रकल्पों का प्रबोध भी बहुत जरूरी है।

वर्तमान में हिंसा बढ़ रही है, उसका प्रमुख कारण संवेगों की उच्छृंखलता है। संवेग-संतुलन और आध्यात्मिक विकास — दोनों में सामंजस्य किए बिना धर्म का आध्यात्मिकरण नहीं हो सकता और हिंसा की बढ़ को रोकने में सफलता भी नहीं मिल सकती। मानव जाति के उत्थान और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के विकास के लिए बहुत आवश्यक है — संवेग-नियंत्रण की प्रयोगात्मक पद्धति का विकास करना।

सन् 2020 तक भारत को प्रथम कोटि का राष्ट्र बनाने की राष्ट्रपति की परिकल्पना केवल आर्थिक और औद्योगिक विकास की नहीं हो सकती। वह आर्थिक विकास और आध्यात्मिक विकास — दोनों के साहचर्य से हो सकती है। धर्मगुरुओं का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वे आध्यात्मिक विकास के दायित्व को व्यापक बनाएं।

मैं विश्वास करता हूँ, धर्मगुरुओं का तथा वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न और अध्यात्म के प्रति समर्पित भारत के राष्ट्रपति का यह संवाद राष्ट्र की अनेक समस्याओं को सुलझाने में सार्थक सिद्ध होगा। इस पथ-दर्शन के द्वारा विश्व को अशांति की समस्या को सुलझाने में योग मिलेगा।

आचार्यवर ने आगे कहा — 'इस परिषद् में गरीबी की चर्चा चली। मैं गरीबी की अपेक्षा अमीरी को ज्यादा खतरनाक मानता हूँ।' परिवर्तन के लिए प्रयोग पद्धति की चर्चा करते हुए आचार्यवर ने कहा — 'पुस्तक पढ़ने से परिवर्तन होता है, किन्तु उसके साथ-साथ कुछ प्रायोगिक पद्धति भी चले। हमने अनुभव किया, अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराया और उसका परिणाम भी देखा। उसमें संकल्प, सुझाव आदि-आदि का प्रयोग कराया जाता है। उससे आदमी को बदलने में काफी सहायता मिलती है।

सभी धर्माचार्यों के इतने अच्छे विचार सुने। सभी धर्मों में इतनी अच्छी बातें हैं कि किसको प्रथम मानूँ? यह निर्णय करना कठिन है। लेकिन इतने अच्छे सिद्धान्तों के होते हुए भी हिंसा बढ़ रही है, यह हमारे सामने प्रश्न है। इसके तीन प्रमुख कारण सामने आ रहे हैं —

हिंसा की रणनीति है। अहिंसा की कोई रणनीति नहीं है।

हिंसा का नेटवर्क है। अहिंसा का कोई नेटवर्क नहीं है।

हिंसा के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। अहिंसा के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है।

राष्ट्रपतिजी का सपना है, हम सबका सपना है — एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि हमारी अहिंसा की कोई रणनीति बने, अहिंसा का नेटवर्क बने, अहिंसा का प्रशिक्षण शुरू हो। केवल शब्दोच्चार से, लच्छेदार शब्दों के व्याख्यान से कुछ नहीं होगा। इसके लिए प्रशिक्षण की विशाल योजना बनाएं, जिससे विद्यार्थी और युवकों को, पुलिस और सैनिकों को अहिंसा का प्रशिक्षण मिल सके। इसके लिए हमारा प्रयत्न है और विश्वास है कि इसमें हम सफल होंगे।

राष्ट्रपति डॉ. कलाम का वक्तव्य

'आदरणीय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी, स्वामीजी, मौलवीजी, फादर— सभी को मेरा सम्मान और नमस्कार। मैं आप सब आध्यात्मिक नेताओं और भक्तों के बीच आकर अति प्रसन्न हूँ। मैं इसे एक अति महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान मानता हूँ कि हम यहां एक आध्यात्मिक समूह की भागीदारी में एक विकसित भारत की परिकल्पना को साकार करने पर चिंतन करने के लिए आज यहां एकत्र हुए हैं। आचार्यश्री के द्वारा आयोजित इस अनुष्ठान को मैं बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। यहां आपसे बातचीत करने के लिए मैंने कुछ तैयारी की थी, परंतु आप लोगों को सुनने के पश्चात् मैंने निर्णय लिया कि जो मैं लिखकर लाया था, वह नहीं बोलूंगा।

मैंने अब तक बहत्तर बार सूर्य की परिक्रमा की है और 73वीं बार प्रवेश कर रहा हूँ। मैंने एक प्रश्न स्वयं से पूछा कि इस बहत्तर वर्ष के जीवन में क्या कभी मैंने सुख का अनुभव किया है? क्या सुख से परे भी कुछ है? यह प्रश्न मुझे झकझोर रहा है। यहां आकर मैंने आपका सूरत आध्यात्मिक उदघोषणा पत्र पढ़ा। आपने कितने सुंदर ढंग से इस विषय पर शोध किया कि हमारे मन में एकात्मकता का भाव कैसे विकसित हो? इस एकात्मकता के भाव को मैं आर्थिक सुदृढीकरण के समकक्ष मानता हूँ। एक तरफ आर्थिक वैभव और दूसरी ओर आध्यात्मिक सामंजस्य — इन दोनों का संगम हमारे देश को सम्पन्न, विकासमान, शांतिपूर्ण, सुरक्षित एवं आध्यात्मिक बनाने में योगमूत होगा।

मैंने आपके द्वारा सम्मत पंचसूत्रीय 'सूरत आध्यात्मिक उद्घोषणा पत्र' को ध्यान से पढ़ा। निश्चित रूप से समय आ गया है कि हमारे देश के आध्यात्मिक नेता, चिंतक, दार्शनिक और संत देश के रूपान्तरण में अपना योगदान दें। मैंने विभिन्न धार्मिक नेताओं के साथ एक उन्नत एवं विकसित भारत की परिकल्पना पर अपना चिंतन किया। मैंने पांच ऐसे क्षेत्रों की विस्तारपूर्वक चर्चा की, जहां विकास की अपेक्षा है—

- कृषि एवं खाद्य प्रसंस्करण
- शिक्षा एवं स्वास्थ्य
- सूचना एवं प्रसारण तकनीकी
- अपेक्षाकृत संसाधन
- तकनीकी क्षेत्र में स्वावलंबन

गांवों में संपन्नता आए, इसके लिए मैंने गांव के विकास की भी बातचीत की। मैंने इसे 'PURA (PROVIDING URBAN FACILITIES IN RURAL AREAS)' नाम दिया है। गांवों में शहरी सुविधाएं उपलब्ध हों। यह चार तंत्रों को जोड़ने से संभव होगा — भौतिक, इलेक्ट्रॉनिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास। सभी धार्मिक नेताओं ने महसूस किया कि हमारी गौरवपूर्ण विरासत और सभ्यता के आधार पर इसे क्रियान्वित किया जाए, जिसका केन्द्र बिंदु आध्यात्मिक जीवनशैली होना चाहिए।

विरासत में मिली हमारी समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति हमें सदाचार की ओर ले जाती है। मुझे सदाचार पर एक प्यारी कविता याद आती है—

जहां हृदय में सदाचार है, वहां चरित्र में सौन्दर्य है
 जहां चरित्र में सौन्दर्य है, वहां घर में सौहार्द है
 जहां घर में सौहार्द है, वहां देश में सुदृढ़ व्यवस्था है
 जहां देश में सुदृढ़ व्यवस्था है, वहां विश्व में शांति है।

प्रश्न है — चरित्र का निर्माण कौन करेगा? धर्म, अभिभावक और शिक्षक— ये तीनों नवयुवकों में सदाचार का बीजारोपण कर सकते हैं। अतएव धार्मिक नेताओं की नवयुवकों में एवं समाज के अन्य सदस्यों में सदाचार की प्रवृत्ति स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्कारी एवं सदाचारसंपन्न प्रवृत्ति के नागरिकों को तैयार करने में एवं देश को 2020 तक पूर्ण रूप से विकसित करने में धर्माचार्य अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। हमें एक सुन्दर राष्ट्र का निर्माण करना है, जहां हम सद्गुणों की आराधना करें।

मैं आपके साथ अपना बासठ वर्ष पुराना, जब मैं दस वर्ष का था, तब का एक अनुभव बांटना चाहता हूँ। मेरे पिता जैनुल ओवेदिन ने एक सौ तीन वर्ष का जीवन जीया। हम रामेश्वरम कस्बे के छोटे से टापू में रहते थे। मेरे पिताजी के दो मित्र थे — फादर बोडेल और श्री लक्ष्मण शास्त्रीगल। वे तीन महान् व्यक्ति अक्सर बाइबिल, कुरान और गीता पर चर्चा किया करते थे। इन तीनों के बारे में विशेष बात यह थी कि मेरे पिता मस्जिद के संरक्षक और प्रमुख थे। श्री शास्त्रीगल मन्दिर के पुजारी और फादर बोडेल क्राइस्ट चर्च के संस्थापक थे। मैंने उनसे बेहतरीन शिक्षा पाई। एक छोटे से टापू पर, जहां कोई विद्यालय भी नहीं था, ये तीनों सात्त्विक और सदाचारी व्यक्ति कैसे प्रेम और धार्मिक उदारता के बारे में चर्चा करते थे, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अलग-अलग धर्मों को मानने वाले इन महान् व्यक्तियों ने एक छोटे से गांव में रहकर आने वाली पीढ़ियों के लिए वैचारिक एकात्मकता की नींव रखी। रामेश्वर में शिव मंदिर है, जहां भगवान राम ने आराधना की थी। प्रसिद्ध अब्दुल काबुल दरगाह है एवं टापू पर प्रथम क्राइस्ट चर्च भी है। मुझे विश्वास है कि आपका यह सूरत आध्यात्मिक घोषणापत्र हमारे राष्ट्र को एकात्मकता की नई दिशा प्रदान करेगा।

प्रसंगवश मैं आपसे महाभारत में वर्णित कुरुक्षेत्र युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण के उसी संदेश की चर्चा करना चाहूंगा, जो उन्होंने अर्जुन से की थी। अर्जुन की दशा निराशाजनक थी। वे इस द्वन्द में उलझे थे कि अपने परिवारजनों पर शस्त्र कैसे उठाऊँ? श्रीकृष्ण विश्वरूप के माध्यम से ईश्वरीय शक्ति एवं पाशविक शक्ति के बारे में उपदेश देते हैं, फिर भी अर्जुन की मनोदशा में कोई परिवर्तन नहीं आता है। तब श्रीकृष्ण उन्हें एक बगीचे में ले जाते हैं एवं पुष्प का दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि एक पुष्प कैसे मुक्तरूप से सुगंध और मिठास बांटता है, सबको उन्मुक्तभाव से प्रेम बांटता है। अपना कार्य संपन्न करके एक दिन शांति से गिर जाता है। एक पुष्प की तरह खिलने का और जीने का प्रयास करो। सदगुणों और विशेषताओं के बावजूद अहंशून्य जीवन। वैचारिक एकात्मकता एवं सार्वभौम विचारों के बारे में इस देश की सभी पीढ़ियों ने प्रेरणास्पद संदेश दिए हैं। हमारे यहां उदार नेतृत्व, अदम्य साहस एवं सार्वभौमिक विचारधारा की गौरवशाली परम्परा रही है।

इस अवसर पर मेरे आदरणीय पिताजी की कुछ पंक्तिया याद आती हैं, जो लखीउद्दीन कमालुद्दीन द्वारा रचित हैं। इसमें अल्लाह पैगम्बर से कहते हैं —

हे पैगम्बर! तुम उनको उपदेश देते हो, जो तुम्हारे उपदेश को नहीं स्वीकारते।

जिसकी तुम आराधना करते हो, उसकी मैं नहीं करता।

जिसकी मैं करता हूँ उसकी तुम नहीं करते।

तुम्हारे कर्मों का फल तुम्हें मिलेगा

मेरे कर्मों का फल मुझे मिलेगा।।

इसका सार है कि शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का जीवन जीएं। हम सबको अपने-अपने कर्मों का फल प्राप्त होगा।

इस अवसर पर मुझे संत फ्रांसिस की विख्यात प्रार्थना याद आती है -

हे ईश्वर! मुझे शांति का साधन बनाएं

जहां नफरत हो, वहां प्रेम के बीज बोऊं

जहां कोई व्यथित हो, वहां समता का

जहां संदेह हो, वहां विश्वास का

जहां निराशा हो, वहां आशा का

जहां अंधेरा हो, वहां प्रकाश का

जहां उदासी हो, वहां आनंद का स्रोत बहाऊं।

मैंने राष्ट्रपति पद का दायित्व 25 जुलाई, 2002 को संभालने के पश्चात्, तवांग, जो बारह हजार फीट की ऊंचाई पर स्थित है, का भ्रमण किया। वहां एक बौद्ध मठ है। वहां के मठाधीश से मैंने बातचीत की। मैंने उनसे पूछा— 'आनंद का उद्गमस्रोत कहां है? वह कहां से आता है?' उन्होंने कहा — 'अगर हमें आनंद और शांति की प्राप्ति करनी है तो 'मैं' और 'मेरा' का विसर्जन करना होगा। यह बहुत ही कठिन कार्य है। 'मैं' और 'मेरा' का विसर्जन होते ही हमारे अहंकार और ममकार का विसर्जन हो जाता है। अहं के विसर्जन से द्वेष का विसर्जन होता है और इसके साथ ही शरीर और मन से हिंसात्मक प्रवृत्तियां विलीन हो जाती हैं।' गुरु नानक ने भी इस पर अपने ग्रंथ के माद्यम से प्रकाश डाला है। मुझे इस प्रसंग में आचार्यश्री महाप्रज्ञ का मंगल संदेश बहुत प्रेरित करता है—

'सारे मन के भटकाव शरीर से प्रारंभ होते हैं। इस सत्य की अनभिज्ञता ही भय का आधारभूत कारण है। मन के भटकाव की

स्थिति में ही भय पनपता है। जागरूक अवस्था में भय टिक नहीं सकता। ज्ञान मुक्तिदाता है। एक बालक के मन में अनेक प्रकार के डर होते हैं, जो वयस्क व्यक्ति के मन में नहीं होते, क्योंकि उसे कई नियमों का ज्ञान होता है। केवल वही व्यक्ति भय से मुक्ति दिला सकता है, जिसने स्वयं भय से मुक्ति पा ली हो और जिसका संपूर्ण अस्तित्व अमय के प्रकंपनों से प्रतिष्ठित वनित होता है। ऐसे व्यक्ति ही अमय को प्राप्त होते हैं तथा औरों को अभय प्रदान करते हैं।

अब मैं महर्षि पतंजलि के योगसूत्र से उद्धरण देना चाहूंगा। जब आप किसी महान उद्देश्य से असाधारण योजना (जैसे यूनिटी ऑफ माइंड का महान् उद्देश्य, जिसकी चर्चा आज कर रहे हैं) से प्रेरित होकर कार्य करते हैं, तब अपना चिंतन सारी सीमाएं लांघ जाता है। मन के अनेक आयाम खुल जाते हैं। आपकी चेतना सभी दिशाओं में फैलती है और आप स्वयं को एक नवीन, महान और अद्भुत संसार में पाते हैं। आपकी सुंदर, सुप्त शक्तियां, योग्यताएं और प्रतिभाएं जीवित हो उठती हैं और आप अपने अंदर ऐसे महान व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं, जिसकी शायद आपने कभी कल्पना भी नहीं की। यह संदेश हम सबके लिए प्रेरणादायी है।

एक व्यक्ति के तौर पर और इस देश के राष्ट्रपति के तौर पर मैंने कई देशों की प्रजातांत्रिक प्रणालियों का अध्ययन किया है। मेरे विचार से कोई दूसरा ऐसा राष्ट्र नहीं है, जहां सौ करोड़ लोग एक साथ रहते हों और विभिन्न भाषा, समुदाय, धर्म, जाति और सामाजिक परम्पराओं का आदर करते हों। इन अनिवार्य भिन्नताओं एवं इतनी बड़ी जनसंख्या की व्यवस्था करना हमारी अपनी विशिष्टता है।

हम सब इतिहास की पोथी के एक-एक पृष्ठ हैं। इस पृथ्वी पर छह अरब लोग निवास करते हैं। हम सबका अपना-अपना धर्म, परिवार, सहयोगी समाज और स्वप्न हैं। हमारे पास समय नहीं है कि हम इसका निरीक्षण करें कि हमारे इर्द-गिर्द क्या हो रहा है? हम सामान्यतः अपने तक ही केन्द्रित रहते हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है। हमें चयन करना है कि हम अपने इर्द-गिर्द चक्कर लगाकर मरना चाहते हैं या सूर्य की परिक्रमा करके जीना? इसलिए यह आवश्यक है कि हमारी सोच, चिंतन और क्रियाएं अनवरत परिवर्तनशील और विकासमान हों। अब समय आ गया है कि हम अपने देश की परिकल्पना व्यापक संदर्भ में करें।

राष्ट्र के विकास के दो आयाम हैं – आर्थिक विकास और नैतिक मूल्यों का विकास। देश की आबादी सौ करोड़ है। सत्तर करोड़ लोग गांवों में रहते

हैं और तीस करोड़ लोग शहरों में। देश में छह लाख गांव हैं। छब्बीस करोड़ लोग जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें उस स्थिति से उबारना है। देश की समृद्धि कैसे बढ़े, इस पर चिंतन करना है। हमें एक सावधानी बरतनी है कि आर्थिक समृद्धि प्राप्त हो जाए और नैतिक मूल्यों का विकास उसी अनुपात में न हो तो खतरनाक स्थिति पैदा हो सकती है।

मैं यहां आप लोगों के बीच में क्यों आया हूँ ? मैं आप सब धार्मिक नेताओं और दार्शनिकों से इस सहयोग की अपेक्षा करता हूँ कि आप सब लोग इस राष्ट्र को विकसित करने में अपना योगदान दें। आप हमारे भागीदार हैं। हम सबको मिलकर राष्ट्र की सौ करोड़ जनता का जीवन आनंदमय, संपन्न और सुरक्षित बनाना है।

आनंद कौन प्रदान कर सकता है? जीवन मूल्यों की शिक्षा कौन प्रदान करें ? यूनिटी ऑफ माइंड यानी मानसिक एकात्मकता का वातावरण कौन तैयार करें ? चूंकि आप लोगों के पास ये सब सद्गुण हैं, मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप इसे प्रदान करें।

आज मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप — आचार्यश्री, गुरुजन, मौलाना साहबान एवं फादर — सबने मिलकर एक योजना बनाई है। हमारा देश भिन्नताओं में एकता का अनूठा उदाहरण संसार के सामने प्रस्तुत करेगा।

जहां तक दुःख और गरीबी को मिटाने का प्रश्न है — इस देश में सभी धर्म अपनी-अपनी तरह से सहयोग कर रहे हैं। निकट भविष्य में हम इस तरह की योजनाएं क्रियान्वित करेंगे, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, जलापूर्ति, स्वावलंबन और रोजगार के नए नए अवसर हमारे राष्ट्र को उपलब्ध कराए जाएं। जो शिक्षण संस्थान हमारे धार्मिक क्षेत्रों द्वारा संचालित हैं, वे अन्य धर्मों के अनुयायियों को भी अपने संस्थान से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करें।

मैंने किसी ग्रंथ में पढ़ा कि ईश्वर ने लाखों वर्षों के प्रयास के बाद जगत और मानव जाति का निर्माण किया। विकास में उसने दैवीय और पाशविक— दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रस्थापित किया। 'यूनिटी ऑफ माइंड्स' (Unity of minds) का मिशन है कि हमारी दैवीय प्रवृत्तियां पनपें और पाशविक प्रवृत्तियों पर हम विजय प्राप्त करें। उसने हमें चिंतन और विवेक दिया, जिससे हम दोनों प्रवृत्तियों के अंतर को समझ सकें और उसके अनुरूप अपने आचरण का चयन करें।

आप महानुभावों के इस प्रयास पर ईश्वर अति प्रसन्न होगा और इस देश की करोड़ों जनता आप सब महापुरुषों की सदैव ऋणी रहेगी।'

वार्ताएं

13 अगस्त, 2002 को अहमदाबाद में हुई वार्ता के अंश

सन् 1999 में राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम एक वैज्ञानिक के रूप में आचार्य श्री महाप्रज्ञ के दर्शन करने आए थे। उस समय डॉ. कलाम ने विज्ञान और जैन दर्शन के संदर्भ में लगभग पैंतालीस मिनट तक वार्तालाप किया। जैनदर्शन की वैज्ञानिकता ने श्री कलाम को बहुत प्रभावित किया। उस समय जो सहजता, सादगी, विनम्रता और ग्रहणशीलता परिलक्षित हुई, देश के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद भी उसमें कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं हुआ। प्रस्तुत हैं डॉ. कलाम और महाप्रज्ञ के वार्तालाप के महत्त्वपूर्ण अंश —

डॉ. कलाम — स्वामीजी! देश में जो समस्याएं हैं, उन्हें दूर करने का कार्य मुझे करना है। उसके लिए मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए। आपके आशीर्वाद से मैं उन समस्याओं का समाधान कर पाऊंगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

महाप्रज्ञ — आपने राष्ट्रपति पद की शपथ लेने से पहले जो वक्तव्य दिया, उसके अनुरूप देश को बनाने का संकल्प करना है।

डॉ. कलाम — हां, हां!

महाप्रज्ञ — आज देश के सामने तीन प्रमुख समस्याएं हैं —

1. गरीबी
2. आतंकवाद
3. जातिवाद और साम्प्रदायिक कट्टरता।

जब तक ये समस्याएं रहेंगी शांति और विकास का पथ प्रशस्त नहीं होगा। इन समस्याओं का समाधान प्रक्षेपास्त्रों अथवा लौह के शस्त्रों से नहीं, मधुर-शस्त्र से होगा।

डॉ. कलाम — मधुर शस्त्र----।

महाप्रज्ञ — महाभारत का प्रसंग है। एक बार श्रीकृष्ण बहुत निराश हो गए। गणतंत्र की समस्याएं जटिल हो गईं। लोगों में असंतोष पनपने लगा।

नारद के सामने श्रीकृष्ण ने अपनी वेदना व्यक्त की — 'समस्याएं बढ़ रही हैं। जनता में असंतोष बढ़ रहा है। कैसे करें इसका समाधान? यह समस्या बहुत कष्ट दे रही है।' नारद ने कहा — 'कृष्ण! इसका समाधान आयस शस्त्र— लौह के शस्त्र से नहीं, अनायस-मृदुता के शस्त्र से होगा।' बाहर की समस्याओं के समाधान में लौह का शस्त्र काम देता है। भीतर की समस्याओं के समाधान में मृदुता का शस्त्र काम देता है। मधुर शास्त्र से ही यह समस्याएं सुलझेगी।

डॉ. कलाम — स्वामीजी! आपका कहना सही है। गरीबी आदि समस्याएं मधुर शस्त्र से ही सुलझ सकती हैं।

महाप्रज्ञ — आज की समस्या यह है — हम किसी भी समस्या पर दीर्घकालीन चिन्तन नहीं करते। इसके स्थायी समाधान की बात नहीं सोचते। शॉर्ट टर्म पॉलिसी पर चलते हैं। घाव हुआ और उस पर मरहम पट्टी कर दी। घाव एक बार तो ठीक हो जाएगा। समस्या आई और उसका तात्कालिक उपचार कर दिया। किंतु उसके स्थायी समाधान की बात नहीं सोचते। समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा है। यदि वैज्ञानिक दीर्घकालीन चिन्तन नहीं करते, तो प्रक्षेपास्त्रों का विकास नहीं होता। देश तकनीकी विकास में अग्रणी नहीं बन पाता।

देश की समस्याओं के समाधान के लिए भी इसी वैज्ञानिक नीति का अनुसरण करना चाहिए। समस्याओं का तात्कालिक नहीं, स्थायी समाधान खोजना चाहिए।

डॉ. कलाम — हमने बीस वर्षों में राष्ट्र को पूर्ण विकसित कर गरीबी को समाप्त करने की योजना बनाई है। पहले मैं एक वैज्ञानिक के रूप में यह कार्य करता था। अब एक राष्ट्रपति के रूप में मुझे यह कार्य करना है। मैं संसद के सहयोग से इस कार्य को करना चाहता हूँ।

महाप्रज्ञ — अणुव्रत प्रवर्तक आचार्यश्री तुलसी ने धर्म और सम्प्रदाय की समस्या के संदर्भ में कहा था — धर्म को पहले स्थान पर और सम्प्रदाय को दूसरे स्थान पर रखा जाए तभी देश की समस्याओं का समाधान होगा। वर्तमान संदर्भ में मैं इसे इस प्रकार बदल कर कहना चाहता हूँ — देश की समस्याओं का समाधान तभी होगा, जब राष्ट्र पहले स्थान पर और दल दूसरे स्थान पर रहें।

डॉ. कलाम — (अत्यंत भावविभोर होकर) स्वामीजी! आप सम्प्रदाय से ऊपर हैं। आपके पास आने वाले राजनेताओं, सामाजिक और धार्मिक नेताओं

को यह बात बताएं — राष्ट्र को दलगत राजनीति से ऊपर रखना होगा। दलगत राजनीति से ऊपर उठकर ही हम देश की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, देश को विकास के मार्ग पर ले जा सकते हैं।

महाप्रज्ञ — हम यह बात सबको बताएंगे।

डॉ. कलाम — आपकी बात का अधिक असर पड़ेगा।

महाप्रज्ञ — आप पहले वैज्ञानिक हैं, फिर राष्ट्रपति। आपको एक काम करना है कि सबका दृष्टिकोण वैज्ञानिक बने ऐसा प्रयत्न करें। दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनेगा, तभी राष्ट्र का भला होगा। केवल बातों और आंदोलनों से राष्ट्र का भला नहीं होगा।

डॉ. कलाम — स्वामीजी! मैं ऐसा प्रयास करूंगा।

महाप्रज्ञ — केवल बातों और आंदोलनों से समस्या का समाधान नहीं होगा। समस्या के समाधान के लिए शांति और सद्भाव का विकास जरूरी है।

डॉ. कलाम — शांति और सद्भाव के वातावरण का निर्माण आप जैसे महापुरुष ही कर सकते हैं।

महाप्रज्ञ — साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए हमने दो सूत्रों पर बल दिया है—

- किसी सम्प्रदाय के उत्सव, त्यौहार आदि का दूसरे सम्प्रदाय वाले अनादर न करें। यदि कर सकें तो उदारतापूर्वक सम्मान करें।
- कुछ व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराध का पूरी जाति और सम्प्रदाय से बदला न ले, सबको अपराधी न मानें।

ये दो नियम ठीक से हृदयंगम हों तो शांति के साथ रह सकते हैं, जी सकते हैं।

डॉ. कलाम — मैं आपके इन सूत्रों का प्रसार करूंगा।

महाप्रज्ञ — आज गरीबी की समस्या है, अशिक्षा की समस्या है और अनेक समस्याएं हैं। इन समस्याओं का समाधान शांति की स्थापना के बिना नहीं हो सकता। सबमें सौहार्द और मैत्री का माव विकसित होगा, तभी स्थायी समाधान की बात आगे बढ़ेगी।

डॉ. कलाम — स्वामीजी! साम्प्रदायिक सद्भाव, भाईचारा, मेल-मिलाप की श्रवणा का विकास आप जिस कुशलता से कर सकते हैं, उतना दूसरे

नहीं कर सकते। इसलिए देश को आप जैसे संतों की बहुत अपेक्षा है। हम इस कार्य में आपके पूर्ण सहयोगी बनेंगे।

14 फरवरी, 2003 को मुंबई में हुए वार्ता के अंश

14 फरवरी को महामहिम राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने श्रद्धेय आचार्यप्रवर के दर्शन किए। राष्ट्रपति महोदय मुंबई हवाई अड्डे से सीधे पूज्यवर के दर्शनार्थ आए। रात्रि में लगभग नौ बजे राष्ट्रपति ने तेरापंथ भवन में प्रवेश किया और वहां से सीधे आचार्यवर के कक्ष में आए। विज्ञान के शिखरपुरुष श्री अब्दुल कलाम ने अध्यात्म के शिखरपुरुष आचार्यश्री महाप्रज्ञ के चरणों को श्रद्धा और भक्ति भरे हृदय से स्पर्श किया। देश के प्रथम नागरिक की विनम्रता ने सबके दिल को छू लिया। राष्ट्रपति महोदय पट्टासीन आचार्यश्री के सामने विनम्र मुद्रा में बैठे और वार्तालाप प्रारंभ हो गया। वह वार्तालाप देश की अनेक समस्याओं पर केन्द्रित रहा। उस महत्त्वपूर्ण और उत्प्रेरक वार्तालाप को अविकल रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है।

डॉ. कलाम — आज आपके दर्शन कर बहुत प्रसन्नता हुई। आपका स्वास्थ्य कैसा है?

महाप्रज्ञ — अच्छा है।

डॉ. कलाम — आपका श्रम और संयम निरंतर चल रहा है।

महाप्रज्ञ — हां, वह तो जरूरी है।

डॉ. कलाम — आचार्यजी! मैंने आपकी पांच पुस्तकें पढ़ीं — द मिरर ऑफ सेल्फ, माइण्ड बियोण्ड माइण्ड, इकोनोमिक्स ऑफ महावीरा, आई एण्ड माइन — इनमें बहुत वैज्ञानिक विश्लेषण है।

महाप्रज्ञ — विज्ञान तो आपका विषय है।

डॉ. कलाम — आपने इनमें सोलह मूल्यों की चर्चा की है। नैतिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों के विकास पर बल दिया है।

महाप्रज्ञ — हां, एक नागरिक में उन मूल्यों का विकास होना अपेक्षित है।

डॉ. कलाम — (विस्मय से) आचार्यजी! आप इतना कब लिखते हैं?

महाप्रज्ञ - (मुस्कराते हुए) मैं सोचता नहीं हूँ। अचिन्तन की भूमिका में रहता हूँ। उससे जो विचार प्रस्फुटित होते हैं, वह लिखा देता हूँ। मेरा विश्वास है - 'यदि एकाग्रता हो तो आठ घंटे का काम तीन घंटे में किया जा सकता है।'

डॉ. कलाम - मैं इससे पूर्ण सहमत हूँ। (एक नया प्रश्न प्रस्तुत करते हुए) आचार्य श्री! आपके साहित्य में एकांत बनाम अनेकांत का विशद विवेचन है। अनेकांत को जैसा मैंने समझा है - अनेक लोग एक साथ कार्य करते हैं, टीम वर्क करते हैं। एकांत वैयक्तिक दृष्टि है। क्या मैं सही सोच रहा हूँ?

महाप्रज्ञ - भिन्न विचार और भिन्न चिंतन हो सकता है, किंतु उनमें विरोध न होकर सह-अस्तित्व होना चाहिए। दो विरोधी चिन्तन धाराओं में भी सामंजस्य का सूत्र खोजा जा सकता है।

डॉ. कलाम - लोग एकांतवादी बन रहे हैं। एकांत दृष्टिकोण को कैसे मिटाया जाए? अनेकांत की ओर कैसे मोड़ा जाए? महावीर का महत्त्वपूर्ण दर्शन है अनेकांत। इसको कैसे आगे बढ़ाएँ?

महाप्रज्ञ - सबसे बड़ी समस्या है भाव (इमोशनल प्रोब्लम) की।

डॉ. कलाम - क्या अनेकांत दृष्टिकोण में इमोशन बाधा है?

महाप्रज्ञ - हाँ, नकारात्मक भाव समस्या की जड़ है। उससे एकांत दृष्टि पैदा होती है और वही झगड़े का कारण है। अनेकांत दृष्टिकोण के विकास के लिए इस पर ध्यान देना अपेक्षित है कि व्यक्ति अपने इमोशन (भाव) पर नियंत्रण कैसे करें? इसका अभ्यास जरूरी है। हमारे मस्तिष्क का जो दाहिना पटल (राइट हेमिस्फियर) है, उसको हम जागृत कर सकें तो ये झगड़े समाप्त हो सकते हैं।

डॉ. कलाम - आप जो कह रहे हैं, वह सही है, लेकिन हम करे कैसे? क्या यह बौद्धिक विकास से हो सकता है?

महाप्रज्ञ - बुद्धि से लेफ्ट हेमिस्फियर (बायाँ पटल) जागृत होता है। मस्तिष्क के राइट हेमिस्फियर को जागृत करने के लिए ध्यान का प्रयोग, नाडीतंत्रीय संतुलन का प्रयोग जरूरी है।

डॉ. कलाम - क्या ध्यान के प्रयोग से यह संभव है?

महाप्रज्ञ - हाँ, यह नियम है कि शरीर के जिस भाग पर ध्यान करते हैं, वह विकसित हो जाता है। जहाँ प्राणधारा का प्रवाह जाता

है, वह भाग सक्रिय हो जाता है। अभी तक मेडिकल साइंस शरीर की सीमा तक, मस्तिष्क की सीमा तक पहुंचा है। प्राण तक नहीं पहुंच पाया है।

डॉ. कलाम — हां, प्राण तक नहीं पहुंचे हैं। आचार्यजी! विद्यार्थियों में बहुत सारी समस्याएं जन्म ले रही हैं। तनाव और डिप्रेशन (मानसिक अवसाद) से ग्रस्त है आज का विद्यार्थी। अनेक छात्रों का दिमाग भी विकसित नहीं है। मेरे पास एक शोध छात्र शोध-कार्य कर रहा है। शोध का विषय है — अविकसित मस्तिष्क वाले बच्चे एक चुनौती हैं। उन्हें कैसे ठीक करें? इस संदर्भ में हमने कुछ प्रयोग किए। विकसित और अविकसित बच्चों के दो ग्रुप बनाए। दोनों ग्रुपों में दस बच्चे रखे गए। उन सबकी 'एम.आर.आई.' कराई। हमने जानने का प्रयत्न किया कि उनकी शरीर-रचना में क्या कोई अंतर है? शरीर-रचना में कोई अंतर नहीं मिला। किंतु न्यूरोन एक्टिविटी में अंतर मिला, न्यूरोन कनेक्शन में भी अंतर मिला। अविकसित बच्चे के बायां पटल (लेफ्ट हेमिस्फियर) में न्यूरोन की संख्या कम पाई गई। न्यूरोन कनेक्शन भी कम थे। क्या हम दाहिना पटल (राइट हेमिस्फियर) को जागृत करके लेफ्ट हेमिस्फियर की कमी को पूरा कर सकते हैं? शरीर, मन, बुद्धि और चेतना— इन चारों को कैसे जगाएं? इस विषय में आपका क्या निर्देश है?

महाप्रज्ञ — इनके साथ प्राण और भाव — दो और जोड़ दें।

डॉ. कलाम — आप ठीक कह रहे हैं। आचार्यजी! विदेह जनक और महर्षि अष्टावक्र अध्यात्म की उच्च भूमिका पर पहुंचे थे। मैं चेतना हूँ और चेतना मैं हूँ — उनके इस कथन का तात्पर्य क्या है?

महाप्रज्ञ — हमारे मस्तिष्क के तीन विभाग हैं —

1. हायर कॉन्शियस माइंड
2. अनकांशियस माइंड
3. कांशियस माइंड।

महर्षि अष्टावक्र और विदेह जनक हायर कॉन्शियस माइंड की भूमिका पर थे।

डॉ. कलाम — क्या ब्रह्म से उनका सम्पर्क हो गया?

महाप्रज्ञ — प्रज्ञा, प्रातिभ ज्ञान अथवा अंतर्दृष्टि का जागरण हो गया।

डॉ. कलाम — हम इस तक कैसे पहुंचे? क्या महावीर सुपर कांशियस तक पहुंचे ?

महाप्रज्ञ — जैन साधना पद्धति का एक प्रचलित शब्द है — 'वीतराग' ।

डॉ. कलाम — (अपनी डायरी में इस शब्द को नोट कर) वीतराग का तात्पर्य....?

महाप्रज्ञ — राग और द्वेष से परे, 'मैं' और 'मेरा' से परे जो है वह वीतराग है। वीतरागता की साधना हायर कांशियस तक ले जाती है।

डॉ. कलाम — सबसे बड़ी समस्या ईगो (Ego) की है। 'मैं' और 'मेरा' इसको आदमी के दिमाग से कैसे निकालें?

महाप्रज्ञ — मस्तिष्क का जो आगे का हिस्सा (फ्रंटल लॉब) है, वह इमोशन का क्षेत्र है, भाव का क्षेत्र है। यहां ध्यान का प्रयोग करने से ईगो कम होता है, अहं, काम, क्रोध आदि शांत होते हैं। नेगेटिव इमोशन (नकारात्मक भाव) निष्क्रिय होते चले जाते हैं और पोजिटिव इमोशन (सकारात्मक भाव) सक्रिय हो जाते हैं।

मस्तिष्क का एक भाग है लिम्बिक सिस्टम, उसका एक भाग है हाइपोथेलेमस। हमारे हायर कांशियस माइंड से जो वाइब्रेशन (प्रकंपन) आते हैं, वे हाइपोथेलेमस को प्रभावित करते हैं। एक विद्यार्थी है या बड़ा आदमी, उसको बदलना चाहते हैं तो हाइपोथेलेमस पर ध्यान कराएं। बदलाव निश्चित आएगा।

(आचार्यवर ने ज्योति केन्द्र पर अंगुली रखते हुए कहा) मस्तिष्क के इस केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान कराते हैं, इससे क्रोध आदि आवेश शांत हो जाते हैं।

डॉ. कलाम — आचार्यजी! आज की समस्या यह है — इतना बड़ा राष्ट्र है, उस पर अहंकार और ममकार ही राज कर रहा है।

महाप्रज्ञ — जो ट्रेनिंग लेकर बड़े लोग बनते हैं, वे बदल सकते हैं। सत्ता पर जो हैं, वे बिना ट्रेनिंग आए हुए हैं, इसलिए यह समस्या है। यदि शुरू से ही ट्रेनिंग दे दी जाए तो यह समस्या नहीं आएगी।

डॉ. कलाम — बच्चों से ही ट्रेनिंग को शुरू करना होगा।

महाप्रज्ञ — हां, आपका और हमारा विचार एक है। यदि वर्तमान पीढ़ी पर प्रयत्न करें तो भावी पीढ़ी अच्छी बन सकती है, (आचार्यवर ने झाबुआ जिले में चल रहे प्रयोगों का उल्लेख करते हुए कहा) झाबुआ जिले के

आदिवासी अंचल में जीवन विज्ञान के प्रयोग शुरू हुए हैं। उस प्रशिक्षण के उत्साहवर्द्धक परिणाम आए हैं।

डॉ. कलाम — झाबुआ जिला, जो मध्यप्रदेश में है और बहुत सुन्दर है?

महाप्रज्ञ — हां, सर्वोदयी विचारक बालविजयजी ने वहां चल रहे प्रयोगों को निकटता से देखा। उन्होंने कहा — यदि पांच वर्ष तक लगातार ये प्रयोग चलते रहे तो कायाकल्प हो जाएगा। देश का प्रथम जिला बन जाएगा। बच्चों में जो सकारात्मक बदलाव आया है, वह आश्चर्यकारी है।

डॉ. कलाम — आप क्या प्रयोग कराते हैं?

महाप्रज्ञ — ध्यान का प्रयोग करते हैं जिसमें इमोशन पर कंट्रोल करना सीख जाएं। आसन-प्राणायाम, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और संकल्प के प्रयोग कराए जाते हैं। इनसे पिट्यूटरी और पीनियल ग्लैंड का जागरण होता है और एड्रीनल ग्लैंड पर नियंत्रण होता है। केवल सैद्धांतिक नहीं, प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण का सारा कार्य वैज्ञानिक दृष्टि से हो रहा है।

डॉ. कलाम — (मुस्कुंराते हुए) और वह अध्यात्म के द्वारा हो रहा है।

महाप्रज्ञ — हमारे गुरु आचार्य तुलसी कहते थे — आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण — आज की सबसे बड़ी अपेक्षा है। कोरा अध्यात्म बहुत उपयोगी नहीं होता और कोरा विज्ञान खतरनाक हो सकता है। इसलिए ऐसे व्यक्ति का निर्माण जरूरी है जो आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दोनों हो।

डॉ. कलाम — अध्यात्म और विज्ञान — दोनो जुड़े हुए हैं।

महाप्रज्ञ — वस्तुतः विज्ञान और अध्यात्म दो नहीं हैं।

डॉ. कलाम — 'हाँ!'

महाप्रज्ञ — विज्ञान भी सत्य की खोज के लिए है और अध्यात्म भी सत्य की खोज के लिए है।

डॉ. कलाम — एक आध्यात्मिक वैज्ञानिक हो सकता है और एक वैज्ञानिक आध्यात्मिक हो सकता है। आज समस्या दूसरी है और वह यह है कि एक धार्मिक आध्यात्मिक कैसे बने? आज व्यक्ति धार्मिक है पर आध्यात्मिक नहीं है।

महाप्रज्ञ — आप ठीक कह रहे हैं। एक समय था — जब धर्म साधकों के हाथ में था। आज वह धर्माधिकारियों के हाथ में आ गया है। महावीर,

बुद्ध, ईसा, नानक, जरथुस्त्र आदि सब साधक थे। आज उनके नाम पर केवल धर्म का उपदेश देने वाले हैं। आज साधना कम और धन-सत्ता प्रमुख हो गई है।

डॉ. कलाम — भारत में हजारों-लाखों लोग धर्म को मानते हैं। उनमें परिवर्तन कैसे करें? उन्हें आध्यात्मिक कैसे बनाएं?

महाप्रज्ञ — यह बहुत कठिन है। यदि विद्यार्थियों से प्रारंभ करें, उनकी धारणा को बदलें तो कुछ सफलता मिल सकती है। हम इस दिशा में काम कर रहे हैं, आपके दो-चार प्रतिनिधि साथ रहें तो काम काफी आगे बढ़ सकता है।

डॉ. कलाम — मैं इन दो वर्षों में बीस हजार बच्चों से मिला हूँ। मैं क्यों मिलता हूँ? आचार्यजी! यह मेरा मिशन है। मेरे मन में लगन है कि राष्ट्र का आध्यात्मिक विकास कैसे हो? यह हमारी भारत की विरासत है। महावीर, बुद्ध आदि ने अध्यात्म का जो विकास किया, जो सूत्र दिए, उनका व्यापक बनना जरूरी है।

आचार्यजी! मैं नागालैण्ड गया। आठवी कक्षा तक के बच्चों से मिला। एक बच्चे ने कहा — मैं शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूँ। सुखी, सुरक्षित और समृद्ध जीवन जीना चाहता हूँ। आप हमें बताएं कि यह कब होगा? कब हमारा भारत देश सुन्दर होगा, सुरक्षित और समृद्ध होगा? इसमें चारों ओर शांति का वातावरण होगा। मैंने उनसे कहा — मैं आचार्यजी! गुरुजी से पूछंगा और तुम्हें बताऊंगा।

आचार्यजी! भारत का आर्थिक विकास कैसे हो सकता है? वह आर्थिक दृष्टि से कैसे समृद्ध हो सकता है, यह मैं जानता हूँ। ऐसा भारत हम बना सकते हैं। किंतु भारत के लोग आध्यात्मिक चिन्तन में कैसे आगे बढ़ें? यह मार्ग आप बताएं।

महाप्रज्ञ — आप अपने प्रतिनिधि को हमारे पास भेजें। इस विषय पर गहरा चिन्तन चले। एक योजना बनाएं और इस दिशा में सघन कार्य करें।

डॉ. कलाम — कांजीवरम के शंकराचार्य, ब्रह्माकुमारी, स्वामिनारायण, आर्चविशप आदि सभी धर्म-सम्प्रदायों के प्रमुख लोग मिलकर एक सेतु बना सकते हैं।

महाप्रज्ञ — यह बहुत अच्छा विचार है।

डॉ. कलाम — क्या आपका आशीर्वाद है।

महाप्रज्ञ — हां! हमने 'अहिंसा-समवाय' मंच का निर्माण किया है। उसका उद्देश्य भी यही है। अहिंसा एवं विश्व शांति के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति एवं संस्थाएं मिलकर इस विषय पर सह चिन्तन करें। सबकी समन्वित शक्ति से इस कार्य को बहुत बल मिलेगा।

डॉ. कलाम — हां।

महाप्रज्ञ — अभी हम गुजरात में थे। वहां सांप्रदायिक दंगे हुए। हमने हिन्दू और मुसलमान — दोनों समुदाय के प्रमुख व्यक्तियों को याद किया। उनसे वार्तालाप किया। हमने यह समझाया कि हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं है। अनेक गोष्ठियां हुईं। हमारे चिन्तन का सबने सम्मान किया। शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण हो गया। यदि धार्मिक नेता बदल जाएं तो सांप्रदायिक कट्टरता से उपजने वाली हिंसा समाप्त हो जाए।

डॉ. कलाम — (मुस्कराते हुए) आप उनको 'फ्रंटल लॉब' पर ध्यान करा दें।

महाप्रज्ञ — अहिंसा को भी ठीक समझा नहीं गया। आडवाणीजी आए थे। मैंने प्रवचन में कहा — अहिंसा धर्म है एक मुनि के लिए! अहिंसा नीति है समाज के प्रमुख व्यक्तियों और शासकों के लिए। अहिंसा कूटनीति है शासक वर्ग के लिए। जो विभिन्न विचारधाराओं, विभिन्न जातियों और सम्प्रदाय के लोगों में सामंजस्य करता है, वह दीर्घकालीन नीति से सफल हो सकता है। जहां सामंजस्य होता है, वहां सद्भावना का वातावरण बना रहता है। यदि विद्यार्थी में प्रारंभ से ही सामंजस्य, सहिष्णुता, मैत्री, अहिंसा के संस्कार भरे जाएं तो राष्ट्र की अनेक समस्याएं सुलझ सकती हैं। आपके पास जो शोध छात्र रिसर्च कर रहा है, यदि वह परिवर्तन के इन प्रयोगों का अध्ययन करे तो शोध के कुछ सार्थक परिणाम आ सकते हैं।

डॉ. कलाम — मैं उसे निश्चित आपके पास भेजूंगा।

महाप्रज्ञ — आपके और हमारे बीच चिन्तन की यह प्रक्रिया चलती रहे, यह आवश्यक है। आप सब जगह नहीं आ सकते, लेकिन आपके प्रतिनिधि संवाद का सेतु बन सकते हैं।

डॉ. कलाम — मेरे मित्र वैज्ञानिक डॉ. वाई.एस. राजन आपसे मेरे प्रतिनिधि के रूप में मिलते रहेंगे।

महाप्रज्ञ — आपका वैज्ञानिक चिन्तन राष्ट्र के लिए सर्वाधिक कल्याणकारी हो सकता है। सुकरात ने कहा था — एक शासक को दार्शनिक होना चाहिए।

आज हम इस भाषा में कहना चाहते हैं — 'एक शासक को वैज्ञानिक होना चाहिए।' यदि शासक वैज्ञानिक होगा तो समस्या की जड़ तक पहुंचने का प्रयत्न होगा। इसमें ईगो भी कम होना चाहिए।

डॉ. कलाम — (मुस्कराते हुए यह वाक्य पुनः दोहराया) और यदि होगा तो फ्रंटल लॉब पर मेडिटेशन करा दीजिएगा। (एक नई जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए) क्या इसमें श्वास का भी कोई संबंध है?

महाप्रज्ञ — श्वास का गहरा संबंध है। इमोशन पर कंट्रोल करने में दीर्घश्वास प्रेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक व्यक्ति सामान्यतः एक मिनट में पंद्रह-सोलह श्वास लेता है। जब आवेग-आवेश प्रबल होता है, क्रोध, भय, वासना आदि का आवेग तीव्र होता है तब यह संख्या तीस-चालीस हो जाती है। तीव्रतम आवेश में उससे भी अधिक हो जाती है। रूपक की भाषामें कहें तो इमोशन राजा है। वह वायुयान के बिना नहीं आएगा। छोटा श्वास उसका वाहन है। श्वास की संख्या कम होगी तो इमोशन शांत रहेंगे। दीर्घश्वास से राइट हेमिस्फियर जागृत होता है।

(राष्ट्रपति महोदय को अंग्रेजी में प्रकाशित प्रेक्षाध्यान : श्वास प्रेक्षा तथा प्रेक्षाध्यान के सभी पुष्प उपहृत किए गए। आचार्यवर की अनेक सद्यः प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तकें दी गईं। राष्ट्रपति ने एक-एक पुस्तक का अवलोकन किया। उनकी दृष्टि 'थोट एट सनराईज' पुस्तक पर अटक गई।)

डॉ. कलाम — इसमें क्या है?

महाप्रज्ञ — 'मैंने इसमें प्रतिदिन का एक विचार लिखा है। हिन्दी में इस पुस्तक का नाम है — सुबह का चिन्तन।'

डॉ. कलाम — मैं आज का विचार पढ़ता हूँ। (यह कहते हुए राष्ट्रपति ने 14 फरवरी का पूरा विचार पढ़ कर सुनाया।)

महाप्रज्ञ — आज आपको काफी समय हो गया है।

डॉ. कलाम — आप यहां कब तक हैं?

महाप्रज्ञ — मार्च, अप्रैल दो महीने यहां रहेंगे। उसके बाद सूरत की ओर जाना है।

डॉ. कलाम — आप अपना पूरा प्रोग्राम मुझे दे दीजिए। मैं देखता हूँ— मैं पुनः कहां आ सकता हूँ। (यह कहते हुए राष्ट्रपति का ध्यान अपनी डायरी में अंकित नोट्स पर केन्द्रित हुआ।) आचार्यश्री! क्या यह ईगो एंगर (अहं और क्रोध) कम हो सकता है?

महाप्रज्ञ — अवश्य हो सकता है। प्रेक्षाध्यान शिविर में ऐसे अनेक लोग आए, जिन्होंने अभ्यास किया और इन पर नियंत्रण स्थापित किया। मुंबई की घटना है। इनके (मुनि महेन्द्रकुमारजी) संसारपक्षीय भाई को भयंकर गुस्सा आता था। पूरा परिवार अशांत हो गया। उन्होंने ध्यान का अभ्यास किया। क्रोध उपशांत हो गया। पत्नी ने देखा — पतिदेव सचमुच बदल गए हैं। उन्होंने अपने ससुर को यह बात बताई। ससुर ने कहा — थोड़े दिन ठहरो। आखिर उन्होंने यह स्वीकार किया कि सचमुच बदलाव आया है। जो प्रत्यक्ष है, उसे कैसे नकारा जा सकता है। (आचार्यश्री ने एक नया प्रस्ताव रखा) आप पांच ऐसे विद्यार्थियों को भेजें, जो बहुत एंग्री हैं। हम उन्हें पांच सप्ताह प्रेक्षाध्यान के प्रयोग कराएंगे। आप स्वयं देखें — उसका क्या परिणाम आता है?

डॉ. कलाम — (मुस्कुराते हुए) तब तो मुझे अपने नेताओं को भेजना पड़ेगा।

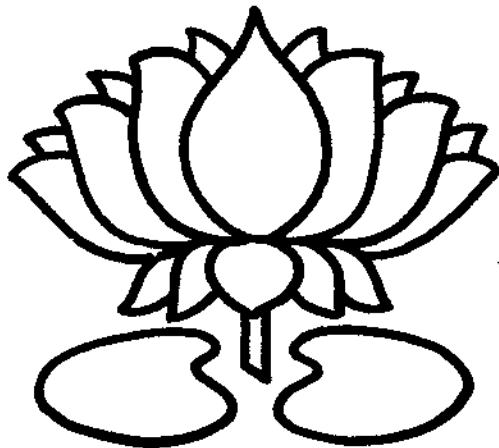
महाप्रज्ञ — यह प्रयोग भी किया जा सकता है।

डॉ. कलाम — मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे आज नया प्रकाश और नई दृष्टि मिली है। किस प्रकार हम जनता को आध्यात्मिक बना सकते हैं? इस दिशा में कैसे सफल हो सकते हैं? इसका सुन्दर पथदर्शन मिला है।

महाप्रज्ञ — चिन्तन का क्रम लंबे समय तक चले तो अनेक समस्याओं के समाधान में सफल हो सकते हैं।

डॉ. कलाम — मैं एक साल में दो-तीन बार तो आना ही चाहता हूँ। अब आपसे निरंतर संपर्क भी रहेगा। आपका मार्गदर्शन न केवल मेरे लिए, पूरे देश के लिए कल्याणकारी है।

□□□





नाम : महावीर राज गोलड़ा

जन्म : 20 मार्च, 1933, जोधपुर

शैक्षणिक योग्यता :

रसायन शास्त्र में एम.एस.सी., पी.एच.डी.

पद : इमेरिटस प्रोफेसर, जैन विश्व भा
संस्थान, (डीम्ड विश्वविद्याल
लाडनू।

पूर्व पद :

- संस्थापक कुलपति, जैन विश्व भा
संस्थान, लाडनू।
- निदेशक, महाविद्यालय शि
राजस्थान सरकार, जयपुर
- राज्य सचिव, भारत स्काउट व गाइ
राजस्थान, जयपुर

शैक्षणिक विदेश यात्रा : जापान, ची
ब्रिटेन, जर्मनी, इटली, मॉरिश
अमेरिका, नेपाल आदि।

सम्मान :

- बाड़ी (इटली) में पोप द्वारा आयोजि
प्रार्थना सभा के अवसर पर अंतर्राष्ट्री
लॉयन्स क्लब द्वारा सम्मानित 1990
- भारत स्काउट व गाइड द्वारा 'सिल
स्तर' 1996.
- कुंदकुंद विद्यापीठ, इंदौर द्वा
विद्वतापूर्ण आलेख के लिए सम्मानि
1997.
- मारवाड़ी राष्ट्रीय सम्मेलन, नेपाल द्वा
सम्मानित 1997.
- महादेवलाल सरावगी जैन आम
मनीषा पुरस्कार 2002.

**अंतर्राष्ट्रीय गणित सिम्पोजियम के अवसर
पर सत्र की अध्यक्षता :**

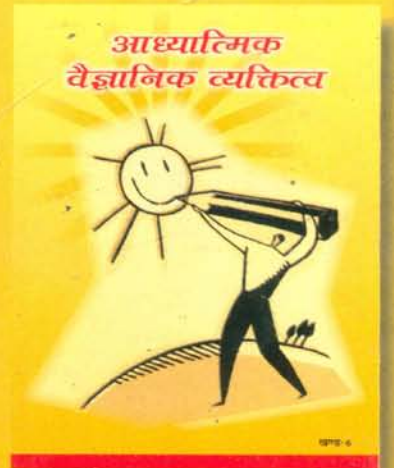
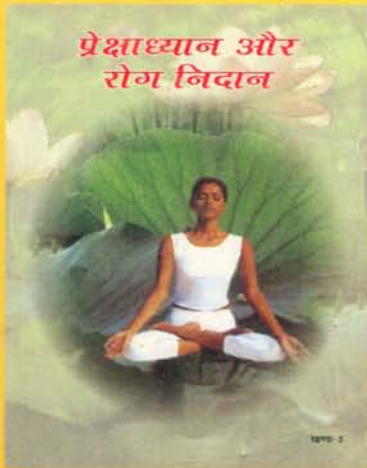
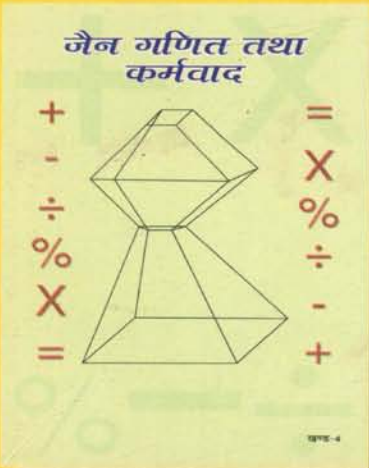
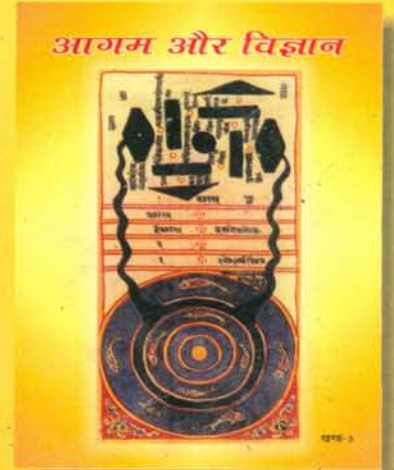
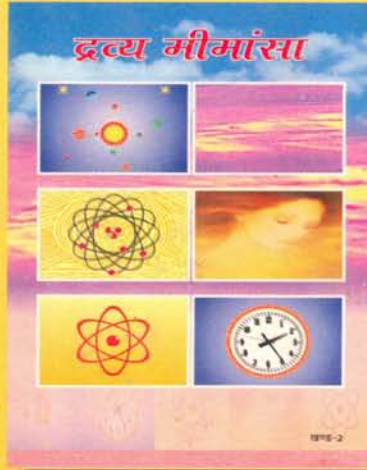
- गुनमा विश्वविद्यालय, किरयू जापान
1987.
- मियावासी विश्वविद्यालय, जापान
1999.
- तेनजिंग विश्वविद्यालय, चीन 2002.

प्रकाशित साहित्य :

- चिंतन प्रसंग
- ज्योति कणिकाएं
- प्रार्थना से आस्था
- साइंस इन जैनिज्म (Science
Jainism)

जैन विद्या और विज्ञान

संदर्भ : आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य



प्रोफेसर डॉ. महावीर राज गेलड़ा